प्रकाशक
मत्री-श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
रांगड़ी मोहल्ला, बीकानेर

द्वितीय सस्करण
दिसम्वर १९७१

मूल्य : तीन रुपये

मुद्रक
जैन आर्ट प्रेस
(श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ द्वारा संचालित)
रांगड़ी मोहल्ला, बीकानेर (राजस्थान)

प्राक्कथन

स्वर्गीय श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज के प्रवचनो को जवाहर किरणावली एव अन्यान्य ग्रन्थो के रूप मे प्रकाशित कर पाठको की सत्साहित्य के पठन-पाठन की आकाक्षा-पूर्ति का प्रयास किया है। उक्त प्रकाशित प्रवचनो से यह स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य श्रीजी युगदृष्टा और लोकमगल के अनूठे व्याख्याता थे। साधारण-सी प्रतीत होने वाली मानवीय प्रवृत्ति के माध्यम से उन्होने समग्र जीवन को व्याख्या कर दी है।

आचार्य श्रीजी ने व्याख्या ही नही की है, अपितु अपने आचार-व्यवहार द्वारा क्रियात्मक रूप दिया है। उन विचारों मे क्षणिक आवेश और तात्कालिक परिस्थितियो का प्रभाव नही है, लेकिन सार्वकालिक एव सार्वजनिक उपयोगिता निहित है। इसीलिये युग बदले या मानव जाति के चिन्तन-मनन के आयामो में भी परिवर्तन परिलक्षित हो, लेकिन आचार्य श्रीजी की प्रवचनगगा की नित-नूतनता दिग्भ्रात मानव को मानवता का बोध कराती रहेगी।

आज का युग भौतिक विज्ञान और विचारधारा से भ्रात है। दिग्मूढ मानव अपने आप मे उलझ रहा है। वह अपनी समस्याओ के मूल केन्द्र की उपेक्षा कर आरोपित विचारधारा के माध्यम से समस्याओं के सुलझाने के लिये प्रयत्नशील है। लेकिन प्रयत्न स्वकल्पित निष्कर्ष प्राप्त करने

के लिये होने से नई-नई समस्याये उत्पन्न करते रहते हैं।

इसका कारण है विज्ञान की शोधो का एकागीपन। उसने भौतिक पदार्थों की शक्ति के विकास मे ही अपने आपको केन्द्रित किया है। इसी कारण उपलब्धियाँ भी उसकी क्षणिक होती हैं और उनसे चिरन्तन सत्य का ज्ञान नही हो पाता है। अतएव भौतिक साधनो की विपुलता के बीच भी मनुष्य अपने आप मे अतृप्ति का अनुभव करता रहता है और वह श्रेय प्राप्ति के लिये सही मार्ग के अन्वेषण मे अपने आपको लगा देना चाहता है। अध्यात्म विश्व के कण-कण का अस्तित्व स्वीकार करता है। उनकी शक्तियो की उपेक्षा नही कर हेय उपादेय के दृष्टिकोण से अपना मतव्य प्रकट करता है। इसी कारण प्रत्येक व्यक्ति आध्यात्मिक साधना के प्रति अपने आपको समर्पित करता आया है और सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान और आचरण के समन्वय द्वारा अपने आपको पाने और परखने की ओर उन्मुख होता है।

अत अध्यात्म विज्ञानियो ने अपनी आचार-विचार-मूलक प्रवृत्तियो के द्वारा अध्यात्म मे रमण करते हुए दूसरों को भी लाभान्वित करने के लिये उपदेशात्मक शली का अनुसरण किया है। अध्यात्म-विज्ञानी अमगल की प्रत्येक प्रवृत्ति को समेट कर अमृत का दान करते हैं और सचेतन प्राणधारियो की कुवृत्तियो का उन्मूलन करने के लिये तत्पर रहते हैं। उनके मानससरोवर से प्रसूत शात-सुधारस-पूरित प्रवचन मानव को लोकमगल के लिये प्रेरित करते है।

पूज्य जवाहराचार्य अध्यात्मविज्ञानी हैं और अध्यात्म-विज्ञानियो मे सिरमौर है। यह तथ्य उनके प्रवचन साहित्य के अध्ययन मे भलिभाति स्पष्ट हो जाता है।

पूज्य आचार्य श्रीजी के प्रवचन जन-सामान्य की भाषा में हुए थे। उनमे हिन्दी के प्रवचन श्री जवाहर साहित्य समिति भीनासर एव श्री हितेच्छु श्रावक मडल रतलाम से तथा गुजराती के ज्ञानोदय सोसायटी राजकोट द्वारा प्रकाशित हुए हैं। प्रस्तुत पुस्तक 'जवाहर ज्योति' में श्री प० शोभाचद्रजी भारिल्ल द्वारा अनुवादित गुजराती की 'श्री जवाहर ज्योति' पुस्तक के प्रवचनों के अलावा कुछ और नये प्रवचन भी जोड दिये हैं।

पहले यह पुस्तक पूज्य जवाहराचार्य के बगडी-सज्जनपुर (मारवाड) में हुए चातुर्मास के समय बगडी के श्रीमानों की आर्थिक सहायता से श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन श्रीसघ बगडी-सज्जनपुर की ओर से प्रकाशित हुई थी। लेकिन अनुपलब्ध होने और पाठको के आग्रह से यह द्वितीय सस्करण (पुनर्मुद्रण) प्रकाशित किया जा रहा है।

आशा है पाठकगण सत्शिक्षाओ से प्रेरणा लेकर अपने जीवन को सफल बनायेगे।

सघसेवक—

जुगराज सेठिया	मत्री
सुन्दरलाल तातेड़	सहमंत्री
पृथ्वीराज पारख	„
जसकरण बोथरा	„
उगमराज मूथा	„

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

श्री गणेश स्मृति ग्रन्थमाला के सहायक

८००.००	श्रीमती केशरबाई बाफना	पांढुरना
७५२.००	श्रीमती फूलकवरबाई काकरिया	कलकत्ता
७०२.००	श्रीमती मदनकवरबाई बाफणा	हरदा
६०२.००	श्रीमती सूरजबाई घाडीवाल	रायपुर
५०१.००	श्रीमती सिरेकंवरबाई मुणोत	अमरावती
५०१.००	श्रीमती पतासीबाई सुराना	बोलारम्
५०१.००	श्रीमती मघीबाई सुराना	बोलारम्
५०१ ००	श्रीमती बादलकवरबाई बाफणा	मदसौर
५००.००	श्रीमती भूरीबाई सुराना	रायपुर
५००.००	श्रीमती उमरावबाई मूथा	मद्रास
२०१.००	श्रीमती सायरकवरबाई मूथा	मद्रास



जवाहर-ज्योति

अनुक्रमणिका

ब्रह्मचर्य

कुंथु जिनराज ! तू ऐसो, नहीं कोइ देव तो जैसो ।
त्रिलोकीनाथ तू कहिये, हमारी बांह दृढ़ गहिये ॥कुंथु०॥

श्रीकुंथुनाथ भगवान् की यह प्रार्थना की गई है। परमात्मा की प्रार्थना किस प्रकार करनी चाहिए, इस संबंध मे ज्ञानियो और भक्तो ने अपने हृदयगत भाव प्रकट करके जनता के समक्ष अनेक मार्ग प्रस्तुत किये है। फिर भी सर्वसाधारण जनता सरलता से प्रार्थना कर सके, इसके लिए कोई साधारण नियम होना चाहिए। महान् ज्ञानी और महान् भक्तजन चाहे जिस पद्धति से प्रार्थना करें, उनकी पद्धति उनके लिए सुलभ और सरल हो सकती है, किन्तु जन-साधारण के लिए उनका मार्ग सुगम नही हो सकता। अतएव हमे यह देखना चाहिए कि साधारण जनता के लिए प्रभु मे तन्मय होने का सरल मार्ग क्या है ? यद्यपि आजकल कुछ लोग परमात्मा के नाम से ही चिढते है और ईश्वर को एक बडी उपाधि समझते हैं, फिर भी बहुत से व्यक्तियो मे ईश्वरभक्ति की भावना विद्यमान है। जो लोग ईश्वर को व्याधि मानते है वे अज्ञान से जकडे हुए हैं। उनके अंतरंग मे जो स्वाभाविक तरंगे उठती हैं वे उन्हे भी ईश्वर की ओर धकेल रही हैं, ऐसा ज्ञानियो का विश्वास है। इसी विश्वास की प्रेरणा से उन्होने शास्त्र प्रकट किये हैं। आज का विषय

ब्रह्मचर्य है, किन्तु प्रार्थना मेरी आत्मा का विषय है और इस विषय पर दो-चार शब्द बोले बिना मेरे अन्त:करण को शान्ति नही मिलती। प्रार्थना के विषय मे बोलने का यही कारण है और मेरे अन्त करण को यदि शान्तिलाभ हुआ तो इससे आपको भी लाभ होगा।

अभी जो प्रार्थना मैंने की है वह केवल मेरी नहीं, सभी की है। आप यह कह सकते हैं कि हम प्रार्थना करना चाहते है या नही, यह बात जाने विना ही आप ऐसा कैसे कह सकते है ? पर मेरा विश्वास है कि ऊपर मे कोई भले ही यह कहे कि मैं प्रार्थना नही करना चाहता, पर प्रार्थना के बिना जीवन निभ ही नही सकता। कदाचित् कोई कहे कि मुझे सूर्य के प्रकाश की आवश्यकता नही है, मैं दीपक आदि के प्रकाश से अपना काम चला लूगा, तो उसका यह कथन क्या सही हो सकता है ? नही; क्योकि सूर्य की सहायता के विना जीवन नही टिक सकता, जीवन की गति ही कुण्ठित हो जाती है। अतएव सूर्य के प्रकाश की अनावश्यकता वतलाने वाला भूल करता है। सूर्य की जीवन मे अनिवार्य उपयोगिता है। सूर्य अपनी निन्दा करने वाले को और अपनी प्रशसा करने वाले को समान प्रकाश देता है, वह किसी से भेदभाव नहीं रखता। सूर्य के विषय मे जब यह कहा जा सकता है, तब परमात्मा के विषय में ज्ञानीजन इस प्रकार कहते हैं :—

सूर्यातिशायिमहिमाऽसि मुनीन्द्र ! लोके।

—भक्तामर स्तोत्र

अर्थात्—हे प्रभो ! तुम्हारी महिमा अनन्त सूर्यों से

भी अधिक है। इस प्रकार जब परमात्मा अनन्त सूर्यों से भी अधिक महिमाशाली है तो उसकी प्रार्थना के बिना क्या जीवन निभ सकता है ? कदाचित् तुम कहोगे—सूर्य प्रत्यक्ष से जीवनोपयोगी जान पडता है, मगर ईश्वर तो कही दीखता भी नही, ऐसी हालत मे ईश्वर का अस्तित्व और जीवन के लिए उसकी प्रार्थना की उपयोगिना कैसे मानी जा सकती है ?

इस प्रश्न के उत्तर मे ज्ञानीजन बतलाते हैं कि यदि तुम्हारे चर्म-चक्षु ईश्वर का साक्षात्कार करने में समर्थ नही हैं तो इससे क्या हुआ ? चर्मचक्षु के अतिरिक्त हृदय-चक्षु भी है और उसके द्वारा परोक्ष वस्तु जानी जा सकती है और उस वस्तु पर विश्वास भी किया जा सकता है। परमात्मा की प्रार्थना के विषय मे ज्ञानीजन यही कहते हैं कि तुम चर्म-चक्षुओ पर ही निर्भर न बनो, हमारी बात मानो। बचपन मे जब तुमने बहुत-सी वस्तुएँ नही देखी होती, तब माता के कथन पर तुम भरोसा करते हो। क्या उससे तुम्हे कभी हानि हुई है ? बचपन मे तुम साँप को भी साँप नही समझते थे, मगर माता पर विश्वास रखकर ही तुम साँप को साँप समझ सके हो और साँप के दश से अपनी रक्षा कर सके हो। फिर उन ज्ञानियो पर, जिनके हृदय मे माता के समान करुणा और वात्सल्य का अविरल स्रोत प्रवाहित होता रहता है, श्रद्धा रखने मे तुम्हे हानि कैसे हो सकती है ? उन पर विश्वास रखने से तुम्हे हानि कदापि न होगी, प्रत्युत लाभ ही होगा। अतएव जब ज्ञानीजन कहते है कि परमात्मा है और उसकी प्रार्थना स्तुति करने से शान्ति-लाभ होता है तो उनके इस कथन पर विश्वास रखो। स्मरण रखना, इस प्रकार के विश्वास से तुम्हारा अवश्य कल्याण

होगा ।

परमात्मा के प्रति विश्वास स्थिर क्यो नही रहता ? यह प्रश्न अनेकों के मस्तक मे उत्पन्न होता है । इसका उत्तर ज्ञानी यह देते हैं कि आन्तरिक निर्बलता ही परमात्मा के प्रति विश्वास को स्थायी नही रहने देती । परमात्मा के प्रति विश्वास होने के जो कारण हैं, उनमे से एक कारण ब्रह्मचर्य है । जीवन में यदि ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा हुई हो तो निस्संदेह ईश्वर के प्रति प्रगाढ श्रद्धा का भाव स्थायी रह सकता है ।

'ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य किसी साधारण व्यक्ति के मस्तिष्क की उपज नही किन्तु महापुरुषो द्वारा प्ररूपित सिद्धान्तों मे से एक परम उच्च सिद्धान्त है । ब्रह्मचर्य का विषय इतना मार्मिक, महत्वपूण एवं व्यापक है कि अनेक भाषणो मे भी उसका सर्वांग विवेचन हो सकना सभव नही है । ऐसी अवस्था मे एक दिन के व्याख्यान में उसका परिपूर्ण वर्णन होना कैसे सभव है ? फिर भी आज ब्रह्मचर्य के सबध मे कहना ही है तो पूर्ण को भी अपूर्ण रूप मे ही कहना होगा । आप सावधान होकर सुनिये ।

ससार मे ऐसा कोई भी धर्म नही है जिसने ब्रह्मचर्य की महिमा का वर्णन न किया हो । अन्य धर्म ब्रह्मचर्य के विषय मे क्या कहते हैं, यह आज न बतलाते हुए सिर्फ यही कहना चाहता हूं कि जैनधर्म ब्रह्मचर्य के विषय में क्या कहता है ? ब्रह्मचर्य की महिमा का वर्णन करते हुए जैन शास्त्र

'जम्बू ! एत्तो य बंभचेरं तव-नियम-नाण-दंसण-चरित्त-सम्मत्त-विणयमूलं, यमनियम गुणप्पाहाणजुत्तं, हिमवंत महंतं, पसत्थगंभीरथिमियमज्झे ।'

—प्रश्न व्याकरण, चतुर्थ संवर

भगवान् सुधर्मा स्वामी अपने ज्येष्ठ शिष्य से कहते हैं हे जम्बू ! अब मैं तुम्हे ब्रह्मचर्य का विपय कहता हू ।

ब्रह्मचर्य का अर्थ क्या है ? यह हमे पहले ही समझ लेना चाहिए । 'ब्रह्मचर्य' पद में ब्रह्म और चर्य, यह दो शब्द हैं । 'ब्रह्म' शब्द का अर्थ है आत्मा अथवा सत्य, तप, क्षमा आदि गुण । ब्रह्म शब्द मे समस्त सद्गुणो का समावेश हो जाता है और जिस क्रिया द्वारा इन सद्गुणो की प्राप्ति होती है उस क्रिया को 'चर्य' कहते हैं । इस प्रकार जिन गुणो द्वारा या जिस साधना से आत्मा का साक्षात्कार होता है उसे ब्रह्मचर्य कहते हैं ।

श्रीसुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं–ब्रह्मचर्य, तप, नियम, ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य, सम्यक्त्व और विनय का मूल है । वृक्ष मे तना, डाली, फल, फूल आदि होते हैं किन्तु इन सब का मुख्य आधार मूल ही होता है। मूल होता है तो उसके आधार पर वृक्ष फलता-फूलता है । मूल न हो तो वृक्ष नही टिक सकता । इसी प्रकार ब्रह्मचर्य सब उत्तम क्रियाओ का मूल है । जहाँ ब्रह्मचर्य है वही उत्तम क्रियाएँ पार पड सकती हैं । शुभ क्रियाओ मे तप सर्व प्रथम बताया गया है परन्तु ब्रह्मचर्य के बिना तप भी सार्थक नही हो सकता । कहा भी है :—

तपो वै ब्रह्मचर्यम्

—उपनिषद्

अर्थात् ब्रह्मचर्य ही तप है। जिस तप में ब्रह्मचर्य का स्थान नही होता वह तप वस्तुत तप ही नही है। क्योंकि जहाँ मूल नही है वहाँ वृक्ष कैसे हो सकता है ? ब्रह्मचर्य तप का मूल है इसी प्रकार वह नियम, ज्ञान, दर्शन, चारित्र सम्यक्त्व और विनय आदि का भी मूल है। यमो और नियमों में भी ब्रह्मचर्य प्रधान है। यम अर्थात् महाव्रत और नियम अर्थात् त्याग-प्रत्याख्यान। पर्वतो मे जैसे हिमालय पर्वत प्रधान है उसी प्रकार यम-नियमो मे ब्रह्मचर्य प्रधान है।

संभव है आपने हिमालय पर्वत न देखा हो, पर हिमालय की वदौलत आपको जो सुख और शांति मिल रही है, उसका यदि विचार करोगे तो उसके उपकारो के आगे आपका मस्तक झुक जायेगा। उसी प्रकार यदि ब्रह्मचर्य की शक्ति पर विचार किया जाये तो शायद ही ऐसा सभ्य पुरुष होगा जो अपनी सम्पूर्ण शक्तियों को ब्रह्मचर्य की ही वदौलत स्वीकार न करे। वस्तुत हमारी समस्त शक्तियाँ ब्रह्मचर्य की शक्तियाँ है। आप ब्रह्मचर्य की जितनी महिमा गाते हैं उससे भी अधिक महिमा शास्त्रो मे वर्णन की गई है। कदाचित् आप यह कहे कि शास्त्र मे ब्रह्मचर्य का जैसा चमत्कार वर्णन किया गया है वैसा चमत्कार वताने वाला ब्रह्मचारी हमे दिखाई पडे तो हम स्वीकार कर सकते है। पर ऐसा कोई चमत्कारी ब्रह्मचारी हमें तो कही नजर नही आता। इस दशा में उस महिमा को किस प्रकार अंगीकार किया जा सकता है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि वैसा चमत्कार दिखाई न देने पर भी वह कल्पना मे आता है या नही ? आप कह सकते हैं कि कल्पना में आई हुई वात किस काम की ? किन्तु अनेक वातें ऐसी होती हैं जो प्रत्यक्ष देखकर

ही काम में आती है और अनेक बातें ऐसी भी होती हैं जो कल्पना द्वारा ही काम में आती हैं। मैं अपनी यह बात बलात् स्वीकार कराना नही चाहता, मगर यदि आप मेरे कथन पर गहरा विचार करेंगे, तो आप स्वय ही इसकी सत्यता को स्वीकार करने लगेंगे। आज बुद्धिवाद का युग चल रहा है अतएव प्रत्येक बात बुद्धि की कसौटी पर कसी जाने पर ही मान्य होती है। पर मैं कहता हूं कि आप मेरे कथन को हृदय की कसौटी पर कस कर ही स्वीकार कीजिए। अगर कोई बात हृदय स्वीकार न करे तो उसे मत मानिये। ज्ञानी भी कहते हैं कि हमारी प्रत्येक बात को हृदय की कसौटी पर चढाने के पश्चात् ही स्वीकार करो।

जो बात प्रत्यक्ष नही है पर कल्पना में आती है उसे मस्तक में किस प्रकार उतारा जा सकता है? यह प्रश्न उपस्थित होता है। इसका उत्तर यह है कि स्कूलो में पढने वाले बालक रेखागणित मे भूमध्य-रेखा की मोटाई मानकर एक रेखा बनाते हैं पर वास्तव मे भूमध्य-रेखा मे मोटाई होती नही है। जब भूमध्य-रेखा में मोटाई नही है तो फिर उसकी कल्पना क्यो की जाती है? और वह किसलिए खेंची जाती है? इसके लिए यह कहा जाता है कि भूमध्य-रेखा बनाये बिना—उसकी कल्पना न की जाये तो आगे काम ही नही चलता।

पूर्ण ब्रह्मचारी को समस्त शक्तियाँ प्राप्त हो जाती है। कोई भी शक्ति ऐसी नही बचती जो उसे प्राप्त न हो। वह शक्ति भले ही प्रत्यक्ष दिखाई न दे पर यदि उसे शास्त्र की कल्पना का आधार प्राप्त है तो उसे मानने मे कुछ भी हानि नही है। भले ही वह कथन कल्पना-युक्त हो पर आप

उस कथन को दृष्टि में रखते हुए उस ओर प्रगति करो तो लाभ ही होगा । जैसे रेखागणित मे भूमध्य-रेखा को मान लेने से काम चलता है उसी प्रकार ब्रह्मचर्य मे भी पूर्ण ब्रह्मचर्य के आदर्श को अगीकार करना अनिवार्य है। फिर भले ही वह आदर्श कल्पना पर ही अवलबित क्यो न हो ।

यह तो हुई पूर्ण ब्रह्मचर्य की बात । आइए अब यह विचार करे कि अपूर्ण ब्रह्मचर्य कैसा होता है और अपूर्ण से पूर्ण की ओर किस प्रकार प्रयाण किया जा सकता है ?

ज्ञानीजन कहते है – समस्त इन्द्रियो पर अकुश रखना और विषय-भोग मे इन्द्रियो को प्रवृत्त न होने देना, पूर्ण ब्रह्मचर्य है और वीर्य की रक्षा करना अपूर्ण ब्रह्मचर्य है । आज वीर्यरक्षा तक ही ब्रह्मचर्य की सीमा स्वीकार की जाती है पर वास्तव मे सब इन्द्रियों और मन को विषयो की ओर प्रवृत्त न होने देना ही पूर्ण ब्रह्मचर्य है । केवल वीर्यरक्षा अपूर्ण ब्रह्मचर्य है । अलबत्ता अपूर्ण ब्रह्मचर्य की साधना के द्वारा पूर्ण ब्रह्मचर्य तक पहुँचा जा सकता है ।

श्री उत्तराध्ययन सूत्र के १६ वे अध्ययन की निर्युक्ति मे ब्रह्मचर्य के चार भेद बताये गये हैं । नाम-ब्रह्मचर्य, स्थापना-ब्रह्मचर्य, द्रव्य-ब्रह्मचर्य और भाव-ब्रह्मचर्य ।

जो लोग नाम मे ब्रह्मचारी है पर ब्रह्मचर्य का पालन नही करते, उनके ब्रह्मचारीपन को शास्त्र 'नाम-ब्रह्मचर्य' कहते हैं । नाम के ब्रह्मचर्य से कुछ भी होता-जाता नही है । उसके साथ 'भाव-ब्रह्मचर्य' का होना आवश्यक है । जो भाव से ब्रह्मचर्य का पालन न करते हुए भी नाम से ब्रह्मचारी कहलाते हैं वे दुनिया में सन्मान प्राप्त करने की कामना करते

हैं। ससार में हीरा-मोती पहनने वालों का आदर देखकर कितनेक लोग सच्चे हीरा-मोतियो के अभाव मे, आदर-सत्कार पाने के लिए नकली हीरा-मोती पहनते हैं। नकली हीरा-मोती पहनने का उनका उद्देश्य सिर्फ यही होता है कि नखरे करके किसी प्रकार लोगो को धोखा दिया जाये। इसी प्रकार ससार मे ब्रह्मचारी का आदर-सन्मान होते देखकर उसी प्रकार का आदर-सन्मान पाने की लालसा से कुछ लोग नाममात्र के ब्रह्मचारी बन बैठते हैं– वे ब्रह्मचर्य का पालन नही करते। ऐसे ब्रह्मचर्य को शास्त्रकार 'नाम-ब्रह्मचर्य' कहते है। यह नाम-ब्रह्मचर्य की बात हुई।

जो स्वय ब्रह्मचर्य का पालन नही कर सकता किन्तु ब्रह्मचर्य या ब्रह्मचारी की मूर्ति बनाकर और उससे काम चल जायेगा—ऐसा सोचकर, मूर्ति की स्थापना करके उसे मानता है वह स्थापना-ब्रह्मचारी है। उसके इस ब्रह्मचर्य को स्थापना-ब्रह्मचर्य कहते है। इस स्थापना-ब्रह्मचर्य से भी कोई विशेष लाभ नही होता। लाभ तो तभी हो सकता है जब कि जिस गुण के कारण तुम उसकी मूर्ति बनाकर मानते हो उस गुण का स्वय पालन करो।

तीसरा 'द्रव्य-ब्रह्मचर्य' है। शारीरिक शक्ति आदि प्राप्त करने के लिए जो ब्रह्मचर्य पालन किया जाता है वह 'द्रव्य-ब्रह्मचर्य' है। इस द्रव्य-ब्रह्मचर्य से शारीरिक शक्ति प्राप्त होती है। कहा भी है—

ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः

—योगसूत्र

द्रव्य-ब्रह्मचर्य के पालन से वीर्य की रक्षा होती है।

जिनमें वीर्य होता है, उन्हे वीर्यवान् कहा जाता है ।

देश मे आज जो रोग, शोक, दरिद्रता आदि जहां-तहां दृष्टिगोचर होते हैं उन सब का एक मात्र कारण वीर्य-नाश है । आज बेकार वस्तु की तरह वीर्य का दुरुपयोग किया जा रहा है । लोग यह नही जानते कि वीर्य मे कितनी अधिक शक्ति विद्यमान है । इसी कारण विषय-भोग मे वीर्य का नाश किया जा रहा है और उसी मे आनन्द माना जा रहा है । ऐसा करने से जब अधिक सतान उत्पन्न होती है तो घबराहट पैदा होती है, पर उनसे मैथुन त्यागते नही बनता । भारतीयो को इस प्रश्न पर गहरा विचार करना चाहिए । विदेशी लोग ब्रह्मचर्य की महत्ता भले ही न समझते हो या स्वीकार न करते हो, परन्तु भारत मे तो ऐसे महान् ब्रह्मचारी हो गये हैं जिन्होने ब्रह्मचर्य द्वारा महान् शक्ति-लाभ कर जगत् के समक्ष यह आदर्श उपस्थित कर दिया है कि ब्रह्मचर्य के प्रशस्त पथ पर चलने में ही मानव-समाज का कल्याण है । ब्रह्मचर्य ही कल्याण का मार्ग है, यह समझते-बूझते हुए भी विषयभोग मे सुख मानना और जब सतान उत्पन्न हो तो उसका निरोध करने के लिए कृत्रिम उपाय काम मे लाना घोर अन्याय है । वीर्य को वृथा बर्बाद करने के समान दूसरा कोई अन्याय नही है ।

हमारे अन्दर जो शक्ति और साहस है वह वीर्य के ही प्रताप से है । अगर शरीर मे वीर्य न हो तो मनुष्य हलन-चलन-गमनागमन आदि क्रियाएँ करने मे भी समर्थ नही हो सकता ।

इस प्रकार वीर्य की रक्षा करने में लाभ है और उसे

नष्ट करने में हानि है। आज भारत की जो दीन-हीन अवस्था दिखाई देती है उसका प्रधान कारण वीर्यनाश ही है। जिस वीर्य के प्रताप से बाल सफेद हुए बिना, दात गिरे बिना, और आख की शक्ति कम हुए बिना सौ वर्ष तक जीवित रहा जा सकता है, उस वीय को बुरे कामो मे या जघन्य आमोद-प्रमोद मे नष्ट करना क्या उचित कहा जा सकता है ? जो लोग ब्रह्मचर्य की मर्यादा का भली-भाँति पालन नही करते, उन्ही लोगो की बदौलत भारतवर्ष की यह दुर्दशा हुई है। तुम्हे ब्रह्मचर्य से प्रेम हो सकता है पर केवल बाते बनाने से ही तो काम नही चलना। अतएव ब्रह्मचर्य को जीवन में स्थान दो। तभी यह कहा जा सकता है कि तुम्हारे हृदय मे ब्रह्मचर्य के प्रति सच्चा प्रेम-भाव है। आज तो ब्रह्मचर्य के सामान्य नियमो का भी पालन नही होता और इसी कारण देश की दुर्दशा हो रही है।

चौथा 'भाव-ब्रह्मचर्य' है। शास्त्रकारो ने भाव-ब्रह्मचर्य के दस नियम बताये हैं। यह दस नियम पूर्ण ब्रह्मचारी और मुनियों के लिये हैं। पर अपूर्ण ब्रह्मचारी के लिए भी दस नियम हैं जो विवाहित-अविवाहित—युवा-वृद्ध सबके लिए लाभ-प्रद हैं। तुम भी उन नियमो पर श्रद्धा रखकर उनका पालन करो। तुमने और अनेक दवाएँ ली होगी पर वीर्य-रक्षा की दवा शायद नही ली होगी। यह नियम वीर्य-रक्षा की दवा है। तुम इस दवा का उपयोग कर देखो। देखना इससे कितना अधिक लाभ होता है।

अपूर्ण ब्रह्मचर्य के दस नियमों में पहला नियम भावना है। माता-पिता को ऐसी भावना लानी चाहिये कि मेरा पुत्र वीर्यवान् और जगत् का कल्याण करने वाला बने। इस

प्रकार की भावना से बहुत लाभ होता है। आप लोगो को—जो यहाँ वैठे हैं—अलग-अलग तरह के स्वप्न आते होगे। उसका क्या कारण है ? कारण यही है कि सवकी भावना भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। यह वात प्राय. सभी जानते हैं कि जैसी भावना होती है वैसा हो स्वप्न आता है। इसी प्रकार सतान के विषय मे माता-पिता की भावना जैसी होती है, वसी ही सतान वन जाती है। जिस प्रकार भावना से स्वप्न का निर्माण होता है, उसी प्रकार भावना से सतान के विचारो और कार्यों का निर्माण होता है। नीच विचार करने से खराव स्वप्न आता है और यही वात सतान के विषय मे भी समझनी चाहिए। सतान के विषय मे तुम जैसी भावना लाओगे, आगे चलकर सतान वैसी ही वन जायेगी। अतएव सतान के लिए और अपने लिए ब्रह्मचर्य की भावना निरन्तर लानी चाहिए।

ब्रह्मचर्य का दूसरा नियम भोजन-सवधी विवेक है। कुछ लोग ऐसा समझते है कि जिस खान-पान मे आनन्द आता है वही भोजन है, पर यह मान्यता भ्रमपूर्ण है। ब्रह्मचारी के भोजन मे और अब्रह्मचारी के भोजन मे वडा अन्तर होता है, गीता मे रजोगुणी, तमोगुणी और सतोगुणी का भोजन अलग-अलग वताया है। पर आज के लोग जिह्वा के वशवर्ती वनकर भोजन के गुलाम हो रहे हैं। यदि तुम अपनी जीभ पर भी अंकुश नही रख सकते तो आगे किस प्रकार वढ सकोगे ? विद्याभ्यास और शास्त्रश्रवण का फल यही है कि बुरे कामो मे प्रवृत्ति न की जाये। पर आज-कल खान-पान के सम्वन्ध मे वड़ी भयकर भूलें हो रही हैं और हालत ऐसी जान पड़ती है, मानो विद्याभ्यास का फल

खान-पान का मान भूल जाना ही हो।

आज चाय पीने का शौक इतना अधिक बढ गया है कि बस पूछिए नही। रोग के कारण किसी समय चाय पी लेना एक बात है, पर उसे एक पेय पदार्थ समझ कर स्त्रियो, बालको को चाय पिलावे, अथवा तेजी या स्फूर्ति पैदा करने के लिए चाय पीना-पिलाना, यह दूसरी बात है। चाय एक केफी पदार्थ हैं। इसके सेवन से शरीर को जो हानि पहुँचती है, उसका विचार करो। चाय ने आज कितना आधिपत्य जमा लिया है, इस सम्बन्ध में एक गुजराती कवि ने कहा है –

चाय तारी चाहना ज्यां-त्यां विशेषे वधी पड़ी,
पोह फाटतां मुँह फाटतां तुज आटे तलसी जीभड़ी।
दातण कर्युं के ना कर्युं, पण रांड तू तो झट खड़ी,
तारो अमोने हिंदमां, जोटो बीजो मलतो नथी।
अटकी नहिं तो एटले, ज्यां शाक लेवा जन जतां,
बाजारमा सुख—शान्ति गृह मां, देखी तुजने बेसतां।
बकवाद पण तारो थतो ने जागवुं तुज जाप थी,
नासी गया ए दूध दहीं पापिणी ताए पाप थी।
मिजमान ज्यां आव्या घरे सत्कार ताएथी थतो,
उत्सव अने मीजीलीस विषे वैभव न तुज विन छाजतो।
नाटक विषे चेटक विषे, मुसाफरियां तुं खड़ी,
खूब गरम फड़फड़ती कलेजुं बाली ने करी ठीकरी।
आचार-भ्रष्ट कर्यो वली ने जागवुं तुज जाप थी,
करी मंद जठर अनूप तुं धातु के बाली नाखती।
चूड़ेल चूसे रक्त निशदिन, रोजना रोगी कर्यां,
आश्चर्य वैद्य हकीम डाक्टर सर्व ने तें वश कर्यां।

जे न्यायता दातार न्यायाधीश पण तुजने वर्यां,
फरियाद तारी क्या करूं सर्व ने तें वष कर्यां।
भूल्यो तने हुं दोष देता तुं विचारी शुं करे,
ज्यां भलभला जन अंध थईने दीप लई कुवे पड़े।
सर्प छंछेड्यो सूतेलो तो करउतां वार शु,
छेड़ी तुंने वलगी पड़ी त्यां दोष तूज लगार शुं ?

चारो ओर घोर अन्धकार व्याप रहा है और इस अन्धाधुन्धी में लोग इधर-उधर भटकते फिरते हैं। कोई मनुष्य नागिन को माला समझ कर गले में पहन ले या घर मे सँभाल कर रख छोड़े तो निस्सदेह यह कहा जा सकता है कि वह मनुष्य अन्धकार मे पडा हुआ है। कोई कह सकता है कि कौन इतना मूर्ख होगा जो जहरीली नागिन को घर में सभाल कर रखेगा ! पर मैं कहता हू कि ऐसे मूर्खों का अस्तित्व न स्वीकार करने वाले स्वय ही ऐसा मूर्खतापूर्ण आचरण कर रहे है। क्या चाय नागिन की नाईं जहरीली नही है ? जो समय प्रभु की प्रार्थना करने के लिए है और जिस समय अपना दैनिक कार्यक्रम बनाना चाहिए, उस समय में चाय की उपासना करना कहा तक उचित है ? अगर किसी का यह खयाल हो कि चाय लाभदायक है तो वह किसी डाक्टर से पूछ देखे कि वह लाभदायक है या हानिकारक है ! जो डाक्टर स्वय चाय का गुलाम है वह भले ही चाय की तारीफ कर दे, मगर और कोई चाय की प्रशसा नही करता। जब गरमागरम चाय कोमल बालकों के पेट मे पहुँचती होगी, तब वह बालक की धातुओ को कितनी अधिक हानि पहुँचाती होगी ! धातु क्षीण हो जाने से उन्हें कितने रोग उत्पन्न होते होगे ! यदि चाय द्वारा पहुँची हुई

हानि के इतिहास की खोज की जाये तो बहुत से रहस्यो का उद्‌घाटन हो सकता है। चुडैल का भय तो आजकल जनता मे कम हो गया है। पर बीसवी सदी की यह नई चुडेल रातदिन मानव-रक्त को चूसकर उन्हे सत्वहीन बना रही है। पर इस चुडैल की फरियाद किससे की जाये? न्यायाधीश और राजा स्वय भी इसके गुलाम बन रहे हैं। ऐसा होने पर भी चाय की फरियाद सुनने वाले मौजूद है और वे हैं–चाय का त्याग करने का उपदेश देने वाले! फिर भले ही उनकी बात कोई माने या न माने। इस प्रकार की अनेक असावधानिया आज भोजन के विषय में दृष्टि-गोचर हो रही हैं।

तमाम ग्रन्थो और शास्त्रो मे मदिरापान का निषेध किया गया है, फिर भी शराब के शौकीन शराब का 'लाल शर्बत' नाम रखकर उसे गटक जाते हैं। चाय, शराब, तमाखू, बीडी आदि सब वस्तुएँ वीर्य-नाशक हैं। ऐसी वीर्य-नाशक वस्तुएँ खा-पीकर आज की प्रजा वीर्यहीन बन गई है। जब आज की प्रजा वीर्यहीन है तो भविष्य की प्रजा भी ऐसी ही वीर्यहीन होगी, यह निश्चित है। अतएव वीर्यरक्षा के लिए इस प्रकार की केफी चीजो का त्याग करना आवश्यक है। अपूर्ण ब्रह्मचय की रक्षा का यह दूसरा उपाय है। जिन चीजो के खान-पान से वीर्य का नाश होता हो ऐसी प्रत्येक चीज का त्याग करो, भक्ष्याभक्ष्य का विवेक रखो और वीर्य की रक्षा करो तो शरीर, मन और बुद्धि का भी विकास हो सकता है। शरीर की चरबी बढाना बल का प्रतीक नही है किन्तु मनोबल बढाना और मनोव्यापार को नियत्रण में रखना ही सच्चा बल है। आज भी ऐसे मनुष्यो की सत्ता

है जिनका शरीर चरबी से पुष्ट नही जान पडता, फिर भी बडे-बड़े पहलवान तक उनका मुकाबला नही कर सकते। इसलिए ऐसा न समझो कि चरबी बढाने से शरीर की शक्ति बढ जाती है, वरन् खाद्याखाद्य का विवेक रखते हुए मनोबल को सुसस्कृत बनाने का प्रयत्न करो।

वालक और वृद्ध का खान-पान भी आज एक-सा हो रहा है। वृद्ध लोग वालको को अपने साथ भोजन करने विठलाते हैं। कोई-कोई तो यहा तक कहते है कि वालक को साथ विठलाये विना भोजन रुचता ही कैसे है? पर वे वृद्ध यह सोचने का कष्ट नही करते कि जिस भोजन मे मिर्चमसाले का उपयोग किया गया है, जो भोजन गरिष्ठ और अत्यधिक तामसिक है, वह वालकों के योग्य कैसे हो सकता है? ऐसे भोजन से तो वालको की धातुओ का क्षय होता है।

इसी तरह स्त्रियो को भी खान-पान मे विवेक रखने की आवश्यकता है। सधवा और विधवा तथा कुमारी और विवाहिता स्त्रियो को भी भोजन मे विवेक रखना चाहिए। खान-पान का विवेक न होने से तथा भावना शुद्ध न होने से आज की कुमारिकाएँ छोटी उम्र मे ऋतुमती बन जाती है और फिर उनकी सतान निर्बल उत्पन्न होती हैं। अतएव कुमारियो में भी ब्रह्मचर्य की भावना उत्पन्न करनी चाहिए। 'तुझे कैसी वहू चाहिए', 'तेरे लिए कैसा दूल्हा ढूढें' इस प्रकार की बातें आजकल के माता-पिता अपने पुत्र-पुत्रियो मे करते हैं और यह समझते हैं कि हम उनसे प्रेम करते हैं। पर वास्तव में ऐसे निन्दनीय प्रेम के द्वारा वे अपनी सतान पर वचपन से ही बुरे सस्कार डालते हैं। आजकल

प्रसूतिगृहो मे स्त्रियों की अधिक मृत्यु होने का एक कारण यह भी है कि वे कच्ची उम्र मे ही गर्भवती हो जाती है।

प्रसव-वेदना की वृद्धि में पुरुषो का अत्याचार भी एक कारण है। मन पर नियत्रण न रखने से और खान-पान आदि का विवेक न रखने से ही यह भयानक स्थिति उत्पन्न हो गई है। आज जो थोडे से धनवान लोग हैं वे यह सोचते है कि हम तो मौज-मजा करें—स्त्री मर जाये तो भले मर जाये -दूसरी अनायास ही मिल जायेगी। इस दुर्भावना के कारण वे उचित-अनुचित का खयाल नही रखते। एक पत्नी-व्रत की भावना न होने से अनेक स्त्रियाँ पुरुषो की विषय-वासना का भोग बन गई हैं।

कहने का आशय यह है कि ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए सर्वप्रथम भावना शुद्ध रखनी चाहिए, दूसरे भोजन पर नियत्रण रखना चाहिए और तीसरे पोशाक का ध्यान रखना चाहिए। पोशाक का भावना के साथ घनिष्ट सबध है। हम साधुजन ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं अतएव वस्त्रों का हमे बहुत ध्यान रखना पडता है। यदि हम श्वेत वस्त्र के बदले रगीन वस्त्र पहने तो तुम लोग हमें उपालभ दोगे और कहोगे कि साधुओ को रगीन वस्त्र पहनना उचित नहीं है। पर वस्त्रो के विषय में जैसे साधुओ का ध्यान रखते हो वैसा ध्यान तुम अपने लिये क्यो नही रखते ?

कितनेक लोग अपनी फिलॉसफी बघारते हुए कहते है कि हम खादी पहिनें या विलायती वस्त्र पहिने, इसमे क्या धरा है ? वस्त्रो के विषय मे राग-द्वेष क्यो रखना चाहिए ? इस प्रकार कुछ लोग वस्त्रो की बात को राग-द्वेष का रूप देते

हैं और खादी के वस्त्रो को राजनीतिक रूप देते हैं। पर वास्तव में खादी मे, मिल के वस्त्र मे और विदेशी वस्त्र मे बहुत अन्तर है। पहले यही देखो कि मिल के और चर्बी लगे हुए वस्त्रो का आरम्भ कब से हुआ है ?

वस्त्र बनाने की कला सर्वप्रथम भगवान् ऋषभदेव ने सिखाई थी। क्या भगवान् यन्त्रकला से अनभिज्ञ थे जिससे उन्होने मिल का निर्माण और उनके द्वारा वस्त्र बनाना नही बताया ? वस्तुत वे यन्त्रकला से अनभिज्ञ नहीं थे, मगर उनकी यह मान्यता थी कि यन्त्रकला मे जगत् का विनाश सन्निहित है। यही कारण है कि उन्होने यन्त्रकला जैसी तूफानी कला नही सिखाई थी। उन्होंने ऐसी सादी कला का उपदेश दिया जिससे जनता अपना जीवन-निर्वाह भी कर सके और उसे किसी प्रकार हानि भी न पहुंचने पाए। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में कहा है कि भगवान ऋषभदेव ने 'जणाहिपट्ठाए' अर्थात् जनता के हित के लिए कला का उपदेश दिया था। भगवान् यन्त्र-कला को एक प्रकार का तूफान मानते थे अतएव उन्होंने इस कला का उपदेश न देकर ऐसी सादी कला जनता को सिखाई कि जिससे जनता सुगमता के साथ अपना निर्वाह कर सके।

कहने का तात्पर्य यह है कि पोशाक में भी विवेक की आवश्यकता है। सादी पोशाक पहनने वाले और चट-कीली-भड़कीली पोशाक पहनने वाले पुरुष की भावनाएं भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं। जो लोग मिल के चमकीले वस्त्र पहनते हैं वे अगर खादी पहनकर देखें तो उन्हे ज्ञात होगा कि वस्त्र के साथ भावना का कितना घनिष्ट संबंध है ? कदाचित् कोई कहने लगे कि खादीधारियो में भी लुच्चे-

लफगे पाये जाते हैं, तो इसका उत्तर यह है कि साधु-वेष-धारियो मे क्या कुछ बुरे लोग नही होते ? साधुवेषियो मे कौन भला है, कौन बुरा है, यह निर्णय जैसे अपनी बुद्धि से करते हो वैसे ही खादी-धारियो में भी भले-बुरे की पहचान कर सकते हो। यदि कोई खादी पहनने वाला मनुष्य धूर्त या लुच्चा है तो क्या यह कहा जा सकता है कि सभी खादी पहनने वाले धूर्त या लुच्चे होते हैं ? सब धान बाईस पसेरी नही तुलते। कहावत है—'फैशन फाँसी है, सादगी आजादी।' अर्थात् फैशन से बधनो की वृद्धि होती है और सादगी से आजादी हासिल होती है। अतएव वीर्य-रक्षा के लिए सादगी धारण करके, पोशाक पहनने मे विवेक रखना नितात आवश्यक है।

वीर्य-नाश का एक कारण एक ही कमरें में, एक ही बिछौने पर स्त्री-पुरुष का शयन करना भी है। एक ही कमरे मे और शय्या पर सोने से वीर्य स्थिर नही रह सकता। शास्त्र मे जहाँ स्त्री और पुरुष के सोने का वर्णन मिलता है वहाँ ऐसा ही वर्णन है कि स्त्री और पुरुष अलग-अलग शयनागार मे सोते थे। पर आज इस नियम का पालन होता नजर नही आता।

निष्क्रिय बैठे रहना भी वीर्यनाश का एक कारण है। जो लोग अपने शरीर और मन को किसी सत्कार्य में सलग्न नही रखते उन लोगो का वीर्य भी स्थिर नही रह सकता। यदि शरीर और मन को निष्क्रिय न रखा जाये तो वीर्य को हानि नही पहुँचती।

रात्रि मे देर तक जागरण करना, सूर्योदय होने के बाद भी सोते रहना और अश्लील साहित्य का पढ़ना, यह

सब भी वीर्यनाश के कारण है। अश्लील चित्र देखने से और अश्लील पुस्तके पढने से भी वीर्य स्थिर नही रहता। आज जहाँ-तहाँ अश्लील पुस्तकें पढने और अश्लील चित्र देखनें का प्रचार हो गया है। आजकल लोग महापुरुषो और महासतियो के जीवन-चरित्र पढने के बदले अश्लीलता पूर्ण पुस्तके पढने के शौकीन हो गये है। उन्हे यह विचार ही नही आता कि ऐसा करने मे जीवन मे कितने विकार आ घुसे हैं! कहावत है—'जैसा वाँचन वैसा विचार।' इस कहावत के अनुसार अश्लील पुस्तको के पठन से लोगो के विचार भी अश्लील वनते जा रहे हैं।

नाटक-सिनेमा देखना भी वीर्य-नाश का कारण है। आजकल नाटक-सिनेमाओ की धूम मची हुई है। जहाँ देखो वही गरीव से लेकर अमीर तक—सवको नाटक-सिनेमाओं मे फँसाने का प्रयत्न किया जा रहा है और इस प्रकार सिनेमा वीर्य-नाश के साधन बन रहे हैं।

कदाचित् कोई कहने लगे कि सब नाटक-सिनेमा खराव नही होते, कुछ तो वहुत ही अच्छे होते हैं। वहुतेरे नाटको में राम-हरिश्चन्द्र जैसे महापुरुपो के चित्र प्रदर्शित किये जाते हैं। ऐसी अवस्था में नाटक देखने मे क्या हानि है? उसका उत्तर यह है कि यदि किसी वगीचे में दो-चार वृक्ष अच्छे हो और शेप सभी वृक्ष जहरीले हो तो क्या तुम उस वगीचे मे जाना पसंद करोगे? इसी प्रकार नाटको में कुछ ही पात्र नाम-मात्र के लिए अच्छे होते है। शेष सभी पात्र खराव होते हैं और मन पर उनका वहुत बुरा प्रभाव पडता है। आजकल के सिनेमा तो नैतिकता मे इतने पतित और निर्लज्जतापूर्ण होते सुने जाते हैं कि कोई भलामानस अपने

बाल-बच्चो के साथ उन्हे देख नही सकता । सिनेमाओ के कारण आज लाखो नवयुवक आचरणहीन बन रहे हैं । इन सिनेमाओ की बदौलत भारतीय नारी अपनी महत्ता का विस्मरण कर भारतीय सभ्यता के मूल मे कुठाराघात कर रही है । यह अत्यन्त खेद की बात है । इसी प्रकार ग्रामोफोन को भी आनन्द का साधन समझा जाता है पर उसके द्वारा सस्कारो में कितनी बुराइयाँ घुस रही हैं, इस ओर कितने लोगो का ध्यान जाता है ?

स्वप्नदोष में भी वीर्य का नाश होता है । कुछ लोग कहा करते हैं कि वीर्य-रक्षा से स्वप्नदोष होता है पर यह कथन भ्रमपूर्ण है । इस भ्रामक विचार का परित्याग करके, स्वप्नदोष के असली कारण का पता लगाना चाहिए । फिर उस कारण से बच कर दोष-निवारण का प्रयत्न करना चाहिए । जब तुम सो रहे होओ तब तुम्हारे जेब में से अगर कोई रत्न निकाल कर ले जाने लगे और उसी समय तुम जाग उठो तो आँखो देखते क्या रत्न ले जाने दोगे ? नहीं, तो फिर स्वप्नदोष के कारण जान-बूझ कर वीर्य को नष्ट होने देना कहाँ तक उचित कहा जा सकता है ?

वीर्य-रक्षा करने के लिये ऊपर जिन उपायो का निर्देश किया गया है, उनके साथ ही साथ आत्म-सयम की भी आवश्यकता है । आत्म-सयम के लिए परमात्मा की प्रार्थना करते रहो । इससे तुम्हे उस परम तत्त्व की प्राप्ति होगी जो अब तक प्राप्त नही हो सका है ।

अब इन सब बातो का सार एक प्राचीन कथा द्वारा तुम्हे समझाता हू ।

ब्रह्मचर्य के विषय में भी आज युवको और वृद्धो मे वडी खेंचतान चल रही है। कुछ लोग कहते हैं—कन्या को अपनी इच्छा के अनुसार वर पसद कर लेने का अधिकार है, पर जातिभेद आदि कारणो से इस अधिकार मे बाधा खडी हुई है। इसके विरुद्ध पुराने जमाने के वृद्ध या उन जैसे विचार रखने वाले लोग कहते हैं—'आज का युवक उच्छृंखल वन गया है, अतएव लडको और लडकियो को जरा भी अधिकार नही है। हम जिसके साथ उसका विवाह करेंगे उसी के साथ रहने को उन्हे तैयार रहना चाहिए।'

इस प्रकार वृद्धो और युवको के वीच सघर्ष चल रहा है। इस सघर्ष का किस प्रकार निवारण किया जा सकता है? यह वात इस प्राचीन कथा से जानी जा सकेगी।

भीष्मकुमार की कथा

यह भीष्मकुमार की कथा है। पहले भीष्म का नाम गगकुमार था। फिर उसका नाम देवव्रत हुआ और फिर भीष्म प्रतिज्ञा करने के कारण 'भीष्म' नाम पड गया।

एक वार भीष्म मे किसी ने कहा—आपने विवाह न करके वहुत वुरा किया है। इससे भारत को वहुत हानि पहुँची है। अगर आप विवाह करते तो आपकी सतान भी आपकी ही तरह पराक्रमी और वीर्यवान् होती पर आपके विवाह न करने से भारत ऐसी सतान से वचित रह गया! यही भारत की वडी हानि है।

भीष्मकुमार ने कहा—मैं विवाह करता तो मेरी सतान भी मेरी जैसी होती, यह नही कहा जा सकता। क्षीरसागर में विष भी हो सकता है! मगर मेरे ब्रह्मचर्य का आदर्श

मानकर न मालूम कितने व्यक्ति ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे और इस प्रकार अपना तथा जगत् का कल्याण करेंगे ।

गगकुमार का विचार पहले ब्रह्मचर्य पालने का नही था । किन्तु उन्होने सोचा—जहाँ तक मै आजीवन ब्रह्मचर्य न पालूगा वहाँ तक पिता की इच्छा पूरी नही हो सकती । इस प्रकार अपने पिता की इच्छा की पूर्ति के लिए उन्होने आजीवन ब्रह्मचर्य पालन किया । इस कथा से यह भी विदित हो जायेगा कि पिता का क्या धर्म है और पुत्र का क्या कर्त्तव्य है ?

सत्यवती उर्फ मत्स्यगधा या योजनगधा को देखकर राजा शान्तनु ने उसके साथ वार्तालाप किया और मन-ही-मन यह भी निश्चय कर लिया कि इस सर्वोत्कृष्ट कन्या के साथ विवाह कर इसे रानी बना लेना चाहिए । अब वह यह सोचने लगे कि इस विचार को कार्य रूप मे किस प्रकार परिणित किया जाये ? राजा ने पूछा—'तुम किसकी पुत्री हो ?' कन्या ने उत्तर दिया— 'सुदास की ।'

राजा अपनी सत्ता से सुदास को अपने पास बुला सकता था । पर केवल हुक्म चलाना बुद्धि का काय है, हृदय का कार्य तो धर्म का विचार करना है । राज शान्तनु धर्म का विचार कर स्वय याचक बनकर सुदास के पास गया । राजा ने उसे दाता बनाया और आप स्वय याचक बना । यहाँ यह देखने योग्य है कि कन्या के पिता का क्या कर्तव्य है ? सुदास यह सोच सकता था कि मै अपनी कन्या राजा को दे दूगा तो मेरा वैभव बढेगा और मैं धनवान बन जाऊँगा । पर वह इस प्रलोभन मे नही पडा । उसने अपनी कन्या का भावी हित देखा और एक राजा द्वारा मँगनी

करने पर भी उसने राजा से कहा– 'मै अपनी कन्या आपको देने मे असमर्थ हू । आपका पुत्र गगकुमार विकट वीर है। राज्य का स्वामी वही बनेगा और मेरी कन्या से उत्पन्न हुआ पुत्र राज्य का अधिकारी नहीं हो सकेगा। वह इधर-उधर मारा-मारा भटकता फिरेगा । अतएव मैं अपनी कन्या आपको देने के लिए लाचार हूं।' वास्तव मे माता-पिता का यह कर्तव्य है कि वे अपनी सतान के हित पर पहले ध्यान दे । उन्हे अपने स्वार्थ-साधन का जरिया न बनावे।

सुदास का उत्तर सुनकर राजा सोचने लगा–'यद्यपि यह कन्या मुझे अत्यन्त प्रिय है, किन्तु इसके लिए अपने प्रिय पुत्र गगकुमार का अधिकार कैसे छीना जा-सकता है ? मैं अपनी इच्छा को दबाये रखूगा, पर गगकुमार के अधिकार का अपहरण न करूगा ।'

भाँति-भाँति के विचारो मे डूबता-उतरता हुआ राजा राजमहल की ओर लौट आया । वह सुदास की कन्या की मंगनी करने के लिए पश्चात्ताप करने लगा । दूसरी ओर उसका हृदय सुदास की कन्या की ओर अत्यन्त आकृष्ट हो गया था और इस कारण वह सुन्दरी कन्या उसके मानस-चक्षुओ के सामने पुन:-पुन प्रकट होकर राजा को चिन्तातुर बनाये हुए थी । इसी चिन्ता का मारा राजा दिनो-दिन क्षीण होता जा रहा था ।

पिता की चिन्ता का कारण मंत्रियों द्वारा जानकर गगकुमार ने अपने पिता का कष्ट दूर करने के उद्देश्य से सुदास के पास जाने का निर्णय किया । मन्त्रियो ने कहा – सुदास को यहाँ क्यो न बुला लिया जाये ? आपका उसके पास जाना नही सोहता ! गगकुमार ने कहा– जब हम उसकी

कन्या लेना चाहते हैं तो धर्म-विरुद्ध कार्य नही करना चाहिए। अत उसी के घर जाना उचित है। इस प्रकार निर्णय कर गगकुमार मन्त्रियो के साथ सुदास के घर चला। गगकुमार और मन्त्रियो को अपने घर की ओर आता देख सुदास ने सोचा—मैंने महाराज को अपनी कन्या देना स्वीकार नही किया है, शायद इसी कारण मुझे दड देने के लिए तो ये लोग नही आ रहे हैं ? पर मैंने उन्हे कोई अनुचित उत्तर नही दिया। ऐसी अवस्था मे अगर प्राण जाएँ तो चले जाएँ, मुझे डर किस बात का है !

गगकुमार ने सुदास से कहा—'अपना सौभाग्य समझो कि पिताजी तुम्हारी कन्या चाहते हैं और तुम्हारे जामाता बन रहे हैं। नातेदारी के लिहाज से तुम मेरे नाना बन रहे हो। फिर भी—तुम इस सबध को अस्वीकार क्यो कर रहे हो ?' सुदास ने उत्तर दिया—इस सबध मे आप ही बाधक है। यदि आप यह प्रतिज्ञा करे कि सत्यवती (मत्स्यगधा) का पुत्र ही राज्य का अधिकारी होगा, तो महाराज के साथ अपनी कन्या का विवाह करने मे मुझे तनिक भी आनाकानी नही है !

सुदास का उत्तर सुनकर गगकुमार सोचने लगे—'आज वास्तव मे यज्ञ का अवसर उपस्थित है।' लोग यज्ञ का अर्थ सिर्फ आग मे घी होमना करते है पर सच्चा यज्ञ क्या है, इस विषय में कहा गया है—

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति,
शब्दादिविषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति।
सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे,
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते।

आज श्रोत्र आदि इन्द्रियों को पिता के हित के लिए मैं यज्ञ मे समर्पण करता हू । हे कान ! तू ने बहुत बार सुना है कि गगकुमार युवराज है, पर अब इस कथन का पिता के हित की अग्नि मे आज उत्सर्ग करना होगा और सत्यवती का पुत्र युवराज है, इस कथन में आनद मानना होगा ! हे नेत्रो ! तुम राजसी पोशाक को देखकर आनद मानते थे, पर अब इस इच्छा को यज्ञ में होमना होगा और भाई को राजा के रूप मे देखकर प्रफुल्लित होना पडेगा ! हे जिह्वा ! तू भी अपने विषयो से लोलुपता त्याग दे, क्योकि पिता के हित के लिए तेरे विषयो को भी मैं यज्ञ की सामग्री बनाऊँगा ! अरे मस्तक ! तू बहुत दिनो तक उन्नत, ऊँचा रहा है पर अब सत्यवती के पुत्र के सामने तुझे झुकना होगा ! और उसे राजा स्वीकार करना होगा ।

अग्नि मे घी का होम करके यज्ञ करने वालों की कमी नही है पर ऐसा महान् यज्ञ करने वाले विरले ही होते हैं।

गगकुमार कहता है— हे शरीर ! तू राजा बनना चाहता था पर अब भाई को राजा बनाकर अपने हाथ मे उसके ऊपर चँवर ढोरने पडेंगे । इस प्रकार पिता के हित के लिए अपने स्वार्थ का यज्ञ करना पडेगा ।

युवको के लिए यह एक महान् आदर्श है । देश, धर्म और माता-पिता के लिए ऐसा अनूठा त्याग करने वाले युवकों की बात कौन नही मानेगा ?

इसी प्रकार पिता का कर्त्तव्य क्या है ? यह बात राजा शान्तनु के विचारो मे देखो । राजा चाहता तो यह वचन दे सकता था कि सत्यवती की कूख से जन्म लेने वाला पुत्र ही राज्य का अधिकारी होगा और यह वचन

देकर वह सत्यवती के साथ विवाह कर सकता था। पर उसने ऐसा नही किया। उसने सोचा—मैं अपनी कामना की पूर्ति की खातिर पुत्र के अधिकार का अपहरण कैसे कर सकता हू ! इस विचार के वशवर्ती होकर उसने अपनी इच्छा का दमन करना न्याय-सगत समझा, पर पुत्र के अधिकार को छीनना उचित न समझा। इसी प्रकार जहाँ पिता-पुत्र एक दूसरे के हित का ही विचार करते हैं वहाँ कभी आपसी वैमनस्य या सघष उत्पन्न नही होता। वृद्ध और युवक इसी भाँति हिलमिल कर चले तो उत्थान और शाति के साथ-साथ आनद का सवत्र प्रचार हो सकता है।

तो गगकुमार ने सुदास से कहा—'पिता के हित के यज्ञ मे मैंने अपना सर्वस्व होम दिया है, इस कारण, सुदास ! मैं तुम्हारे सामने प्रतिज्ञा करता हू कि मैं राज्य स्वीकार नही करूंगा और तुम्हारी पुत्री से जो पुत्र उत्पन्न होगा वही राज्य का अधिकारी होगा।'

गगकुमार की यह प्रतिज्ञा सुनकर सुदास कहने लगा—'आप वास्तव मे वीर पुरुष हैं। आप जैसी प्रतिज्ञा और कौन कर सकता है ? पर मुझ से एक भूल हो गई है। आपका पुत्र भी आप ही जैसा पराक्रमी होगा। आप राज्य नही स्वीकार करेंगे पर आपका पुत्र, मेरी पुत्री के पुत्र को राज-सिहासन पर भला कब बैठने देगा ? वह यह कहेगा कि राज्य मेरे पिता के अधिकार मे है अतएव राज्य का असली अधिकारी मैं ही हू। मेरे पिता ने यदि राज्य त्याग दिया था तो क्या हुआ ? मैंने तो कभी राज्य का परित्याग नही किया है। मैं अपने उत्तराधिकार को क्यो त्याग दू ? इस प्रकार कहकर आपका पुत्र, मेरी पुत्री के

संतति-नियमन

—*—

समुद्रविजय-सुत श्रीनेमीश्वर, जादव कुल को टीको,
रतन कूंख धरणी शिवादेवी, तेहनो नन्दन नीको।
श्री जिन मोहनगारो छे, जीवन प्राण हमारो छे ॥१॥

श्री अरिष्टनेमि भगवान् की यह प्रार्थना की गई है। आज मुझे जिस विषय पर बोलने के लिए कहा गया है, वह विषय भगवान् अरिष्टनेमि की प्रार्थना में ही प्रतिभासित हो रहा है।

संसार की दशा सुधारने के लिए महापुरुषो ने जो आचरण किया है और उन्होंने जिस पथ पर प्रयाण किया है, उस पथ का अनुसरण करने के लिए वे समस्त संसार को आह्वान कर गये हैं। उन्होंने कहा—हे जगत् के जीवो! समय की विचित्रता और विपरीतता के कारण कदाचित् तुम्हारे सामने ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो सकती है जब तुम किंकर्तव्य-मूढ हो जाओ, तुम्हे यह न सूझ पडे कि ऐसी दशा मे क्या करे, क्या न करे? उस समय तुम लोग हमारे आचरण को दृष्टि मे रख कर, हम जिस मार्ग पर चले है उस मार्ग पर चलोगे और उस मार्ग को छोडकर उलटे मार्ग पर नही चलोगे तो, तुम्हारा कल्याण होना निश्चित है। इस प्रकार महापुरुष अपने आचरण का आदर्श जगत् के हित के लिए उत्तरा-

धिकार के रूप में छोड़ गये हैं।

इन महापुरुषो में भगवान् अरिष्टनेमि का स्थान सर्वोत्कृष्ट है। वे ससार के समक्ष ब्रह्मचर्य का उच्च आदर्श उपस्थित कर गये हैं। आज उनके समान परिपूर्ण ब्रह्मचर्य न पाला जा सके, तो भी यदि उनके ब्रह्मचर्य के आदर्श को दृष्टि के सामने रख कर जीवन-व्यवहार चलाया जाये तो कल्याण हो सकता है।

भगवान् अरिष्टनेमि ने भर जवानी में विवाह करने का त्याग किया था। यद्यपि वे ब्रह्मचारी ही रहने वाले थे और उनसे पहले के इक्कीस तीर्थंकरो ने उनके विषय मे यही भविष्यवाणी की थी कि भगवान् अरिष्टनेमि बाल-ब्रह्मचारी रहेगे, फिर भी उन्होने स्वय यह घोषित नही किया था कि—'मैं' बाल-ब्रह्मचारी रहूंगा—ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा।' इसका कारण मुझे अपनी बुद्धि के अनुसार यह प्रतीत होता है कि उस समय ससार मे हिंसा का घोर पातक फैला हुआ था। यह तो नही कहा जा सकता कि उस समय अहिंसा की प्रवृत्ति थी ही नही, या ब्रह्मचर्य को बुरी निगाह से देखा जाता था, पर इन्द्रियलोलुपता के कारण उस समय हिंसा का ताण्डव नृत्य हो रहा था। रसेन्द्रिय के लोलुप लोग अपनी लोलुपता का पोषण करने के लिए घोर हिंसा करने में सकोच नही करते थे। मेरी समझ में, इस घोर हिंसा का निवारण करने के लिए ही भगवान् ने बाल-ब्रह्मचारी रहने की घोषणा नही की थी।

सतति-नियमन

भगवान् अरिष्टनेमि के समय मे रसेन्द्रिय की लोलुपता

बढ जाने का ही उल्लेख मिलता है, किन्तु इस जमाने में जननेन्द्रिय की लोलुपता ने प्रचण्ड रूप धारण किया है और इसके फलस्वरूप सन्तानोत्पत्ति में वृद्धि हो रही है। सतानो की इस बढ़ती को देखकर कई लोग यह सोचने लगते हैं कि गरीब भारतवर्ष के लिए सन्तान-वृद्धि-एक असह्य भार है। इस भार से भारत को बचाने के लिए उपाय ईजाद किया गया है कि सन्तान की उत्पत्ति के स्थान को ही नष्ट कर दिया जाये ! न रहेगा बास, न बजेगी बासुरी !

यह उपाय सतति-नियमन या सतति-निरोध कहलाता है और इसी विषय पर मुझे अपने विचार प्रकट करने के लिए कहा गया है। इस विषय का न तो मेरा अधिक अभ्यास है और न अध्ययन ही। पर समाचारपत्रो और कुछ पुस्तको को पढकर मैं यह जान पाया हू कि कुछ लोग बड़े जोर-शोर से कहते है कि—बढती जाती हुई सतान को अटकाने के लिए शस्त्र या औषध द्वारा स्त्रियो की जनन-शक्ति का नाश कर दिया जाये, उनके गर्भाशय का ऑपरेशन कर डाला जाये, या फिर उनके गर्भाशय को इतना निर्बल बना दिया जाये कि सतान की पैदाइश हो ही न सके। इस उपाय द्वारा सतति-निरोध करने की आवश्यकता बतलाते हुए वे लोग कहते हैं :—

ससार आज बेकारी के बोझ से दबा जा रहा है। भारतवर्ष तो विशेष रूप से बेकारी की बीमारी का मारा कराह रहा है। ऐसी दुर्दशा में खर्च मे वृद्धि करना उचित कैसे कहा जा सकता है ? इधर सतान की वृद्धि के साथ अनिवार्य रूप से व्यय मे वृद्धि होती है। सतान जब उत्पन्न होती है तब भी खर्च होता है, उसके पालन-पोषण में खर्च

होता है, उनकी शिक्षा-दीक्षा में भी खर्च उठाना पडता है। उस दशा में जब कि अपना और अपनी पत्नी का पेट पालना भी दूभर हो जाता है, सतान उत्पन्न करके खर्च मे वृद्धि करना आर्थिक सकट को अपने हाथो आमत्रण देना है। आर्थिक सकट के साथ अन्य अनेक कष्ट बढ जाते हैं। अतएव स्त्रियो की जनन-शक्ति नष्ट करके यदि सतानोत्पत्ति से छुटकारा पा लिया जाये तो बहुत-से कष्टो से बचा जा सकता है।

यह आधुनिक सुधारको या संतति-नियमन के कृत्रिम उपायो के प्रचारको की प्रधान युक्ति है। इस पर यदि गहरा विचार किया जाये तो साफ मालूम हो जायेगा कि यह युक्ति निस्सार है। ससार मे बेकारी बढ गई है, गरीबी बढ गई है, और इससे दु.ख बढ गया है इस कारण सतति-नियमन को आवश्यकता है, यह सब तो ठीक है। किन्तु गरीबी और बेकारी की विपदा से बचने के लिए सतति-निरोध का जो उपाय बताया जाता है वह उपाय प्रत्येक दृष्टि से अत्यन्त ही हानिकारक, निन्दनीय और घृणित है। इस सबध में मैं जो सोचता हू उसे कोई माने या न माने, यह अपनी-अपनी इच्छा और सस्कार पर निर्भर है, पर मैं प्रकट कर देना चाहता हू। आजकल यह कहा जाता है कि यह विचार-स्वातन्त्र्य का युग है। सबको अपने-अपने विचार प्रकट करने का अधिकार है। यदि यह सच है तो मुझे भी अपने विचार प्रकट करने का अधिकार है। अतएव इस सबध मे जो बात मेरे मन मे आई है वह प्रकट कर दना मैं अपना कर्तव्य समझता हूं।

कल्पना करो एक अत्यन्त सुन्दर बगीचा है। इस बगीचे मे भाँति-भाँति के वृक्ष है। इन वृक्षो मे एक बहुत

ही सुन्दर वृक्ष है । भारतीयता की दृष्टि से इस सुन्दर वृक्ष को आम का पेड समझा जा सकता है । क्योकि आम भारत-वर्ष का ही वृक्ष है, ऐसा सुना जाता है ।

समय के परिवर्तन के कारण अथवा जमीन नीरस हो जाने के कारण, आम के वृक्ष मे यद्यपि फल बहुत लगते हैं किन्तु जो फल पहले सुन्दर, स्वादिष्ट और लाभकारक होते थे, उनके बदले अब उसमे नीरस और हानिकारक फल आने लगे हैं । अब कुछ लोग, जो जनमानस के हितैषी होने का दावा करते हैं, आपस मे मिलकर यह विचार करने लगे कि आम के फलो से जनता में फैलने वाली बीमारी का निवारण किस प्रकार किया जाये ?

उनमे से एक ने कहा—इसमे आम के पेड़ का तो कोई अपराध नही है । पेड बेचारा क्या कर सकता है ? उसके फलो से जनता को हानि पहुच रही है और जनता को उस हानि से बचाने का भार बुद्धिमानो पर है, अतएव बुद्धिमानो को ऐसा कोई उपाय खोजना चाहिए जिससे यह सुन्दर वृक्ष भी नष्ट न हो और उसके फलों से जनता को हानि भी न पहुँचे ।

दूसरे ने कहा— मै ऐसी एक रासायनिक औषधि जानता हूं जिसे इस वृक्ष की जड में डाल देने से वृक्ष फल देना ही बंद कर देगा । ऐसा करने से सारा झंझट ही मिट जायेगा । उस औषधि के प्रयोग से न तो वृक्ष में फल लगेगे, न लोग उसके फल खाने पायेंगे । तब फलों द्वारा होने वाली हानि आप ही बंद हो जायेगी ।

तीसरे ने कहा—वृक्ष मे फल ही न लगने देना, उसकी

स्वाभाविकता का विनाश करने के समान है। ऐसा किया जायेगा तो आम वृक्ष का नाम-निशान तक शेष न बचेगा। इसलिए यह उपाय उचित नही प्रतीत होता।

चौथे ने कहा—मैं एक ऐसा उपाय बता सकता हूं जिससे वृक्ष मे अधिक फल नही आने पाएँगे। जितने फलो की आवश्यकता होगी उतने ही फल आएँगे और शेष सारे नष्ट हो जाएँगे।

पाँचवाँ बोला—इससे लाभ ही क्या हुआ ? जितने भी फल नष्ट होने से बच रहेगे वे तो हानि-जनक होंगे ही। वे भी नीरस, निस्सत्व और खराब ही होंगे। तो फिर इस उपाय से दुनिया को क्या लाभ होगा ? मैं एक ऐसा उपाय जानता हू, जिससे यह वृक्ष भी सुन्दर और सुदृढ बनेगा और इसके फल भी स्वादिष्ट और स्वाथ्यकारी होगे। साथ ही जितने फलो की आवश्यकता होगी उतने ही फल उसमे लगेगे, अधिक नही लगेगे। वे फल इतने मधुर और लाभप्रद होंगे कि उनसे किसी को हानि पहुँचने की सभावना तक न रहेगी, वरन् लाभ ही लाभ होगा।

चौथे सज्जन ने कहा—यह एकदम अनहोनी बात है। ऐसा कोई भी उपाय सफल नही हो सकता। इस उपाय से वृक्ष भी नही सुधर सकता और आवश्यकता के अनुसार परिमित फल भी नही आ सकते।

पाँचवे ने उत्तर दिया—भाई, तुम्हारा उपाय कारगर हो सकता है और मेरा उपाय नही, यह क्यो ? मेरी बात का समर्थन करने वाले अनेक प्रमाण मौजूद हैं। प्राचीन-कालीन शास्त्र से भी मेरी बात पुष्ट होती है और वर्तमान-

कालीन व्यवहार से भी सिद्ध हो सकती है। ऐसी दशा मे प्रत्यक्ष-सिद्ध वस्तु को भी स्वीकार न करना और असभव कहकर टाल देना कहाँ तक उचित है ?

इन पाँचवे सज्जन ने अपने कथन के समर्थन में ऐसे अनेक प्रमाण उपस्थित किये जिनसे प्रभावित होकर सबने एक स्वर से उनका कथन स्वीकार कर लिया और उनके द्वारा बताया हुआ उपाय सब ने पसद किया।

यह एक दृष्टान्त है और सतति-नियमन के सबध मे इसे इस प्रकार घटित किया जा सकता है :—

यह ससार एक बगीचे के समान है। ससारी जीव इस बगीचे के वृक्ष हैं। जीव-रूपी इन वृक्षो मे मानव-वृक्ष सबसे श्रेष्ठ है। इस मानव-रूपी वृक्ष में किसी कारण से अति सन्तान-रूप फल बहुत लगते हैं और ये फल नि:सत्व और हानिकारक होने से भार-रूप प्रतीत होते है। अति सतति की बदौलत मनुष्य के बल-वीर्य का ह्रास हो रहा है, खर्च का भार बढ गया है, बेकारी बढ गई है और अतएव सतान भी दुखी हो रही है।

आज के सुधारक—जो अपने को ससार के और विशेषत मानव-समाज के हितैषी मानते हैं—इस दुरावस्था को समझे और उसे दूर करने के लिए उपायो पर विचार करने लगे।

इन सुधारकों मे से एक कहता है विज्ञान की बदौलत मैंने एक उपाय ऐसा खोज निकाला है, जिससे मनुष्य-रूपी वृक्ष कायम रहेगा, उसके सुख-सौन्दर्य को किसी प्रकार की क्षति न पहुँचेगी और साथ ही उस पर अति सतति रूप-भार भी न पडेगा और वह उपाय यह है कि

शस्त्र या औषध के प्रयोग से गर्भाशय का सफाया कर दिया जाये ।

इस प्रकार सतति-नियमन के लिए एक व्यक्ति गर्भाशय का नाश करने की सम्मति देता है । दूसरा कहता है कि ऐसा करने से तो मनुष्य समाज ही समूल नष्ट हो जायेगा, अतएव यह उपाय प्रयोजनीय नही है ।

आजकल के सुधारक बढती हुई सतति का निरोध करने के लिए इसी को अतिम उपाय मानते हैं । बहुत-से लोगो को यह उपाय पसद भी आ गया है और वे इसका प्रचार भी करते हैं । सुना नो यहाँ तक जाता है कि इस उपाय का प्रचार करने के लिए सरकार भी सहायता दे रही है ।

लोग यह सोचते है कि इस उपाय का प्रयोग करने से हमारे विषय-भोग मे भी बाधा नही पडेगी और हमारे ऊपर सतान का बोझ भी न पडेगा । अति सतति की उलझन से भी छुटकारा मिल जायेगा और आमोद-प्रमोद मे भी कमी न करनी पडेगी । जान पडता है इसी विचार से प्रेरित होकर लोग इस उपाय का अवलम्बन करने के लिए ललचा उठे है ।

भगवान् अरिष्टनेमि के जमाने मे जिस प्रकार जिह्वा-लोलुपता का प्रचार हो रहा था उसी प्रकार आज जननेन्द्रिय अथवा स्पर्शनेन्द्रिय ने प्राय सर्वसाधारण को अपना दास बना लिया है । विषय-लोलुपता के कारण आज की जनता मे अपनी सतान के प्रति भी द्रोह की भावना उत्पन्न हो गई है और इसी कारण सतान को विषय-भोग में बाधक माना जा रहा है । इस विघ्न-बाधा को हटाकर, अपनी काम-

लिप्सा को निरंकुश और निर्विघ्न वनाने के जघन्य उद्देश्य मे प्रेरित होकर ही लोग उपर्युक्त उपाय काम मे लाना पसन्द करते हैं। जहां विषय-भोग को वासना में वृद्धि होती है वहाँ इस प्रकार की कुत्सित मनोवृत्ति होना स्वाभाविक है। गीता में कहा है–

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते,
सङ्गात्सञ्जायते काम. कामात् क्रोधोऽभिजायते ।
क्रोधाद् भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः,
स्मृतिभ्रंशाद् वुद्धिनाशो वुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥

इन्द्रिय-लोलुपता किस प्रकार विनाश को जन्म देती है, इसका स्वाभाविक क्रम गीता मे इस प्रकार वताया गया है :–

विषयो का विचार करने से सग उत्पन्न होता है, सग से काम की उत्पत्ति होती है। काम से क्रोध, क्रोध से सम्मोह अर्थात् अज्ञान का जन्म होता है, अज्ञान से स्मृति का नाश होता है, स्मृति के नाश से वुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और वुद्धि-भ्रष्ट हो जाने के फल-स्वरूप सर्वनाश हो जाता है।

आज सतति-नियमन के लिए जिस दृष्टि को सन्मुख रखकर उपायो की आयोजना की जा रही है और जिन उपायो को कल्याणकारी समझा जा रहा है, उनका भावी परिणाम देखते हुए यही कहा जा सकता है कि यह सव विनाश का पथ है।

जनसाधारण के विचार के अनुसार विषय-भोगों का त्याग नहीं किया जा सकता। इसी भ्रान्त विचार के कारण विषय-लालसा जागृत होकर विषय-भोग का सेवन किया जाता है। अधिक से अधिक स्त्री-संग करके विषयो का सेवन किया

जाये, ऐसी इच्छा की जाती है। इस इच्छा की पूर्ति के लिए कामोत्तेजक गोलियाँ, याकूती गोलियाँ आदि जीवन को बर्बाद करने वाली चीजो का उपयोग किया जाता है। आज-कल विषय-भोग की लालसा इस सीमा तक बढ गई है कि जीवन को मटियामेट करने वाली, कामवर्धक चीजो के विज्ञापनो को रोकने की ओर तो तनिक भी ध्यान नही दिया जाता, उलटे सतति रोकने के लिए कृत्रिम उपायो का आश्रय लिया जा रहा है।

कहने का आशय यह है कि स्त्री-सग करने से काम-वासना जागृत होती है और उससे क्रोध उत्पन्न होता है। जो कामवासना को चरितार्थ करने मे बाधक हो, उस पर क्रोध आना स्वाभाविक ही है। सतान पर क्रोध आने का यही प्रधान कारण है। इस भावना के कारण अपनी प्यारी सतान भी शैतान का अवतार प्रतीत होती है। यही कारण है कि सतान के खर्च मे वृद्धि होती है और वह भोग भोगने मे विघ्न उपस्थित करती है। इस कारण ऐसे उपायो की योजना की जाती है जिससे सतान पैदा ही न होने पाए। किन्तु यह वृत्ति अत्यन्त भयकर है। जिस दृष्टि को सन्मुख रखकर आज सतान पर क्रोध किया जाता है, उसके प्रति द्रोह किया जा रहा है और उसकी उत्पत्ति का नाश किया जा रहा है, उस दृष्टि पर यदि गहरा और दूरदर्शितापूर्ण विचार किया जाये तो जान पडेगा कि यह दृष्टि धीरे-धीरे बढती हुई कुछ-भी काम न कर सकने वाले—अतएव भार-स्वरूप समझ लिये जाने वाले—वृद्ध और अपाहिज पुरुषो के विनाश के लिए प्रेरित करेगी। इससे जिस प्रकार सन्तान के प्रति व्यवहार किया जा रहा है उसी प्रकार वृद्धो के प्रति भी निर्दयता-

पूर्ण व्यवहार करने की भावना उत्पन्न होगी। फिर स्त्रियाँ भी यह सोचने लगेगी कि मेरा पति अब अशक्त और अयोग्य हो गया है वह मेरे लिए अब भार-स्वरूप है और मेरी स्वतन्त्रता मे बाधक है। ऐसी दशा मे क्यो न उसका विनाश कर डाला जाये ! पुरुष भी इसी प्रकार स्त्रियो को अयोग्य एव असमर्थ समझकर उनके विनाश का विचार करेगा। इस प्रकार शस्त्र या औषध का जो कृत्रिम उपाय, खर्च से बचने और सतति-नियमन के काम में लाया जाता है, वही उपाय स्त्री और पुरुष के प्राणो का सहार करने के काम मे लाया जाने लगेगा। परिणाम यह होगा कि मानवीय सद्‌गुणो का नाश हो जायेगा, समाज की शृखला भग्न हो जायगी, हिंसा-राक्षसी की चडाल-चौकडी मच जायेगी और जो भयकर काल अभी दूर है, वह एकदम नजदीक आ जायेगा।

सतति-नियमन के भयकर और प्रलयकर उपाय से और भी अनेक अनर्थ उत्पन्न हो सकते हैं। इस उपाय के विषय मे स्त्रियाँ यह सोच सकती है कि सतान की बदौलत ही मेरे गर्भाशय का ऑपरेशन किया जाता है, अतएव ऑपरेशन की झझट से बचने के लिए सतान उत्पन्न होते ही क्यो न उसका गला घोट दू ?

शस्त्र-प्रयोग से जब सतति की उत्पत्ति रोकी जा सकती है और इस प्रकार संतति के प्रति अन्तकरण मे बसने वाली स्वाभाविक ममता और दया को तिलाजलि दी जा सकती है, तो यह क्या असभव है कि एक दिन ऐसा आ जाये जब लोग अपनी लूली-लगडी या अविनीत सतान का भी वध करने पर उतारू हो जाये ?

इस प्रकार सतति-नियमन के लिए किये जाने वाले कृत्रिम उपायो के कारण घोर अनर्थ फैल जायेंगे और मानवीय अन्त करण में विद्यमान नैसर्गिक दया आदि सद्भावनाएँ समूल नष्ट हो जायेंगी।

यहाँ एक आशका की जा सकती है। वह यह कि जो सतान उत्पन्न हो चुकी हो उसे नष्ट करना तो पाप है, मगर सतान को उत्पन्न न होने देने के लिए गर्भाशय का ऑपरेशन कराना पाप कैसे कहा जा सकता है ?

इस आशका का समाधान यह है। मान लीजिए एक मनुष्य किसी नौका मे छेद कर रहा है और उस पर बहुत से मनुष्य सवार हैं। वह मनुष्य नौका पर सवार मनुष्यों को तो मार नही रहा है, सिर्फ नौका मे छेद कर रहा है। तो क्या यह कहा जा सकता है कि वह सचमुच उन आदमियो के प्राण नही ले रहा है ? यदि यह नही कहा जा सकता तो यह कैसे कहा जा सकता है कि उत्पत्तिस्थान को नष्ट करके अपने विषयभोग चालू रखने के लिए हिंसा नही की जा रही है ? इसके अतिरिक्त, जब मनुष्य की परोक्ष हिंसा से घृणा नही होगी, वरन् जान-बूझकर परोक्ष हिंसा की जायेगी, तो प्रत्यक्ष हिंसा करने मे भी घृणा उठ जायेगी।

कहा जा सकता है कि इन बढती जाने वाली सतान का निग्रह किस प्रकार करना चाहिए ? सतान का नियमन न किया जाये तो पिल्लो की तरह सतान बढाते हुए चले जायें ? इस प्रश्न के उत्तर मे सबसे पहले हम यह कहना चाहते हैं कि विषयवासना को सदा के लिए ही शात क्यो न कर दिया जाये ? काम-वासना मे वृद्धि क्यो की जाये और स्त्री-प्रसग क्यो किया जाये ? इस समस्या को हल

करने के लिए भीष्म पितामह और भगवान् अरिष्टनेमि का आदर्श सामने रखकर ब्रह्मचर्य का ही पालन क्यो न किया जाये ? ब्रह्मचर्य का पालन यदि पूर्ण रूप से किया जाये तो सतति-नियमन की आवश्यकता ही प्रतीत नही होगी।

किसी ने भीष्म से कहा—आपने विवाह न करके ससार को बहुत हानि पहुचाई है। आपने ब्याह किया होता तो आपकी सतान भी आपकी ही तरह बलवान् होती और बलवान् सतान से ससार का बड़ा उपकार होता।

भीष्म ने उत्तर दिया—बुद्धि-भ्रष्ट होने से ही ऐसे प्रश्न उत्पन्न होते है। पहले तो यह कहना ही कठिन है कि विवाह करने से पुत्र होता ही ! ससार मे अनेक लोग विवाहित होने पर भी पुत्र हीन देखे जाते हैं। कदाचित् पुत्र होता भी तो क्या प्रमाण है कि वह मेरे जैसा वीर होता या नही ?

महात्मा भीष्म की यह आशका निर्मूल नही है। आज भी ऐसे अनेक उदाहरण देखे जाते है, जिनसे जान पडता है कि पुत्र पिता के ही समान हो, ऐसा नियम नही है। शिवाजी एक गुफा में थे। उस समय एक सरदार एक सुन्दरी को उनके पास पकड ले गया। पर गुफा से बाहर निकल कर शिवाजी ने पूछा—'मेरी इस माता को क्यो पकड लाये हो ?' इस प्रकार शिवाजी पर-स्त्री को माता के समान समझते थे पर शिवाजी के पुत्र शभाजी ने सुरा और सुन्दरी की सेवा मे अपने जीवन की सफलता समझी। इस प्रकार हम अनेको जगह देख सकते है कि पिता-पुत्र के स्वभाव एक-से हो, ऐसा कोई नियम नही है।

भीष्म ने कहा—यह कौन कह सकता है कि मेरा पुत्र मेरे समान ही होता या दुष्ट होता ? पर मैंने विवाह नही किया और ब्रह्मचर्य का पालन किया है तो आज सारा ससार मेरी सतान-रूप बन गया है ।

भगवान् नेमिनाथ ने भी ससार के समक्ष ब्रह्मचर्य का आदर्श उपस्थित किया था । वह सतति-नियमन के उपाय भी जानते थे और बलिष्ठ सतान उत्पन्न भी कर सकते थे, पर उन्होने ब्रह्मचर्य को ही श्रेष्ठतर समझा और विवाह न करके ब्रह्मचर्य का आदर्श उपस्थित किया । इसी भाँति अगर तुम विवाह न करो और ब्रह्मचर्य का ही पालन करो तो क्या हानि है ? अगर तुम ब्रह्मचर्य का पालन करो तो फिर सतति-नियमन का प्रश्न ही पैदा नही होता ।

कहा जा सकता है कि, हम भीष्म या भगवान् अरिष्टनेमि की तरह ब्रह्मचर्य पालने मे समर्थ नही है। ऐसी अवस्था में सतान-वृद्धि को रोकने के लिए कोई उपाय भी करना होगा । हमारा सोचा हुआ उपाय यदि उचित नही है, तो आप कोई उपाय बताइए ।

इसके लिए मैंने पहले आम का उदाहरण दिया है । उस पर विचार करो । जिस प्रकार आम का पेड बना रहे, उसके फल भी आवश्यकतानुसार ही आयें और वे फल सबके लिए लाभदायक हो, इस बात के लिए जो उपाय पहले सोचा गया था वैसा ही कोई उपाय सतान के लिए भी हो सकता है या नही ? इस प्रश्न पर गहरा विचार करो । अगर ऐसा कोई उपाय सभव है तो क्यो न उसका ही प्रयोग किया जाये ? और क्यो औषधियो द्वारा गर्भाशय को नष्ट करने की विडबना की जाये ?

पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना संतति-निरोध का सर्वोत्तम उपाय है। यदि यह शक्य न हो तो जब तक स्त्री-पुरुष मे अपनी संतान के पालन-पोषण की शक्ति न आये तब तक ब्रह्मचर्य का नियमित रूप से पालन करना चाहिए, अथवा दो-चार संतान उत्पन्न हो जाने के पश्चात् संतोष धारण कर विषय-सेवन से निवृत्त हो ब्रह्मचर्य में प्रवृत्त होना चाहिए।

इस प्रकार ब्रह्मचर्य का आश्रय लेने से संतति-नियमन की समस्या सहज ही सुलझ जाती है। फिर उसके लिये हानिकारक उपायो का अवलम्बन करने की आवश्यकता नही रह जाती। संतति-नियमन के लिए ब्रह्मचर्य अमोघ उपाय है। पर विलासी लोग उसका उपयोग न करते हुए चाहते हैं कि न तो विषय-भोग का परित्याग करना पडे और न संतान ही उत्पन्न होने पाये और इस दुरभिसंधि की पूर्ति के लिए शस्त्र-प्रयोग आदि उपायो से जननशक्ति के ही नाश करने की तरकीबे खोजते हैं। पर स्मरण रखना, यदि ब्रह्मचर्य का पालन न करके कृत्रिम उपायो द्वारा संतति-नियमन किया जायेगा तो इससे भविष्य मे अपार और असीम हानियाँ होगी। ब्रह्मचर्य का पालन न करते हुए संतान को कृत्रिम साधनो द्वारा रोका जायेगा और पानी की भाँति वीर्य का दुरुपयोग किया जायेगा तो निर्बलता मानव-समाज को ग्रस लेगी और तब संतान की अपेक्षा मनुष्य स्वयं अपने लिए भार-रूप बन जायेगा, ऐसा भार, जिसे सहारना कठिन हो जायेगा।

विषय-भोग की कामना का नियन्त्रण नहीं हो सकता—यह कामना अजेय है, इस प्रकार की दुर्भावना पुरुष-समाज में एक बार पैठ पायी तो भयकर अनर्थ होंगे और उन अनर्थों

की परम्परा का सामना करना सहज नही होगा ।

यद्यपि आजकल भी अनेक लोग हैं जिनकी यह भ्रात धारण हो गई है कि मनुष्य काम-भोग की वासना पर विजय नही प्राप्त कर सकता । सभवत वे लोग मनुष्य को काम-वासना का कीडा समझते हैं । पर प्राचीन आर्य ऋषियो का अनुभव इस धारण का विरोध करता है। कोई व्यक्ति-विशेष ब्रह्मचर्य का पालन करने मे असमर्थ रहे, यह एक बात है और यह कहना कि ब्रह्मचर्य का पूर्णरूप से पालन करना सभव नही है, यह दूसरी बात है। किसी व्यक्ति की असमर्थता के आधार पर किसी व्यापक सिद्धान्त का निर्माण कर बैठना सचाई के साथ अन्याय करना है । इस प्रकार असमर्थता की ओट मे विषय-भोगो का प्रचार करना सर्वथा अनुचित है । आज भी ससार मे ऐसे व्यक्तियो का मिलना असभव नही है जो बाल्यावस्था से ही ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए जन-सेवा कर रहे है । फिर भीष्म और भगवान् नेमिनाथ जैसे पवित्र ब्रह्मचारियो का उच्च आदर्श जिन्हे मार्ग-प्रदर्शन कर रहा हो, उन भारतवासियो के हृदय मे न मालूम कैसे यह भूत घुस गया कि—'विषय-वासना पर काबू करना शक्य नही है । साधु हुए बिना ब्रह्मचर्य का पालन हो ही नही सकता और गृहस्थ-जीवन मे ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान एकदम अशक्यानुष्ठान है ।' वास्तव मे यह धारणा सर्वथा भ्रमपूर्ण है । मनोबल दृढ होने पर पूर्ण या नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का पालन किया जा सकता है । यही नही वरन् विवाहित जीवन व्यतीत करते हुए गृहस्थ-जीवन मे भी ब्रह्मचर्य का पालन किया जा सकता है। ब्रह्मचर्य पालने से किसी भी प्रकार की हानि की सभावना नही है। यही नहीं

किन्तु अनेक प्रकार के लाभ होते हैं। कहा भी है :—

ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः

—योगसूत्र

अर्थात् ब्रह्मचर्य का पालन करने से वीर्य का लाभ होता है—वीर्य (शक्ति) का सरक्षण होता है। नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का पालन करने से भी वीर्य का लाभ होता है और विवाह करके ब्रह्मचर्य पालने मे भी वीर्य का लाभ होता है। इसके विपरीत, 'विषय-विकार को जीतना सभव नही है' इस भावना का पोषण करने से और इस दुर्भावना के कारण शस्त्र-प्रयोग आदि उपायो द्वारा सतति का निरोध करने से स्व की भी और पर की भी घोर हानि होने की सभावना है।

कुछ महानुभावो ने एक नये सिद्धान्त का आविष्कार किया है। उनकी अनोखी-सी समझ यह है कि ब्रह्मचर्य का पालन करने से शरीर मे रोग उत्पन्न होते हैं। पर न तो आज तक यह सुना गया है कि ब्रह्मचर्य-पालन से किसी को किसी रोग का शिकार होना पड़ा है और न ऐसा कोई उदाहरण ही देखा गया है। हा, ठीक इससे उलटे, जो लोग विषयी होते है वे ही रोगो द्वारा सताये जाते हैं। यह बात तो प्रत्यक्ष दिखाई देती है। अतएव अपने हृदय से इस भ्राति को निकाल फैंको कि ब्रह्मचर्य से रोग पैदा होते हैं। ब्रह्मचर्य जीवन है, उससे शक्ति का लाभ होता है। जहाँ शक्ति है, वहाँ रोगो का आक्रमण नही होता। अशक्त और दुर्बल मनुष्य ही रोगो मे सताये जाते हैं।

कहने का आशय यह है कि सतति-नियमन के लिए

ब्रह्मचर्य ही अमोघ उपाय है—वही प्रशस्त साधन है। इस अमोघ उपाय की अपेक्षा करके—उसका तिरस्कार करके कृत्रिम साधनो से सतति-नियमन करना और विषयभोग का व्यापार चालू रखना निसर्ग के नियमों का अतिक्रमण करना है और नैसर्गिक नियमो का अतिक्रमण करके कोई भी व्यक्ति और कोई भी समाज सुखी नही हो सकता। यदि सतति-नियमन का उद्देश्य विपय-भोग का सेवन नही है, किन्तु आर्थिक और शारीरिक निर्बलता के कारण ही सतति-नियमन की आवश्यकता का प्रतिपादन किया जाता है, तो भी ब्रह्मचर्य ही एक मात्र अमोघ उपाय है।

कोई यह कह सकता है कि सतति-नियमन के लिए ब्रह्मचर्य उत्तम उपाय तो है, पर विषय-भोग की इच्छा को रोक सकना शक्य नही। ऐसी लाचारी की हालत मे ब्रह्मचर्य का उपाय किस प्रकार काम में लाया जाये ?

किसी उपवास-चिकित्सक के पास कोई रोगी जाये और चिकित्सक से कहे कि अपने रोग का निवारण करना चाहता है और उपवास-चिकित्सा-पद्धति को अच्छा भी मानता हू, पर उपवास करने मे असमर्थ हूं। तो चिकित्सक उस रोगी को क्या उत्तर देगा ? निस्सन्देह वह यही कह सकता है कि अगर आप उपवास नही कर सकते तो आपके रोग की औषधि इस चिकित्सालय मे नही है। इसी प्रकार जब तुम विषय-भोग की इच्छा को जीत नही सकते तो ब्रह्मचर्य के सिवाय और क्या इलाज है ? तुम ब्रह्मचर्य का पालन नही करना चाहते और विषय-भोग की प्रवृत्ति चालू रखकर सतति का नियमन करना चाहते हो तो इसका अर्थ यही है कि तुम सतति-नियमन के सच्चे उपाय को काम में नही

लाना चाहते, बल्कि विषय-वासना की पूर्ति मे तुम्हे संतान बाधक जान पडती है, इसलिए उसका निरोध करना चाहते हो।

खेद है कि लोगो के मन में यह भ्रम उत्पन्न हो गया है कि विषय-भोग की इच्छा का दमन करना असम्भव है। परन्तु जैसे नैपोलियन ने असम्भव शब्द को कोश मे से निकाल डालने को कहा था, उसी प्रकार तुम अपने हृदय मे से काम भोग की इच्छा का दमन करने की असम्भवता को निकाल बाहर करो। ऐसा करने से तुम्हारा मनोबल सुदृढ बनेगा और तब विषय-भोग की कामना पर विजय प्राप्त करना तनिक भी कठिन न होगा।

हनुमान की कथा

मर्यादित ब्रह्मचर्य का पालन करके उत्पन्न की हुई संतान कितनी बलिष्ठ होती है, इस बात को समझने के लिए हनुमान की कथा पर विचार करो। हनुमान हमे बल देंगे, इस भावना से लोग उनकी पूजा करते हैं, हनुमान की मूर्ति पर तेल या सिंदूर पोत देने से ही क्या बल की प्राप्ति हो सकती है ? हनुमान को जिस बल की प्राप्ति हुई थी वह ब्रह्मचर्य के ही प्रताप से हुई थी। वे शील के ही पुत्र थे। पवन, महासुन्दरी अंजना का पाणिग्रहण करके उन्हें अपने घर लाये। फिर अंजना के प्रति उनके हृदय मे किंचित् संदेह उत्पन्न हो गया और इस कारण उन्होंने अंजना का परित्याग कर दिया। उन्होने इस अवस्था मे अपने मन पर पूर्ण नियन्त्रण रखा। अंजना ने यह समझ लिया था कि पतिदेव को मेरे विषय मे शंका उत्पन्न हो गई है और इसी कारण वे अपने ऊपर पूर्ण अंकुश रखते हुए मुझसे अलग-अलग

रहते हैं। यह समझ कर अजना ने भी अपने मन को वशीभूत करने का निश्चय किया।

अजना की दासी ने एक बार अजना से कहा—पवनजी तुम्हारे लिए पति नही, प्रत्युत पापी हैं। वह जो पति होते तो क्या इस तरह अपनी पत्नी का परित्याग कर देते ?

अजना ने उत्तर दिया—दासी! जीभ सँभाल कर बोल। मेरे पति की निन्दा मत कर। वे सच्चे धर्मात्मा है। वे राजपुत्र हैं—चाहे तो अनेक कन्याओ का पाणिग्रहण कर सकते है। पर नही, मेरी खातिर वे अपने मन पर सयम रख रहे हैं। मेरे किसी पूर्व-कृत पाप के कारण उन्हे मेरे विषय मे सदेह उत्पन्न हो गया है। जब मेरा पाप दूर हो जायेगा तो मेरे पति का सदेह दूर हो जायेगा और तब वे फिर मुझे पहले की तरह चाहने लगेगे।

एक दिन वह था जब स्त्रियाँ अपने पति का प्रेम सपादन करने के लिए आत्म-समर्पण करती थी और आज वह दिन है कि पुनर्विवाह करने के लिये स्त्रियो को भरसक उत्तेजित किया जाता है। उनके हृदय में काम-वासना की आग भडकाई जाती है। पुरुष स्वय काम-वासना के गुलाम बन रहे हैं और इसी कारण आज विधवा-विवाह या पुनर्विवाह का प्रश्न खडा हो गया है। अगर विधवाओ की भाँति पुरुष भी पत्नी की मृत्यु के पश्चात् ब्रह्मचर्य का पालन करें और त्यागमय जीवन व्यतीत करे तो सहज ही यह प्रश्न हल हो सकता है। किन्तु स्त्री की मृत्यु के बाद पुरुष ऊपर से रोने का ढोग भले ही करते हो पर नई स्त्री के आने के विचार से हृदय मे प्रसन्न होते हैं।

जैसे स्त्रियों के लिए अजना का आदर्श है, उसी प्रकार पुरुषों के लिए पवनकुमार का आदर्श है। पवनकुमार और अजना – दोनो ने बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन किया था। जैसे अजना बारह वर्ष तक ब्रह्मचारिणी रही, उसी प्रकार पवनकुमार भी बारह वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचारी रहे। वह राजकुमार थे। चाहते तो एक छोड दस विवाह कर लेते अथवा आजकल की तरह दुर्व्यवहार भी कर सकते थे। पर उन्होने यह नही किया। उन्होंने सोचा जब मै अपनी पत्नी को पतिव्रता देखना चाहता हू तो मैं स्वय दुराचार करके क्यो भ्रष्ट होऊँ—मैं भी क्यो न पत्नीव्रती बनू ? मैं यह अनर्थ कैसे कर सकता हू ?

आज का पुरुष-वर्ग स्त्रियो की टीका करने में कमी नही रखता पर खुद कैसी-कैसी करतूते कर रहा है, इस ओर उसका ध्यान ही नही जाता। पुरुष समझता है, मुझे सब कुछ करने का अधिकार है, क्योकि मैं पुरुष हूं। पर यह एकपक्षीय बात है। अतएव मैं यह कहता हूं कि स्त्री और पुरुष दोनो को ही शील का पालन करना चाहिए। शास्त्र मे पुरुष के लिए स्वदार-संतोष और स्त्री के लिए स्वपति-सतोष व्रत बताया गया है। यदि पुरुष स्वदार-सतोष का पालन करे तो स्त्रियाँ स्वपति-सतोष व्रत का पालन क्यो न करेगी ? पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन न हो सके तो भी यदि इस आशिक व्रत का पालन किया जाये और स्त्री-पुरुष सतोषपूर्वक मर्यादित जीवन व्यतीत करे तो सतति-नियमन का प्रश्न सहज ही हल हो सकता है।

बारह वर्ष बाद युद्ध मे जाते हुए पवनकुमार ने जगल मे पड़ाव डाला। वही पास मे किसी पेड़ के नीचे एक

चकवी रो रही थी। पवनकुमार ने अपने मित्र प्रहस्त से उस चकवी के रोने का कारण पूछा। प्रहस्त ने कहा—रात मे चकवा-चकवी का वियोग हो जाता है और इसी वियोग की वेदना से व्याकुल होकर यह चकवी रो रही है।

पवनकुमार ने प्रहस्त से कहा—जब यह चकवी केवल एक रात के वियोग से कल्पात मचा रही है, तो मेरी पत्नी के दुःख का क्या ठिकाना होगा जिसे मैंने बारह वर्ष से त्याग रखा है। मुझे उसके विषय मे सदेह उत्पन्न हो गया था और इसी कारण मैंने उसका त्याग कर दिया है।

प्रहस्त ने पवन से पूछा—अपनी पत्नी के प्रति आपको क्या सदेह हो गया था ? इस विषय मे आपने आज तक मुझसे कुछ भी जिक्र नही किया। जिक्र किया होता तो मैं आपके सदेह का निवारण कर देता।

पवनकुमार ने अपना सदेह प्रहस्त को बता दिया। प्रहस्त ने कहा—वह सती है। उस पर आपका यह सदेह अनुचित है। आपका सदेह सच्चा होता तो वह इतने दिनो तक घर मे न बैठी रहती, वह कभी की मायके चली गई होती। आपने जिसे दूषण समझा और जिसके कारण आपको सदेह हो गया है, वह दूषण नही, भूषण है—गुण है।

पवनकुमार सारी बात समझ गये। उनका सदेह काफूर हो गया। उन्होंने प्रहस्त से कहा—मैंने एक सती-साध्वी स्त्री को बहुत कष्ट पहुचाया है। इस समय मैं समरागण मे जा रहा हू और कदाचित् मैं युद्ध मे मारा गया तो यह दुःख काटे की तरह मुझे सदा ही सालता रहेगा। क्या ऐसा कोई उपाय नही है कि मैं रात भर उसके पास रह कर

वापस लौट सकू ? प्रहस्त ने कहा—है क्यो नही, मैं ऐसी विद्या जानता हू ।

आज एरोप्लेन—वायुयान हैं, पर पहले आकाश में उडने की विद्या भी थी । इस विद्या के बल से प्रहस्त के साथ पवनकुमार अजना के निवास-स्थान पर आए । जिस समय पवनकुमार अजना के पास पहुँच रहे थे, उस समय अजना की एक दासी उससे कह रही थी—जिसे तुम अपना सुहाग समझती हो, तुम्हारे उस पति ने तुम्हारा शकुन न लेकर तुम्हारा अपमान किया है । वास्तव में तुम्हारा पति अत्यन्त क्रूर है । मैं तो सोचती हू—वह युद्ध मे अवश्य मारा जायगा ।

अंजना और उसकी दासी के वार्तालाप से सहज ही यह समझा जा सकेगा कि वास्तव मे दासी और रानी मे कितना अतर होता है ! दासी के कथन के उत्तर मे अजना ने कहा—खबरदार, जो ऐसी बात मुँह से निकाली ! युद्ध में मेरे स्वामी अवश्य विजय-लाभ करेंगे । मेरी भावना तो निरन्तर यही रहती है कि उन्हे शीघ्र ही विजय प्राप्त हो ।

दासी—जिसने तुम्हारा घोर अपमान किया है उसी की तुम विजय चाहती हो ! कैसी भोली हो मालकिन ।

अजना—मेरे पतिदेव के हृदय में मेरे विषय मे सदेह उत्पन्न हुआ है । वे मुझे दुराचारिणी समझते हैं और इसी कारण युद्ध को जाते समय उन्होने मेरा शकुन नही लिया है । मेरे पति महापुरुष और वीर हैं । उन्होंने अपने पिताजी को युद्ध मे नही जाने दिया और आप स्वय युद्ध में सम्मि-लित होने गये हैं । वे ऐसे शूरवीर हैं और बारह वर्ष से ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे हैं । ऐसे सच्चरित्र और वीर

पुरुष की जीत नही होगी, तो किसकी होगी ?

इस प्रकार अजना और उसकी दासी मे चल रही बातचीत पवनकुमार ने शान्तचित्त से सुनी। पवनकुमार, अजना की अपने प्रति प्रगाढ निष्ठा देखकर गद्‌गद् हो गये। प्रहस्त से उन्होने कहा– मित्र ! मैंने इस सती के प्रति अक्षम्य अपराध किया है। अब किस प्रकार इसे अपना मुँह दिखाऊँ ?

प्रहस्त ने कहा—थोडी देर और धैर्य धारण कीजिए। इतना कहकर प्रहस्त ने अजना के मकान की खिडकी खडखडाई। खिडकी की खड़खडाहट सुनकर अजना गरज उठी—कौन दुष्ट है जो कुमार को बाहर गया देखकर इस समय आया है ? जो भी कोई हो, फौरन यहाँ से भाग जाये, अन्यथा उसे प्राणो से हाथ धोना पडेगा।

प्रहस्त ने उत्तर दिया—और कोई नही है। दूसरे किसकी हिम्मत है जो यहाँ आने का विचार भी कर सके। यह पवनकुमारजी हैं और इनके साथ मैं इनका मित्र प्रहस्त हू। यह शब्द सुनते ही अजना के अग-अग में मानो बिजली दौड गई। उसकी प्रसन्नता का पारावार न रहा। पर जब तक उसे खातिरी न हो गई, उसने किवाड़ न खोले। जब उसने खिडकी मे से देखकर यकीन कर लिया, तभी दरवाजा खोला।

अजना ने अर्घ लेकर अपने प्राण-पति पवनकुमार की आरती उतारी और फिर कुछ-कुछ लजाते हुए, सकुचाते हुए विनम्र वाणी से कहने लगी—'क्षमा करना नाथ, मैंने आपको बहुत कष्ट पहुँचाया है !'

कष्ट किसने किसे पहुँचाया था ? पवनकुमार ने अजना को अथवा अजना के पवनकुमार को ? वास्तव मे तो पवन-

कुमार ने ही अजना को कष्ट दिया था। फिर भी अजना ने इस तरह की शिकायत न करते हुए उल्टा यही कहा कि– 'मैंने आपको बहुत कष्ट दिया है ! मेरे कारण ही आपने एक-निष्ठता के साथ बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य पाला है। इस कष्ट के लिए मुझे क्षमा दीजिए। आपका संदेह दूर हो गया है, यह जानकर आज मुझे असीम आनन्द की अनुभूति हो रही है।'

पवनकुमार ने मन ही मन लजाते हुए कहा– 'सती ! क्षमादान दो। अनजान मे मैंने तुम सरीखी परम सती महिला को मिथ्या कलक लगाया है। मेरे इस घोर अपराध को क्षमा करो।'

अन्त मे दोनो का ससार-सबध हुआ। दोनो ने बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य पाला था, अतएव पवनकुमार के वीर्य से हनुमान जैसे बली बालक का जन्म हुआ।

आशय यह है कि ब्रह्मचर्यपूर्वक मर्यादित जीवन व्यतीत करने से सतान भी बलवान् होती है। अतएव सतति-नियमन के सम्बन्ध मे पवनकुमार का आदर्श सामने रखना चाहिए।

तुम कदाचित् भीष्म और भगवान् अरिष्टनेमि की तरह पूर्ण ब्रह्मचारी नही रह सकते, तो पवनकुमार की भाँति ब्रह्मचर्यपूर्वक मर्यादित जीवन तो अवश्य बिता सकते हो। पर काम-वासना पर काबू नही रखा जा सकता, इस भ्रम-पूर्ण भावना का परित्याग करो। इस दुर्भावना के कारण ही विषय-वासना वेगवती बनती है।

मेरे सम्पूर्ण कथन का साराश यही है कि इस समय

सतति-नियमन की आवश्यकता तो है, पर आजकल उसके लिए शस्त्रक्रिया या औषध का जो उपाय बताया जाता है, वह सच्चा हितकर उपाय नही है । यह उपाय प्रत्येक दृष्टि से लाभ के बदले हानि ही पहुँचाएगा। अतएव हानिकारक उपायो का उपयोग न करके सतति नियमन के लिए ब्रह्मचर्य का अमोघ और कल्याणकारी उपाय काम में लाना चाहिए। ब्रह्मचर्य के अवलबन से सतति का नियमन होगा और जो सतान होगी, वह स्वस्थ, सबल और सम्पन्न होगी। साथ ही तुम भी शक्तिशाली और चिरजीवी बन सकोगे ।

सतति-नियमन करके द्रव्य के अपव्यय या अधिक व्यय से बचना चाहते हो—द्रव्य तुम्हे प्यारा है, तो असली धन—जीवन के मूल और शक्ति के स्रोत वीर्य—के अपव्यय से भी बचने का प्रयास करो । द्रव्य-धन की अपेक्षा वीर्य-धन का मूल्य कही अधिक है—बहुत अधिक है । फिर इस ओर दृष्टि-निपात क्यो नही करते ?

शस्त्र-क्रिया या औषध के प्रयोग द्वारा सतति-नियमन करने से अपनी हानि के साथ-साथ परपरा से दूसरो की भी हानि होगी । इसके अतिरिक्त आजकल तो स्त्री-पुरुष की समानता का प्रश्न भी उपस्थित हो गया है। ऐसी दशा मे, सभव है स्त्रियो की ओर से यह प्रश्न खडा कर दिया जाये कि सतति-नियमन के लिए हमारे गर्भाशय का ही ऑपरेशन क्यो किया जाये ? क्यो न पुरुषो को ही ऐसा बना दिया जाये जिससे सतान की उत्पत्ति ही न हो सके ! पुरुषो की उत्पादक शक्ति का ही विनाश क्यो न कर दिया जाये ?

सतति-नियमन के जिन कृत्रिम उपायो के कारण भविष्य मे ऐसी भयानक स्थिति उत्पन्न होने की सभावना है, उन

उपायों का प्रयोग न करना ही विवेकशीलता है। कदाचित् सरकार सतति-नियमन के लिए ऐसे कृत्रिम उपायो को काम मे लाने के लिए कानून बना दे, तो सरकार के उस काले कानून को मानना या न मानना, तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है। अगर तुम्हे भी सतति-नियमन के कृत्रिम उपाय अनुचित और हानिजनक जान पडते हो, तो इन उपायो का परित्याग करो और सतति-नियमन के लिए अमोघ उपाय ब्रह्मचर्य का प्रयोग करो। इसी में तुम्हारा, समाज का, देश का और अन्ततः विश्व का कल्याण है।



मानव-धर्म



प्रार्थना

चेतन ! जान कल्याण करन को, आन मिलो अवसर रे ।
शास्त्र-प्रमान पिछान प्रभू गुन, मन चचन थिर कर रे ॥
श्रेयांस जिनंद सुमर रे ॥१॥

श्री श्रेयासनाथ भगवान् की यह प्रार्थना की गई है। आत्मा को परमात्मा की प्रार्थना क्यो करनी चाहिए ? इस सबध मे मैं यथाशक्ति थोडा-बहुत कहता ही रहता हू। आज यद्यपि मुझे 'मानव-धर्म' विषय पर बोलना है, किन्तु प्रार्थना मेरी आत्मा का विषय है और प्रार्थना करना भी मानव-धर्म है, इसलिए इस विषय मे आज भी कुछ कह रहा हूं।

'हे आत्मा ! उठ, जाग और परमात्मा का स्मरण कर' यह प्रेरणा इन प्रार्थना मे की गई है। इस पर यह प्रश्न उठता है कि परमात्मा की प्रार्थना किसलिए करनी चाहिए ? इस प्रश्न का उत्तर एक साधारण उदाहरण द्वारा दिया जा सकता है।

एक वालक गन्ने का टुकडा लेकर चूस रहा है और दूसरा वालक शक्कर की डली चूस रहा है। दूसरे वालक

ने पहले को शक्कर की डाली दिखला कर कहा—देख कैसी मीठी है यह शक्कर ! तब पहले बालक ने उत्तर दिया–यह शक्कर आई कहा से है ? इसी गन्ने से तो शक्कर निकली है। मेरे इस गन्ने मे तो शक्कर ही शक्कर भरी है।

'गन्ने में शक्कर भरी है' ऐसा कहने वाला बालक क्या असत्य बोलता है ? उसका कहना यदि सत्य है, तो गन्ने मे से परिश्रम करके शक्कर निकालने का प्रयत्न करना क्या वृथा है ? नही, प्रयत्न भी वृथा नही है और गन्ने मे शक्कर भरी है, यह कहना भी असत्य नही है। क्योकि गन्ने मे शक्कर होती है, तभी प्रयत्न करने से वह निकल सकती है। शक्कर मे निखालिस शुद्ध मिठास होती है, जब कि गन्ने मे मिठास के साथ ही अन्य वस्तुएं मिली रहती है। दोनो मे इतना ही अन्तर है।

इसी प्रकार प्रार्थना कही बाहर से नही आती। जिस प्रकार गन्ने मे शक्कर व्याप्त है उसी प्रकार आत्मा मे परमात्मा की प्रार्थना व्याप्त है। यह बात दूसरी है कि जैसे गन्ने मे व्याप्त शक्कर के साथ अन्य पदार्थ मिले रहते हैं उसी प्रकार आत्मा मे व्याप्त प्रार्थना भी अन्य वस्तुओ मे मिली हो। मगर जैसे क्रिया द्वारा गन्ने में से शक्कर निकाली जा सकती है उसी प्रकार प्रयत्न द्वारा आत्मा मे व्याप्त उस प्रार्थना को महात्मा पुरुषो ने कड़ियो के रूप मे हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। किन्तु प्रार्थना की वे कडियाँ भी आत्मा मे से ही बाहर निकलती हैं।

प्रार्थना का प्रादुर्भाव आत्मा मे से ही हुआ है और आत्मा में, गन्ने मे शक्कर की तरह, प्रार्थना परिव्याप्त है,

ऐसा समझकर अनन्यभाव से यदि परमात्मा की प्रार्थना की जाये, तो उस प्रार्थना से बहुतेरे लाभ होते हैं। यहाँ तक कि ऐसी प्रार्थना के द्वारा आत्मा अपना परम और चरम कल्याण भी साध सकती है। हम क्या करे ? हमसे क्या हो सकता है ? इस प्रकार निराश होने की कोई आवश्यकता नही है। यदि निराश हो जाओगे तो कुछ भी न बन पडेगा।

जिन महात्माओं ने अपने अन्तरात्मा मे से प्रार्थना की कडियाँ निकाली हैं वही प्रार्थना करने के अधिकारी हैं। हम क्या कर सकते हैं ? ऐसा सोचकर, निराश होकर बैठ जाओगे तो वास्तव मे ही तुमसे कुछ भी नही हो सकेगा। साहस और प्रयत्न करने से जैसे गन्ने मे से शक्कर निकाली जा सकती है और कदाचित् ऐसा न हो सका तो भी गन्ने का रस चूस कर उसके माधुर्य का आस्वादन किया जा सकता है, इसी प्रकार तुम भी प्रार्थना के अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति कर सकते हो। तुम प्रार्थना की कडियाँ न बना सको तो भी जिस महात्मा ने प्रार्थना की कडियाँ बनाई हैं, उन कडियो को हृदय मे धारण कर प्रार्थना करने से आत्मिक आनन्द का अनुभव किया जा सकता है। पर जो भी कुछ होगा, वह सब प्रयत्न करने से ही हो सकेगा। प्रयत्न के बिना कुछ भी होना सभव नही है।

कोई मनुष्य गन्ने का टुकडा हाथ मे लेकर ही बैठा रहे तो वह गन्ने की मिठास का अनुभव नही कर सकता। पर यदि वह प्रयत्न करे तो गन्ने मे से शक्कर निकाल सकता है और नही तो कम-से-कम उसे चूसकर उसका मीठा स्वाद तो चख ही सकता है। अतएव प्रार्थना करके आत्मिक

आनन्द प्राप्त करना न भूलो। कहावत है--याद से आबाद और भूल से बर्बाद। अर्थात् परमात्मा का स्मरण करने से आबादी और उसे विस्मरण करने से बर्बादी होती है। ऐसा समझकर परमात्मा की प्रार्थना करो तो कल्याण होगा।

मानव-धर्म

युवको की ओर से मुझे यह सूचना मिली है कि आज मैं मानव-धर्म के विषय मे भाषण करूँ। यो तो मैं हमेशा जो व्याख्यान देता हू वह मानव-धर्म के विषय मे ही होता है, पर आज केवल एक ही विषय पर बोलना है। इस विषय में मैं ठीक-ठीक कह सकूगा या नही, यह निर्णय तो श्रोता ही करेगे, पर यह निश्चित है कि हम किराये के मजदूर नही हैं, जो केवल व्याख्यान फटकार कर ही छुट्टी पा लेवें। हमारे भाषण को अथवा हमारे द्वारा प्रदर्शित मानव-धर्म को कोई दूसरा माने या न माने, पर हम जो कुछ कहते हैं, उसे हम अपने प्राणो का उत्सर्ग करके भी पालन करे।

मानव-धर्म के विषय में बोलने से पहले यह देखना चाहिये कि मनुष्य का अर्थ क्या है? जिसके आंख-कान, नाक हो और जिसकी आकृति हम जैसी हो, क्या वही मनुष्य है? ऐसी आकृति तो जानवर की भी हो सकती है, तो क्या उसे भी मनुष्य कहा जा सकता है? क्या बन्दर की आकृति मनुष्य से मिलती-जुलती नही होती? उसके सिर्फ पूछ अधिक होती है (और किसी-किसी बन्दर के वह भी नही होती), तो क्या इतने मात्र से उसे मनुष्य कह सकते हैं? कितने-क जल-जन्तु भी मनुष्य की-सी आकृति के होते हैं, पर उन्हे भी मनुष्य नही कहा जा सकता। इसलिये

कान-आँख-नाक-जीभ तथा आकृति आदि कारण से किसी को मनुष्य नही कहा जा सकता। सस्कृत भाषा मे मानव-शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहा गया है :—

मन्ते इति मनुः, तस्याय मानवः ।

मन् धातु से मनु शब्द निष्पन्न हुआ है और मनु की जो सन्तान हो उसे मानव कहते हैं। तात्पर्य यह हुआ कि जिसमें धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य आदि को समझने का विवेक हो, वह मनु है और उसकी सतान मानव अर्थात् ज्ञानवान् की सन्तान मानव कहलाती है। कहने का आशय यह है कि तुम्ही स्वय ज्ञानवान् नही हो पर तुम जिनकी सन्तान हो वह तुम्हारे पूर्वज भी ज्ञानवान् थे। भगवान् ऋषभदेव की सन्तानो मे मनु नामक कुल-गुरु भी थे। इन मनु की सन्तान मानव कहलाती है। अथवा मनुस्मृति के कर्त्ता भी मनु कहलाते हैं, उनकी सन्तान भी मानव कहलाती है। मुसलमान भी आदम को मानते है और आदम की सन्तानो को इन्सान कहते हैं। इस प्रकार अपनी-अपनी मान्यता के अनुसार मानव की व्याख्या की जाती है। सव व्याख्याओ का सार यही है कि ज्ञानवान् की सन्तान ही मानव कहलाती है। इस प्रकार तुम ज्ञानवानो की सन्तान हो और इस कारण अपने पूर्वजा को भूल न जाओ। वश-परम्परा से चले आये हुए सस्कारो की वदौलत ही आज तुम्हारी हस्ती है।

वेदान्त और उपनिषद् मे मानव का खूब महत्त्व वतलाया गया है। वहाँ मनुष्य का अग्नि के रूप मे वर्णन किया गया है। हम जिसे अन्न और पानी कहते है, वह

अन्न और पानी भी मनुष्य के पेट मे पहुँचकर भस्म हो जाता है, इस कारण मनुष्य को अग्नि कहा गया है। पेट में पहुँचकर अन्न-पानी किस प्रकार भस्म हो जाता है और रस-भाग एव खल-भाग किस प्रकार अलग-अलग हो जाता है, यह विषय बहुत लम्बा है। अतएव इस सम्बन्ध मे इतना ही कहना चाहता हू कि मनुष्य के पेट मे अन्न-पानी भी भस्म हो जाता है। इसी कारण वेदान्त और उपनिषद् मे मनुष्य का अग्नि-रूप में वर्णन किया गया है। डाक्टर भी किसी रोगी मनुष्य की अग्नि की पहले परीक्षा करता है। मनुष्य एक जीवित और चलती-फिरती आग है। इस आग मे जो कुछ भी प्रक्षेप किया जाता है वह बेकार नही जाता, किन्तु आकृति के रूप मे पलट जाता है। अन्न-पानी से वीर्य बनता है और वीर्य से वाद मे उसी प्रकार की सन्तान उत्पन्न होती है। ऐसी यह परम्परा है। परन्तु इस परम्परा मे, यह ध्यान रखना चाहिए कि अन्न-जल जैसा होगा, वीर्य वैसा ही बनेगा और जैसा वीर्य होगा, वैसी ही सन्तान उत्पन्न होगी। अतएव जो अपने धर्म, कर्म, अपनी परम्परा और अपनी भावी सन्तान का ध्यान रखता है वही मनुष्य कहलाता है।

इस कथन से एक प्रश्न यह उपस्थित होता है कि इस दृष्टि से तो विद्वान्-मूर्ख, वालक-वृद्ध, गँवार और नागरिक, सभी मनुष्य कहलाने लगेंगे ? इस प्रश्न का समाधान करते हुए ज्ञानी-जन कहते हैं कि जिनमें मानव-धर्म पाया जाये उन्हे ही मानव कहा जा सकता है। जिनमे मानव-धर्म नही है, वे परम्परा के अनुसार मानव-कुल मे भले ही उत्पन्न हुए हो, फिर भी वे मानव नही हैं। एक

कवि ने कहा है—

दीसत के नर दीसत हैं, पर लक्षण तो पशु के सब ही हैं,
पीवत-खावत ऊठत-बैठत, वा घर वो वनवास यहीं हैं।
साझ पड़े रजनी फिर आवत, सुन्दर यो फिर भार वही है,
और तो लक्षण आन मिले सब, एक कमी सिर सींग नही हैं ॥

जिनमें मानव-धर्म नही है, उन्हे सभी ने बिना-सीग-पूछ का पशु कहा है। ज्ञानियो का कथन है कि जिनमें केवल द्रव्य-मानवता है और भाव-मानवता नहीं है अर्थात् मानव-धर्म नही पाया जाता, वह 'मानव' नही है। आकृति आदि के कारण उसे द्रव्य-मानव तो कहा जा सकता है, किन्तु उसमे भाव-मानवता न होने से भाव की अपेक्षा मानव नही कहा जा सकता। जो केवल द्रव्य को ही देखता है, द्रव्य में ही रहता है, जो भाव को नही देखता उसमे मानवता भी नही रह सकती। जिस सोने मे सोने का धर्म न हो, उसे कौन सोना कहेगा? कौन उसे सोने के भाव मे खरीदेगा? इसी प्रकार जिसमे मानव-धर्म नही है—मानवता नही है, उसे मानव कौन कहेगा? इसीलिए ज्ञानियो का कथन है कि केवल द्रव्य-मानवता मे रहकर मानव-धर्म की उपेक्षा न करो।

आज कुछ लोगो को धर्म अनावश्यक एवं भार-रूप प्रतीत होने लगा है। किन्तु यह निस्सदेह कहा जा सकता है कि उन्होने धर्म के ठीक-ठीक स्वरूप को समझा नही है। वास्तव में धर्म के बिना जीवन भी नही टिक सकता। आज के युवक सुधार करना चाहते है, पर धर्म की सहायता के बिना सुधार होना, सभव नही है। प्रत्येक क्षेत्र में धर्म की आवश्यकता है।

आज धर्म को भार-रूप मानने का एक कारण यह भी है कि लोग धर्म का फल, रुपये की भाँति तत्काल और प्रत्यक्ष देखना चाहते है। वह यह दलील देते हैं कि धर्म का फल यदि परलोक मे मिलता है तो उससे हमें क्या लाभ ? यहाँ जैसे एक रुपये का सवा रुपया किया जा सकता है और उससे आनन्दोपभोग किया जा सकता है, इसी प्रकार का लाभ यदि धर्म से भी मिले तो उसे लाभ कहना चाहिए, अन्यथा वह निरा भार ही है। इस प्रकार लोग धम को भारस्वरूप समझते है किन्तु यह विचारने का कष्ट नही उठाते कि जीवन मे धर्म का उपक्रम किये बिना तो मनुष्य का जीवन ही सस्कारहीन बन जायेगा ! किसी मनुष्य से शरीर पर कपास लपेटने के लिए कहा जाये तो वह इसे स्वीकार नही करेगा, किन्तु उसी कपास का सस्कार—उपक्रम कर दिया जाये अर्थात् कपास से रुई ओट कर, सूत बनाकर, कपडा बना दिया जाये और उसे सुन्दर रूप मे सिला दिया जाये तो वही कपास शरीर पर धारण किया जा सकता है। इसी प्रकार बालक का जन्म होने पर यदि उसमे सस्कार—उपक्रम न किया जाये तो उसका जीवन कच्चे कपास की तरह असस्कारी ही बना रहेगा। ज्ञानीजन कहते हैं कि राग के समान कोई जुल्मी नही है। कितनेक लोग माता-पिता कहलाकर फूले नही समाते, किन्तु राग के वश होकर अपने बालको को ऐसे सस्कारहीन रहने देते है कि आगे चलकर वे ही बालक भार-रूप जान पडने लगते हैं। कच्चे कपास की तो थोडी-बहुत कीमत भी उपजती है, किन्तु सस्कारहीन सन्तान को तो ससार मे कोई टके सेर भी नही पूछता ! इस प्रकार धर्म का उपक्रम किये बिना जीवन का सुधार नही हो सकता। धर्म मानव-

जीवन का संस्कर्त्ता है ।

अनुयोगद्वार सूत्र में उपक्रम के—नाम उपक्रम, स्थापना—उपक्रम, द्रव्य-उपक्रम, क्षेत्र-उपक्रम, काल-उपक्रम और भाव-उपक्रम, यह छह भेद बताये गये हैं। इन सब उपक्रमो के वर्णन करने का इस समय अवकाश नही है, अतएव जिस उपक्रम के साथ विषय का सबंध है उसी का यहाँ वर्णन करना उचित होगा । भूत और भविष्य को छोडकर जो वर्तमान मे वर्त रहा है उसका उपक्रम करना द्रव्य-उपक्रम कहलाता है । द्रव्य-उपक्रम के दो भेद हैं — (१) सचित्त द्रव्य-उपक्रम और (२) अचित्त द्रव्य-उपक्रम । सचित्त द्रव्य-उपक्रम के द्विपद, चतुष्पद और अपद, यह तीन भेद हैं । द्विपद मे मनुष्य, चतुष्पद में पशु और अपद मे वृक्षो का समावेश होता है । इन सब का उपक्रम होता है । इस उपक्रम के वस्तु-विनाश और परिक्रम, इस प्रकार दो भेद हैं। वस्तु को भ्रष्ट करना वस्तु-विनाश उपक्रम है और वस्तु का विभिन्न प्रकार से विकास करना परिक्रम कहलाता है । मनुष्य का शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास करना परिक्रम है । जैसे मिट्टी मे वर्तन बनने की शक्ति है, किन्तु कुम्हार यदि क्रिया द्वारा उस शक्ति की अभिव्यक्ति न करे और मिट्टी के बर्तन न बनावे तो शक्ति विद्यमान होने पर भी मिट्टी में से वर्तन नही बन सकता अर्थात् मिट्टी का उपक्रम न बन सकेगा और उपक्रम न होने के कारण मिट्टी के ढेले मे खिचडी नही पकायी जा सकती । जब मिट्टी का परिक्रम होगा—मिट्टी में से हँडिया बनाई जायेगी— तभी उससे खिचडी पकायी जा सकेगी । हांडी यद्यपि मिट्टी में से ही बनी है पर कुम्हार के प्रयत्न के विना नही बनी है ।

मनुष्य का शरीर भी मिट्टी के समान है और यदि उसका परिक्रम किया जाये तो उसमे भी शक्ति का ऐसा विकास हो सकता है कि देखने वाले चकित रह जाएँगे।

कहने का आशय यह है कि केवल आकृति या इन्द्रियों के कारण ही कोई मनुष्य नही हो सकता। जिसमे मानव-धर्म हो और उस मानव-धर्म का परिक्रम किया जाये, वही मानव कहला सकता है। 'परिक्रम' शास्त्रीय पारिभाषिक शब्द है। साधारणतया परिक्रम को विकास या अनुशीलन कहा जाता है। जिसका परित्रम किया गया हो वह प्रत्येक कार्य को बडी सरलता से सपादन कर लेता है। यह बात दूसरी है कि जिसका परिक्रम जिस ओर हुआ हो वह उसी काम को अधिक सरलता से कर सकता है। पर कोई भी कार्य क्यो न हो, उसे वही कर सकेगा जिसका परिक्रम उस ओर हुआ हो। मान लीलिए आप पढे-लिखे हैं। आपको बहुत-से पत्र लिखने हैं। तो आप थोडी-सी देर मे सब पत्र लिख डालेंगे और उसमे विशेष कठिनाई का अनुभव न करेंगे। पर जो लोग पढे-लिखे नही है उनसे एक अक्षर लिखने को कहा जाये तो उनके लिए घोर सकट का काम होगा। वे लिख नही सकेंगे। इसका कारण क्या है। यही कि आपका लिखने में परिक्रम हुआ है और उनका इस विषय मे परिक्रम नही हुआ है। आज पढे-लिखो की सख्या बढ गई है अतएव इस परिक्रम का अधिक महत्व नही रह गया है, अन्यथा यह भी आश्चर्य-चकित कर देने वाला परिक्रम है। धर्म, मर्म, कर्म इत्यादि शब्दो के लिखने मे लेखक को इस बात की सावधानी रखनी पड़ती है कि पहले कौन-सा वर्ण, कौन-सा स्वर, कौन-सा व्यजन लिखना चाहिए और किस

प्रकार लिखना चाहिए ?

इस प्रकार स्वर-व्यजन बनाने का पहले परिक्रम-अभ्यास किया जाता है और जब अभ्यास बढ जाता है तभी बिना किसी कठिनाई के मनचाहा लिखा जा सकता है। किसी किसान से तुम अपनी तरह लिखने को कहो तो वह नहीं लिख सकेगा, क्योकि उसका लिखने का परिक्रम नही हुआ है। इसके विपरीत यदि किसान तुमसे खेत जोतने को कहे तो जुताई का कार्य तुम से न होगा। इसका भी यही कारण है कि जोतने के विषय मे तुम्हारा परिक्रम नही हुआ है। किसान का पढने-लिखने में परिक्रम नही हुआ, किन्तु खेत जोतने में परिक्रम हुआ है, इसमे विपरीत तुम्हारा पढने-लिखने मे परिक्रम हुआ है पर जुताई मे परिक्रम नही हुआ है। किसानो के जुताई सम्बन्धी परिक्रम पर ही आज ससार का जीवन निर्भर है।

कहने का भावार्थ यह है कि कला-कौशल के विकास को शास्त्रकार द्रव्यपरिक्रम कहते है। आज किसी भी मनुष्य मे सम्पूर्ण परिक्रम—सम्पूर्ण विकास—हुआ नजर नही आता। पर यदि किसी मे सम्पूर्ण परिक्रम हो जाये तो उसमे और परमात्मा के बीच मे कुछ भी अन्तर न रह जाये, वह स्वयं परमात्मा बन जाये। इतना सम्पूर्ण विकास न कर सकने के कारण निराश होने की आवश्यकता नही है। प्रयत्न करने से सम्पूर्ण विकास भी साधा जा सकता है।

शास्त्र मे मेघकुमार के अध्ययन में कहा है कि मेघकुमार राजकुमार था। उसने बचपन मे ही सब क्रियाएँ सीख ली थी, फिर भी जब वह कुछ बडा हुआ तो वह कलाचार्य के सुपुर्द कर दिया गया था। वहाँ वह लेखन-शिक्षा से लगाकर शकुन-शास्त्र की शिक्षा तक—७२ कलाएँ सीखा

था। इन ७२ कलाओ मे मानव-जीवन की आवश्यकता संबंधी समस्त बातो का समावेश हो जाता है। इस विषय का पूर्ण विवरण ज्ञान-सूत्र (नायाधम्मकहा) में दिया गया है। यहाँ उसके विस्तारपूर्वक वर्णन करने का अवकाश नही है। इस समय तो सिर्फ यही कहा जा सकता है कि प्राचीन काल मे सब को ७२ कलाएँ सूत्र से, अर्थ से और कर्म से सिखाई जाती थी। आजकल हाई स्कूलो और कॉलेजो मे दी जाने वाली शिक्षा में तथा प्राचीनकाल मे दी जाने वाली शिक्षा में कितना अन्तर है ? यह बात गहरे पैठ कर विचार करने से अपने-आप विदित हो जायेगी। आजकल जो पुस्तकें पढाई जाती हैं उनका सक्रिय शिक्षण नही दिया जाता और आधुनिक शिक्षा की दुदशा का यही कारण है। आज के विद्यार्थी से अमुक वस्तु कर दिखाने के लिए कहा जाता है तो तत्काल उत्तर मिलता है—'यह वस्तु कैसे बनती है, यह बात हमने पुस्तक में पढी है, बाची है, पर बनाने मे हम असमर्थ हैं।' इस प्रकार की निष्क्रिय शिक्षा से उदीयमान प्रजा को कितना और क्या लाभ पहुच सकता है, यह एक विचारणीय बात है।

शास्त्र में मेघकुमार की शिक्षा के विषय मे यह बताया गया है कि उसने पहले सूत्र-रूप मे शिक्षा ग्रहण की, फिर अर्थ-रूप मे और फिर क्रिया के रूप मे। अन्न किस प्रकार उत्पन्न करना, उमे खाने के योग्य बनाना और किस प्रकार उसे पकाना चाहिए ? इस तरह सूत्रत, अर्थत और कर्मत— तीनो प्रकार से शिक्षा का उपयोग करने से ही वह जीवन मे उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

पढी हुई शिक्षा यदि गुनी न जाये अर्थात् ज्ञान को यदि सक्रिय न बनाया जाये तो वह शिक्षा सार्थक नहीं हो

सकती । अतएव युवकों को चाहिए कि वे केवल पुस्तक पढ लेने मात्र से अभिमान न करें वरन् सक्रिय कार्य करे । इसी मे शिक्षा की सार्थकता है । युवक जो कुछ पढे, जो कुछ भी कहे उसे करके दिखावे । आज भारतवर्ष की जो हीन दशा दृष्टिगोचर हो रही है, उसका कारण यह है कि लोग थोडा-सा पढना-लिखना सीखे नही कि अभिमान मे डूब जाते हैं और कार्य को छोड़ बैठते हैं ।

सुना है कि एक अमेरिकन गृहस्थ भारत मे किसी उच्च पद पर बहुत वर्षों तक कार्य करके, पेन्शन पाकर अमेरिका लौट गया । एक बार उसका एक भारतीय मित्र उससे मिलने के लिए उसके घर गया । घर पहुँचकर उसने अपने अमेरिकन मित्र की खोज की । खोज करने पर पता चला कि वह बाहर गया है । उसकी पत्नी नें उसे आदर-पूर्वक बिठलाया और कहा—'आप जरा विश्राम कीजिए, वह अभी आये जाते हैं ।' थोडी देर बाद अमेरिकन मित्र की पत्नी ने कहा—'देखिए, साहब आ रहे हैं ।, भारतीय ने देखा—साहब चड्डी पहने, हाथ मे कुदाल लिये और मिट्टी से भरे शरीर से आ रहे हैं । साहब को इस रूप मे देखकर भारतीय सज्जन आश्चर्य मे पड गये और सोचने लगे—'यही साहब भारत मे कितने ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित थे और यहाँ इनकी यह दशा है !' साहब आकर सीधे स्नान-गृह मे गये और नहा-धोकर तथा कपड़े बदलकर बैठक मे आये । भारतीय ने उनसे पूछा— भारत में तो आप बडे ठाठ से रहते थे और यहाँ इस हालत मे क्यो रहते है ?' साहब बोले—'भारत मे यह बडी त्रुटि है कि वहाँ के लोग जरा-सी साहबी पाकर फूले नही समाते है और अपने धधे

को तिलांजलि दे बैठते हैं। जब हम वहाँ जाते हैं तो भारतीयों की देखादेखी हमें भी वैसा करना पडता है, परन्तु हम लोग चाहे जितने ऊँचे पद पर क्यो न आसीन हो, मगर अपना घरू धधा कभी नही छोडते। मुझे धन की बिलकुल कमी नही है, पर मैं अपने किसानी धधे को, जिसे मेरे पूर्वज वर्षों से करते आये हैं, किस प्रकार त्याग सकता हू ? मैं अपना धधा छोड दू, तो मुझे और मेरे कुटुम्ब को और साथ ही मेरे देश को अत्यन्त हानि पहुँचेगी। इस विचार से, मैं पर्याप्त धन होने पर भी अपने पुरखो का धधा करता हू।'

अमेरिका, यूरोप आदि पाश्चात्य देशो के धनिको की ऐसी दशा है, जब कि भारत के धनिको तथा शिक्षित लोगों की हालत यह है कि वे दूसरो के लिए भार-रूप सिद्ध हो रहे है। भारतवर्ष का यह सौभाग्य समझिये कि यहाँ के किसान अभी तक दूसरो को ठगना नही सीखे है, अन्यथा भारतवर्ष को अत्यन्त कठिनाइयो में से गुजरना पडता। अस्तु।

कहने का आशय यह है कि शास्त्र में जिस परिक्रम की बात कही है उस पर विचार करो। शास्त्र मे ७२ कलाओ का जो वर्णन किया गया है वह द्रव्य-परिक्रम है। तुम कह सकते हो कि द्रव्य-परिक्रम और वस्तु-विनाश तो दुनिया मे चलता ही रहता है। आप तो भाव-परिक्रम की बात कहिए। पर यह न भूल जाइए कि द्रव्योन्नति के बिना भावोन्नति नही हो सकती। जिनका शरीर और मन दुर्बल है, वह क्या धर्म का भलीभाँति आराधन कर सकते है ? वे क्या धर्म को अपने जीवन मे स्थान दे सकते है ? आज शरीर का परिक्रम नही किया जाता और इस कारण शरीर

भी सशक्त नही होता। बालक के शरीर का शारीरिक परिक्रम करने से ही विकास हो सकता है और उसका शरीर शक्तिशाली बन सकता है।

अहमदनगर मे राममूर्ति पहलवान ने कहा था कि मुझे चाहे जैसा निर्बल और अशक्त पाँच वर्ष का बालक सौंप दिया जाये, मैं बीस वर्ष की उम्र मे उसे दूसरा राममूर्ति बना सकता हू। इस प्रकार भाव-परिक्रम करने के लिए द्रव्य-परिक्रम की भी आवश्यकता होती है।

यह तो हुई द्रव्य-धर्म की बात। भाव-धर्म के लिए द्रव्य-धर्म की आवश्यकता होती है पर केवल द्रव्य-धर्म हो और भाव-धर्म न हो, तो अकेला द्रव्य-धर्म आत्मा के लिए उपयोगी नही हो सकता। शास्त्र मे कहा है—

सव्वा कला धम्मकला जिणई।

भाव-धर्म के बिना द्रव्य-धर्म से आत्मा का कल्याण नही हो सकता। कदाचित् तुम कहोगे कि जब जीवन-व्यवहार सम्बन्धी कार्य द्रव्य-धर्म से चल सकते हैं, तो फिर भाव-धर्म की क्या आवश्यकता है ? भाव-धर्म के बिना क्या हमारा काम रुक जायेगा ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जिस भाव-धर्म के लिए द्रव्य-धर्म किया जाता है, उस भाव-धर्म को ही यदि भुला दिया जाये तो फिर द्रव्य-उन्नति कैसे हो सकती है ? तुम जो कुछ भी करते हो वह किसके लिए करते हो ? आत्मा के लिए ही करते हो न ? तब यदि आत्मा को ही न जानो तो उसकी उन्नति किस प्रकार कर सकते हो ? और इस प्रकार जब तक आत्मा को न जानो, तब तक भाव-धर्म की साधना भी किस प्रकार हो सकती है ?

यदि कोई कहे कि हम तो यह भी नही जानते कि आत्मा क्या है ? तो इसका उत्तर यह है कि तुम जिस शरीर को प्रत्यक्ष देख रहे हो, उसके विषय में यह विचार करो कि शरीर कार्य है या कारण ? शरीर कार्य है और उसका कारण पच-भूत है । जैसे घड़ी कार्य है और उसके साँचे उसके कारण हैं, इसी प्रकार शरीर कार्य है और पाँच-भूत उसके कारण हैं । यहाँ तक समझने मे तो भूल नही होती, पर आगे चलने पर भूल हो जाती है । अव आगे यह समझिये कि शरीर जब कार्य है तो इसका कर्त्ता कौन है ? कितनेक लोग कहते है कि जैसे पुर्जे तरतीबवार जमा देने से घडी चालू हो जाती है, इसी प्रकार पाँच भूतो के सयोग मात्र से यह शरीर भी बोलता-चलता बन जाता है। जैसे घडी के पुर्जे बिखरने से घड़ी बन्द हो जाती है उसी प्रकार पाँच भूतो के बिखरने से यह शरीर भी बोलता-चलता नही रहता । इसके लिए परलोक या आत्मा को मानने की क्या आवश्यकता है ?

कल-पुर्जो को यथास्थान जमा देने से घडी चालू हो जाती है, यह तो ठीक है; पर प्रश्न तो यह है कि पुर्जो को जमाया किसने और बनाया किसने है ? मकान तो प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है पर उसे बनाया किसने है ? यद्यपि मकान बनाने मे ईंट-चूना आदि कारणभूत है, पर इसीलिए ईंट-चूने को तो कोई मकान नही कहता है । किन्तु जब कोई कारीगर ईंट-चूना आदि सामग्री से मकान बनाता है तभी वह मकान कहलाता है । यहाँ कर्त्ता कारीगर था तभी मकान बन सका है, अकेले ईंट-चूना आदि कारणो से मकान नही बना है । ईंट-चूना आदि कारणो में कारीगर की शक्ति

का उपयोग किया गया है। उसके बाद वह ईंट-चूना नही कहलाता वरन् मकान कहलाने लगता है। इसी प्रकार शरीर पाँच-भूतो से बना हुआ है, इस कारण पंचभूत को शरीर नही कहा जा सकता बल्कि पचभूत से शरीर बना है, ऐसा कहा जा सकता है। जैसे ईंट-चूना से मकान बनता है पर उसका बनानेवाला काई अवश्य होता है, वैसे ही पचभूत से बने हुए शरीर को बनानेवाला कोई अवश्य होना चाहिए। मकान को राज बनाता है, घडी को कोई कारीगर बनाता है, तो क्या शरीर को बनाने वाला कोई नही है ? जब शरीर का कारण पचभूत है और शरीर कार्य है, तब इसका कर्त्ता भी कोई होना ही चाहिए। तुम शरीर को स्वीकार करते हो, उसके कारण-रूप मे पाँच भूतो को मानते हो, परन्तु जिसने पाँच भूतो से शरीर बनाया है उसे नही मानते, यह क्या उचित कहा जा सकता है ? शरीर का कर्त्ता न मानना, बस यही भयकर भूल है।

मैंने मिरी कारेली नामक एक पाश्चात्य विदुषी के लेख का अनुवाद पढा था। उसमे लिखा था कि ससार के पदार्थों का रूपान्तर तो होता है पर उनका विनाश नही होता। मोमबत्ती जल जाने के बाद, ऐसा माना जाता है कि मोमबत्ती नष्ट हो गई है। पर वास्तव मे वह नष्ट नही हुई। केवल उसका रूपान्तर हुआ है। किसी जलती हुई मोमबत्ती के आगे आधुनिक, विज्ञान के अनुसार दो यत्र रख दिये जाएँ तो मोमवत्ती के परमाणु उस यत्र में एकत्र हो जाएँगे। इसके पश्चात् उन इकट्ठे हुए परमाणुओ को समुदित करके फिर मोमवत्ती वनाई जा सकती है। पानी सूख जाने से लोग समझते है कि पानी का नाश हो गया है। पर वास्तव

मे पानी का नाश नही होता । वह हवा के रूप में परिवर्तित हो जाता है । पानी दो प्रकार की वायु के सम्मिश्रण से बनता है, अतएव उन दोनो हवाओ का सयोग करने से फिर पानी बन सकता है । किसी घडे को फोड दिया जाये तो उसके ठीकरे हो जाएगे । ठीकरो को पीस दिया जाये तो रेत या मिट्टी जैसा कोई पदार्थ बनेगा, पर उस द्रव्य का अत्यन्त अभाव कदापि नही हो सकता । वह द्रव्य, घडे के ठीकरे आदि के रूप मे रूपान्तरित होता जायेगा, किन्तु उसका सर्वथा अभाव न होगा । इसी प्रकार जब कोई साधारण वस्तु भी नष्ट नही होती, तो फिर शरीर को बनाने वाले कर्त्ता का नाश कैसे हो सकता है ? इस प्रकार शरीर को बनाने वाला कर्त्ता कदापि नष्ट नही हो सकता ।

कहने का आशय यह है कि, शरीर है तो उसका कर्त्ता भी है, और जो उसका कर्त्ता है वही आत्मा है । वह आत्मा अजर, अमर और अविनाशी है । इस प्रकार आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है और आत्मा को जिस धर्म की आवश्यकता रहती है, उसी को मानव-धर्म कहते है ।

मानव-धर्म को जैन, बौद्ध, वेदान्ती या ईसाई आदि सम्प्रदायो की दृष्टि से न बतलाते हुए मैं यह बतलाना चाहता हू कि मानव धर्म सामान्य-धर्म है । सामान्य-धर्म मे किसी को किसी प्रकार का विरोध नही होता । जिस धर्म पर साम्प्रदायिकता का रग नही चढा है और जिस धर्म को सभी लोग समानभाव से स्वीकार करते है उसे सामान्य-धर्म कहते है । सामान्य-धर्म के विषय मे सब सम्प्रदाय वालो ने बहुत विचार किया है । सामान्य-धर्म मे समस्त संसार का विचार किया जा सकता है, पर उस सबका वर्णन

नही किया जा सकता । अतएव 'स्थाली पुलाक न्याय' से कुछ ऐसी बाते बतलाता हूं जो समस्त शास्त्रो-मे मिलती हैं और सब के काम आती है ।

जिस शास्त्र में सामान्य-धर्म की बाते नही, वह शास्त्र भी नही है । अधिक-से-अधिक उसे एकपक्षीय शास्त्र कहा जा सकता है । किन्तु ऐसा शास्त्र समग्र मानव जाति के लिए उपयोगी नही हो सकता ।

सामान्य-धर्म का वर्णन सब ने किया है, यह बताने के लिए मैं पहले कुरान की साक्षी पेश करता हू । कुरान मे कहा है :—

ला तो अजे वोखल कुल्ला ।

अर्थात् हे मुहम्मद ! दुनिया को विश्वास दिला दे कि अल्लाह की दुनिया को कोई सतावे नही ।

देखना चाहिए कि अल्लाह की सतान कौन है ? क्या हिन्दू अल्लाह की सतान नही हैं ? यदि केवल मुसलमान ही अल्लाह की सतान हो, तो अल्लाह पक्षपाती कहलाएगा ! जब वह सबका मालिक कहलाता है, सारा ससार उसी का है, तो क्या हिन्दू और क्या मुसलमान सब उसी की सतान है । किसी हिन्दू को कोई मुसलमान सताता है तो क्या वह हिन्दू उसे यह नही कहता कि क्या तू अपने मालिक को जानता है ? तू अपने मालिक को सारे ससार का स्वामी कहता है तो क्या उसने किसी को सताने की आज्ञा दी है ? इसी प्रकार यदि किसी मुसलमान को हिन्दू सतावे तो क्या वह मुसलमान उस हिन्दू से यह नही कहता कि—क्या तुम्हारे परमात्मा ने किसी को सताने का हुक्म दिया है ? क्या

तुम्हारा परमात्मा पूरी दुनिया का मालिक नही है ? इस प्रकार जब अल्लाह या परमात्मा सकल ससार का स्वामी है, तो ससार मे किसका समावेश नही हो जाता ?

मान लीजिए कोई वृद्ध पुरुष हाथ मे माला लेकर परमात्मा का नाम जप रहा है। इतने में किसी ने आकर उसे गालियाँ देना शुरु किया। वह वृद्ध कहने लगा—देखते नही हो, मैं परमात्मा के नाम की माला जप रहा हू। मेरा परमात्मा तेरा सत्यानाश कर डालेगा। तब वह दूसरा पुरुष कहने लगा—क्या परमात्मा तेरा ही है ? मेरा नही है ? वह मेरा भी है, इसलिए तेरा नाश कर देगा।

इस प्रकार दोनो आपस मे कहने लगे कि 'परमात्मा तेरा नाश कर डालेगा।' अब बतलाइए परमात्मा किसका पक्ष लेकर किसका नाश करेगा ? वास्तव मे ऐसी ही बातो से आज के युवको को धर्म और ईश्वर के प्रति उपेक्षा उत्पन्न हो गई है और इसी कारण कुछ लोग धर्म और ईश्वर के बहिष्कार की बाते कहने लगे है। कुछ लोग तो ईश्वर और धर्म का उपहास करने से भी नही चूकते है। पर यह सब उनका भ्रम है। इस भ्रम का कारण ऊपर कहे अनुसार धर्म और ईश्वर का दुरुपयोग करने वाले लोगो का व्यवहार है। इस विषय में गहराई के साथ विचार किया जाये तो जिस धर्म के लिए छह खड की ऋद्धि का तिनके की तरह त्याग किया जा सकता है, उस धर्म का महत्व कुछ कम नही है। धर्म को यदि जीवन मे स्थान दिया जाये, तो समझ मे आ सकता है कि धर्म मे कितनी अधिक महत्ता विद्यमान है ?

यह हुई कुरान की बात। अब देखिए कि गीता मे

क्या कहा गया है ? गीता में कहा है कि तुम चाहो जो पढो पर सब वेदपुराणो का सार सक्षेप मे यही है :—

निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव !

भावार्थ--समस्त प्राणियो के प्रति निर्वैर बनो किसी के ऊपर वैरभाव न रखो ।

इस प्रकार कुरान में जो कहा गया है, वही केवल दूसरे शब्दो मे गीता मे कहा गया है ।

अब मैं उस शास्त्र की बात सुनाता हूं जिसके लिए मै उत्तरदायी हू । इस जैन शास्त्र मे कहा है --

सव्वभूयप्पभूयस्स, सम्म भूयाइं पासम्रो ।
पिहि म्रासवस्स दंतस्स, पावकम्मं न बंधई ।

—दशवैकालिक सूत्र

अर्थात्--हे शिष्य ! तू सब प्राणियो को अपने समान समझ । जैसे तेरो आत्मा अविनाशी है उसी प्रकार अन्य प्राणियों की आत्मा भी अविनाशी है । अतएव सब प्राणियो को अपने समान मान । किसी के साथ वैर बाँधकर पाप का भागी न बन ।

उदयपुर मे एक वकील ने मुझ से प्रश्न किया था कि आत्मा जब अविनाशी है, वह किसी का मारा मरता नही है, तो किसी को मारने से पाप कैसे लग सकता है ? इस प्रश्न के उत्तर मे मैंने कहा था–आत्मा अविनाशी है इसीलिए पाप लगता है और उस पाप का फल भोगना पडता है । आत्मा अगर विनाशी होता तो कोई झगडा ही न रहता ! मारने वाला और मरने वाला, यदि नष्ट हो जाता,

तो पाप का प्रश्न ही कैसे उपस्थित होता ? लोक-व्यवहार में भी, जो मर जाता है उसके ऊपर किसी प्रकार का दावा नही हो सकता !

इसी प्रकार आत्मा यदि नाशशील होता तो किसी प्रकार का झगडा ही न रहता । मरे हुए पर दावा नही होता, पर जीवित पर तो होता है न ? इसी तरह मारने वाला भी नष्ट नही हुआ और मरने वाला भी नष्ट नही हुआ है, अतएव किसी को मारने से पाप भी लगता है और उस पाप को धोने के लिए धर्म की भी आवश्यकता रहती है।

कहने का तात्पर्य यह है कि जो सब प्राणियो को आत्मतुल्य मानेगा वह किसी के साथ वैर नही बाँधेगा और इसलिये वह पाप का भी बध नही करेगा । यह सामान्य मानव-धर्म है । श्री स्थानांग सूत्र में ग्राम-धर्म, नगर-धर्म, राष्ट्र-धर्म आदि दस धर्मों का वर्णन किया गया है । मैंने इन दस धर्मों पर व्याख्यान किया है, जो पुस्तक रूप में प्रकाशित भी हुआ है ।× मुझे मालूम हुआ है कि यह पुस्तक लोगो को अत्यन्त उपयोगी साबित हुई है । इसी प्रकार मनु ने भी ग्राम-धर्म आदि धर्मों का वर्णन किया है । यह सब सामान्य धर्म हैं । जो इस सामान्य धर्म का पालन करता है वही मानव है और इस धर्म का पालन करना ही मानव-धर्म का पालन करना कहलाता है । महाभारत मे मनुष्य का सामान्य-धर्म यह बताया गया है :—

श्रद्धा कर्म तपश्चैव, सत्यमक्रोध एव च,
स्वेषु दारेषु सन्तोषः, शौच विद्या न सूयिता ।

× देखो 'धर्म अने धर्मनायक'; प्रसिद्धकर्ता शान्तिलाल वनमाली शेठ ।

आत्मज्ञानं तितिक्षा च, धर्मः साधारणो नृप !

महापुरुष किसी राजा से कहते हैं—हे राजन् ! मैं मनुष्य मात्र का साधारण धर्म कहता हू । वह इस प्रकार है—श्रद्धा रखना, सत्कर्म करना, तप करना, सत्य भाषण करना, क्रोध न करना, अपनी पत्नी मे सतुष्ट रहना, पवित्र रहना, विद्याध्ययन करना, क्षमा रखना—किसी के साथ वैर न बाँधना, यह मनुष्य मात्र का सामान्य-धर्म है । जिस घर में इस धर्म का पालन नही होता, उस घर में हाहाकार मच जाता है ।

यह हुई मानव-धर्म की व्याख्या । अब कदाचित् कोई यह कहे कि हम जन्म से ही मनुष्य है तो फिर हमे इस सामान्य-धर्म को पालने की क्या आवश्यकता है ? यह बात, तुम जिस वृक्ष की छाया में बैठे हो उसी वृक्ष को काटने के समान है । ऐसा कहने वाले को समझना चाहिए कि उसकी खुद की रक्षा भी धर्म द्वारा हो रही है । मान लो कि तुम्हारी माता साधारण धर्म का पालन न करती हुई जन्मते ही तुम्हे बाहर फैंक देती तो क्या तुम्हारा जीवन टिक सकता था ? माता मे सामान्य-धर्म था, इसीलिये उसने तुम्हारा पालन-पोषण किया है और इसी कारण तुम्हारा जीवन टिक सका है । इतना होते हुए भी तुम कहते हो कि मानव-धर्म को क्या आवश्यकता है ! जीवन मे वस्त्र और भोजन की जितनी आवश्यकता है उससे कही अधिक आवश्यकता मानव-धर्म की है ।

तुम्हारा व्याह हुआ होगा । तुम कैसी स्त्री चाहते हो ? अपने अनुकूल बर्त्ताव करने वाली स्त्री तुम सभी चाहते हो या प्रतिकूल चलने वाली ? अनुकूल चलने वाली स्त्री

सभी चाहते हैं, पर स्त्री यदि सामान्य-धर्म का पालन न करे तो क्या अनुकूल रह सकती हे ? साधारण धर्म का पालन करने के लिये ही पिता सतान का पालन करता है । धर्म की सहायता के बिना ससार एक श्वास भी नही ले सकता। धर्म का अर्थ है नियम । नियमनिरुद्ध एक श्वास भी न लेना यह मानव-धर्म है । तुम दूसरो मे नियम देखना चाहते हो, पर यदि तुम स्वय भी नियम का पालन करो तो कितना अधिक लाभ हो सकता है !

यह तो धर्म के विषय मे एक सामान्य बात कही गई है । पर अब धर्म का एक सूक्ष्म तत्व आपके सामने रखता हू । कोई यह कह सकता है कि आप जो कुछ कह रहे है, वह तो नीति है, धर्म नही । किन्तु स्मरण रखना चाहिए कि नीति, धर्म का ही एक अग है । नीति का आधार लेकर उस पर धर्म का महल किस प्रकार खडा करना चाहिए, इस बात का विचार करो । नीति किस प्रकार धर्म का पोषण करती है, यह बताने के लिए हितोपदेश की एक कथा कहता हूं, जिससे यह बात जल्दी और सरता से समझ मे आ जाए ।

'हितोपदेश' की 'पक्षी की कथा'

कबूतरो की एक टोली जगल मे विचर रही थी । इस टोली का नेता चित्रग्रीव था। वैज्ञानिक कहते है कि सर्वसाधारण जनता जिन्हे अपने से बडा मानती है उनमें कोई असाधारण गुण होता है । इस कथन के अनुसार कबूतरो ने चित्रग्रीव मे नेता के योग्य गुण देखकर उसे अपना नेता बनाया था और उसकी सम्मति से सब साथ-साथ विचरते थे ।

विचरते-विचरते कबूतरों ने जगल में चावल बिखरे देखे। एक पारधी ने चावल बिखेर कर उनके ऊपर जाल फैलाया था। चावलो को देखकर कुछ कबूतर कहने लगे—'चलो, चावल पडे है, उन्हे खाएँ।' पर राजा चित्रग्रीव ने विचार कर कहा—

अत्र निर्जन वने कुत्र तण्डुल कणाना सम्भव.? निरूप्यता तावत्, भद्रमिद न पश्यामि।

अर्थात् —इस निर्जन वन मे चावलो के दाने कहाँ से आये? मुझे तो इन चावलो को खाने मे कल्याण नही जान पडता। अतएव थोडी देर राह देखो। मैं जाँच-पडताल कर आता हूं।

राजा चित्रग्रीव ने ऐसा कहा। पर आज के युवक मानें, तो वे कबूतर माने! ऐसे थे वे कबूतर! राजा या नेता बना तो दिया जाता है, पर बहुत बार उसकी आज्ञा मानने में कठिनाई प्रतीत होती है। इस प्रकार एक हठी कबूतर को राजा चित्रग्रीव का कथन रुचिकर न हुआ। वह बोला विपदा के वक्त बूढो की बात माननी चाहिए। भोजन के समय बूढो की बात मानने से तो हानि ही होती है। यदि हम ऐसी शका करते रहेगे, तो सभी जगह ऐसी शकाएँ उत्पन्न होंगी और फल यह होगा कि तडप-तडप कर भूखो मरना पडेगा। आँखो के आगे चावल पडे हैं, फिर भी चावल लेंगे तो 'यह होगा, वह होगा' इस तरह कार्य-कारण भाव का विचार करना किस प्रकार उचित कहा जा सकता है? राजा की यह बात हमे तो जंचती नही।

आज के नवयुवक यह कहने लगते हैं कि हम यदि

इन बूढों के कथनानुसार चलेगे तो अणु मात्र भी सुधार न हो सकेगा। कबूतर भी यही कहने लगे। पर ऐसी परिस्थिति में नेता का क्या कर्त्तव्य है, यह देखिए।

चित्रग्रीव ने सोचा–'सब कबूतर एक-मन हो गये हैं। मैं इनके मत से विरुद्ध चलूंगा तो अनैक्य आ घुसेगा।' इस प्रकार विचार कर उसने कबूतरो से कहा 'यदि सभी का विचार चावल खाने का है, तो चलो। भूख तो मुझे भी लगी है।' चित्रग्रीव ने यह नही कहा कि तुम लोग मेरी बात नही मानते तो तुम जानो, तुम्हारा काम जाने। मैं तो तुम से अलग ही रहूंगा। चित्रग्रीव को भलीभाँति ज्ञान था कि यहाँ सकट है, फिर भी उसने सोचा—सकट-काल में मुझे सब के साथ रहना चाहिए। यही मेरा कर्त्तव्य है। जब सिर पर सकट आ पड़ेगा, तब आप ही मेरी वात मानेगे।

यह विचार कर राजा भी सब कबूतरों के साथ चल दिया। कबूतरो ने चावल के दाने तो खाये, पर सब के पैर जाल मे फँस गये। वे उडने मे असमर्थ हो गये। अब सभी कबूतर उस जवान कबूतर को कोसने लगे कि तूने राजा की आज्ञा नही मानी और सबको जाल में फँसा दिया। राजा ने सबको सान्त्वना देते हुए कहा–जो होनहार था सो हो गया है। अब उसे कोसना छोडकर जाल मे से छुटकारा पाने का उपाय खोजो। उपालम्भ देने से काम नही चलने का।

आपदामापतन्तीनां, हितोऽप्यायाति हेतुताम्।
मातृजङ्घा हि वत्सस्य, स्तम्भीभवति बन्धने॥

अर्थात्—जब आपत्ति सिर पर आ पड़ती है, तब मित्र

भी शत्रु का-सा व्यवहार करने लगते हैं। यह एक साधारण नियम है । इस कबूतर का विचार हमें फँसाने का नही था । वह तो सिर्फ यही चाहता था कि हम सब को भोजन प्राप्त हो । मगर सहसा विपत्ति आ पडी तो इसमे इसका क्या दोष है ? इसके अतिरिक्त इसे दोष देने से ही तो हमारा छुटकारा नही हो सकता। ऐसी अवस्था मे उलहना देना व्यर्थ है ।

आज के लोग दूसरो को उपालम्भ देना बहुत जानते हैं । यह बुरा है, वह बुरा है, इस प्रकार दूसरो को कहते हैं, पर अपने मे क्या-क्या बुराइयाँ हैं, इस बात का विचार तक नही करते । मैंने एक लेख में देखा था कि एक महाशय भाषण तो बहुत लम्बे-चौडे दे डालते हैं, पर वह स्वय व्यभिचार के दोष से मुक्त नही रह सकते । ऐसे लोगो से क्या सुधार हो सकता है ?

राजा ने कबूतरो मे कहा—उपालभ देना बन्द करके जाल से मुक्त होने का उपाय सोचो । राजा की यह बात सुनकर सब कबूतर कहने लगे—'आप ही इसका कोई उपाय बताइए ।' राजा बोला—'तो मेरी बात सब लोग मानोगे न ?' सबने कहा—'पहले आपकी बात न मानने का कटुक फल यह भोगना पढ रहा है। अब आपकी आज्ञा का पालन अवश्य करेंगे और आप जो आज्ञा देंगे वही करेंगे ।'

संकट एक शिक्षाप्रद बोध-पाठ है । राजा ने कहा—'यदि सब एक मत हो जाओ तो हम संकट से मुक्त हो सकते हैं । एक भी कबूतर अगर अलग रहा तो सकट से मुक्त नही हो सकेंगे । अतएव सब हिलमिल कर एक साथ

उड़ो और इस जाल को साथ ही साथ उठाओ, तो जाल से मुक्ति पाई जा सकेगी।'

आज भारत मे फूट है और इसी फूट के कारण पारधियो की बन पड़ी है। फूट न होती तो भारत किसके जाल मे न फँसता।

सब कबूतर मिलकर एक साथ जाल को लेकर आकाश में उढ चले। कबूतरो को उडते देख पारधी उनके पीछे-पीछे दौड़ा और सोचने लगा—मैं इन कबूतरों को अपने जाल मे फँसाना चाहता था- पर यह तो मेरे जाल को लेकर चलते बने। इस समय यह सब एक-मत हो रहे है अतएव गिरते नही है, पर जब इसमे फूट पड़ेगी तब सारे नीचे आ गिरेंगे। यह सोचकर पारधी कबूतरो के पीछे-पीछे भागने लगा। पारधी को पीछा करते देख राजा ने कहा—देखो, पीछे अपना शत्रु आ रहा है। अतएव आपस मे झगडना नही और यह न सोचना कि उडन मे सब अपने बल का उपयोग कर रहे हैं तो मैं अपने बल का उपयोग क्यो करूँ? यदि आपस मे लडोगे-झगडोगे या एक-दूसरे को सहकार न दोगे, तो हम सभी नीचे गिर पड़ेंगे और काल का ग्रास बन जाएंगे। राजा की यह चेतावनी सुनकर सब कबूतर मिल कर उडने लगे। पारधी थोड़ी दूर तो पीछे-पीछे दौडा, पर अन्त मे वह थक गया और वापस लौट गया। पारधी को पीछा लौटा देखकर कबूतरो ने राजा से कहा—शत्रु तो लौट रहा है, अब हमे क्या करना चाहिए? राजा ने कहा—हम लोग एक आपत्ति से मुक्त हो गये हैं, पर अभी जाल से मुक्त होना बाकी है। जाल को तोड़ने की शक्ति हम लोगो मे नही है। यह शक्ति जमीन खोदने वालो मे ही होती है।

अतएव हम आगे उडते चलें । हम तो सिर्फ उड़ना जानते हैं, हमें जाल काटना नही आता ।

आज स्वतन्त्रता तो सभी चाहते हैं । किन्तु जो लोग आकाश मे स्वैर विहार करने की तरह केवल लम्बे-चौडे भाषण ही करना जानते है, उनसे परतन्त्रता का जाल कट नही सकता । परतन्त्रता का जाल तो जमीन को खोदने वाले किसान ही काट सकते हैं ।

राजा ने कबूतरो से कहा— गडकी नदी के किनारे हिरण्यक नामक मेरा एक मूषक (चूहा) मित्र रहता है । हालाँकि मैं कबूतर हू और वह चूहा है, फिर भी वक्त-बेवक्त कभी एक दूसरे को सहायता पहुचा सके, इस उद्देश्य से हमने आपस मे मित्रता की है । अतएव हम सब उसके पास चलें, तो वह इस जाल के बधनो को काट डालेगा और हम लोगों को बन्धन-मुक्त कर देगा ।

सब कबूतर उडते-उडते गडकी नदी के किनारे आ पहुँचे । जाल के साथ कबूतरो को उडते आते देख हिरण्यक अकचका गया । सोचने लगा—यह कौन-सी आफत आई है ! लेकिन उसने अपने बिल में सौ द्वार बना रक्खे थे, इसलिए कि आपत्ति आने पर किसी न किसी द्वारा से निकल बाहर हो सकें । कबूतरो को देखकर वह चट से अपने बिल में घुस गया ।

हिरण्यक के बिल के पास आकर चित्रग्रीव ने कहा— 'मित्र हिरण्यक ! बाहर निकलो, मैं तो तुम्हारा मित्र हूं ।' मित्र की आवाज पहचान कर हिरण्यक बाहर निकला और चित्रग्रीव से कहने लगा—'तुम इतने बुद्धिमान हो, फिर इस

जाल में कैसे फँस गये !' राजा ने उत्तर दिया—यह तो समय की बलिहारी है। राजा ने यह नही कहा कि इन कबूतरों ने मेरा कहना नही माना इस कारण जाल में फंस गये। हिरण्यक यह सुनकर चित्रग्रीव मित्र का जाल काटने के लिए उसके पास आया, पर चित्रग्रीव ने कहा—मित्र ! पहले मेरे इन साथियो के बन्धन काटो ! चित्रग्रीव चाहता तो पहले अपने बन्धन कटवा सकता था। पर उसने ऐसा न करते हुए अपने साथियो के बन्धन काटने का आदेश दिया। हिरण्यक ने कहा—मित्र ! मैं बहुत छोटा प्राणी हू। मैं इन सबके बन्धन कैसे काट सकूगा ? मेरे दात भी इतने मजबूत नही हैं कि सबके बन्धन काट सकू। अतएव पहले तुम्हारे बन्धन काट देता हूं। इसके बाद यदि मेरे दातो मे शक्ति होगी, तो दूसरो के भी काट दूगा।

हिरण्यक को यह बात चित्रग्रीव ने स्वीकार न की। नीति कहती है :—

आपदर्थे धनं रक्षेद् दारान् रक्षेद् धनैरपि।
आत्मानं सतत रक्षेद् दारैरपि धनैरपि॥

भावार्थ—आपत्ति के समय धन की रक्षा करनी चाहिए, और धन का त्याग करके भी स्त्री की रक्षा करनी चाहिए, परन्तु आत्म-रक्षण के समय स्त्री की या धन की हानि का भी खयाल नही करना चाहिए। जब नीति यह कहती है तो चित्रग्रीव ने अपने बंधनो को पहले क्यो नही कटवा लिया ? उत्तर यह है कि नीति भले ही ऐसा विधान करती हो, पर धर्म तो कुछ और ही बतलाता है। हिरण्यक ने अपने मित्र को जब यह नीति बतलाई तो राजा ने कहा—

नीतिस्तावदीदृश्येव, किन्त्वहमस्मदाश्रितानां दुःख सोढुं सर्वथाऽसमर्थः ।

राजा ने कहा—नीति भले ही ऐसा विधान करती पर मैं तो नीति से आगे बढ गया हूं । नीति मस्तक की उपज है, जब कि धर्म हृदय से उद्भूत होता है । नीति अपने आश्रितों की परवाह न करके अपनी रक्षा करने का उपदेश देती है, पर धर्म बतलाता है कि स्वय कष्ट-सहन करके भी दूसरो को सुखी बनाओ। राजा ने कहा—मैं तो धर्म का पालन करूगा । प्रिय मित्र ! मैं तुम्हारे ऊपर अधिक बोझ लादना नही चाहता । तुममें जितना शक्ति हो उसी के अनुसार मेरे इन आश्रितो के बन्धन काटो । कदाचित् तुम कहोगे कि दूसरो के लिए आप स्वय बधन मे क्यो पडे रहोगे ? लेकिन मित्र ! मेरा धर्म मुझे बतलाता है कि —

धनानि जीवितं चैव, परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत् ।
सन्निमित्तं वर त्यागो, विनाशे नियते सति ॥

धर्म का यह विधान है कि दूसरो के लिए धन और यहाँ तक कि जीवन का भी उत्सर्ग कर देना चाहिए, जब कि नीति स्वय अपना रक्षण करने के लिए कहती है ।

धर्म और नीति मे यही अन्तर है । धर्म कहता है—'लीजिए', नीति कहती है—'लाये जाओ ।' नीति स्वार्थ पर नजर रखती है, धर्म परमार्थ की ओर सकेत करता है । जिस प्रकार माता का धर्म बालक को चुमना, पुचकारना ही नही है, किन्तु बालक का पालन-पोषण करना है, इसी प्रकार आगे बढ़ते जाइये और इस नीति द्वारा धर्म को

हृदय मे स्थान देते चले जाइए ।

चित्रग्रीव ने हिरण्यक से कहा—मैं पहले अपने बन्धन न कटवा कर अपने साथियो के बधन कटवाने का आग्रह क्यो करता हूं ? इसका कारण यह है—

जाति द्रव्यगुणानाञ्च, साम्यमेषां मया सह ।
मत्प्रभुत्वफलं ब्रूहि, कदा किं तद् भविष्यति ।।

हे मित्र ! जाति से मैं भी कबूतर हूं और यह सब भी कबूतर है । द्रव्य से मेरे दो पख हैं और इन सबके भी दो-दो पख हैं । गुण के लिहाज से भी हम सब बराबर हैं। इतनी सब समानता होने पर भी यह मुझे राजा मानते हैं। अब आप ही बताइये कि इसका लाभ इन्हे कब मिलेगा ?

आज सबल के दो भाग बताये जाते है । क्या राजा भी दो भाग लेने वाला है ? ऐसा कहने वाला वास्तव मे बलवान् नही है । सच्चा बलवान् वह है जो अपने सर्वस्व का समर्पण करके अपने आश्रित जनो की रक्षा करता है ।

चित्रग्रीव ने कहा—मित्र ! जब मैं राजा हू तो राजा की हैसियत से अपने आश्रितो की रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है या नही ? मित्रता की खातिर तुम्हारा भी यह कर्त्तव्य है कि पहले मेरे आश्रितो के बन्धन काट कर फिर मेरे बन्धन काटो । मित्र ! पहले मेरे आश्रितो के बन्धन काट कर मेरे इस भौतिक-शरीर के बदले मेरे यश रूपी शरीर की रक्षा करो । यह भौतिक शरीर नाशवान् है, जब कि यश. शरीर अविनश्वर है । अतएव हे मित्र ! मेरे भौतिक शरीर का भोग देकर भी यश. शरीर को बचाओ ।

आज के वृद्ध भी स्वार्थ में डुबे हैं। इसलिए वृद्धों का कर्त्तव्य भी युवको को बताना पडता है।

मित्र की यह बात सुनकर हिरण्यक को अत्यन्त आनन्द हुआ। उस हर्ष के आवेश मे उसने सब कबूतरो के बन्धन काट फेंके। हिरण्यक चित्रग्रीव से कहने लगा—मित्र! तुम्हारे उन्नत और उज्जवल गुण तुम्हे तीन लोक का स्वामी बनाने के लिए पर्याप्त है। वास्तव मे त्रिलोकपति वह है जो स्वय कष्ट-सहन करके दूसरो को कष्ट से बचाता है। यही मानव-धर्म है। स्वय आपत्तियो को झेलकर दूसरो को सुख-शान्ति पहुँचाना ही मानव-धर्म है।

हिरण्यक ने सबके बन्धन काटकर चित्रग्रीव के बन्धन काटे। राजाने सब कबूतरो से कहा--जो हुआ सो हुआ। 'बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुधि लेहु।' अब उसे याद न करना, अन्यथा परस्पर में लडाई होगी।

हिरन्यक ने कहा–'मैं आपका क्या सत्कार करू? मेरे पास इतनी भोजन-सामग्री भी नही है कि आप सब को भोजन करा सकू?' राजा ने उत्तर दिया–'भोन देना कोई बडा काम नही है। तुमने हमें बन्धनो से मुक्त कर दिया है तो अब खाने को क्या चिन्ता है?'

इसी प्रकार आप भी दूसरो को कष्टो से मुक्त करने का प्रयत्न करो और ऐसा चिन्तन करते रहो कि मै स्वय कष्ट झेलकर भी दूसरो को सुखी बनाऊँ! प्राणी मात्र को आत्म-तुल्य समझूँ। इसके लिए परमात्मा से ऐसी प्रार्थना करो :—

दयामय! ऐसी मति हो जाय।

औरों के सुख को सुख समझूं, सुख का करूँ उपाय।
अपना दुःख मैं सहूं किन्तु पर-दुःख न देखा जाय॥
दयामय० ।

दूसरों को कष्ट से मुक्त करने के लिए तुम स्वयं कष्टसहिष्णु बनो, दूसरो के सुख में अपना सुख समझो। बस यही मानव-धर्म है। इस मानव-धर्म के पालन करने में ही स्व-पर का कल्याण है।



जन-सेवा

(१)



प्रार्थना

कुंथु जिनराज ! तू ऐसो, नहीं कोई देव तो जैसो ।
त्रिलोकीनाथ तू कहिये, हमारी बांह दृढ़ गहिये ।। कुंथु०

श्री कुंथुनाथ भगवान् की यह प्रार्थना है । आज मस्तिष्क मे वैसी स्वस्थता एव शान्ति नही है, जिसकी व्याख्यान करते समय आवश्यकता है । सभव है इस कारण बोलने मे कुछ अपूर्णता रह जाये । किन्तु परमात्मा की प्रार्थना का विषय तो ऐसा है, जिसमें अपूर्णता या न्यूनता को कोई स्थान ही नही है । चाहे जैसी तबीयत हो, चाहे जितनी शक्ति या योग्यता हो पर परमात्मा की स्तुति सदा ही की जा सकती है । ज्ञानी जनों के इस कथन पर मेरा पूर्ण विश्वास है ।

परमात्मा की प्रार्थना के सम्बन्ध में यह बात हुई । हमें यह विचार करना चाहिए कि परमात्मा की प्रार्थना किस प्रकार करनी चाहिए ।

विचार, बुद्धि और दृष्टि विन्दु भिन्न-भिन्न होने के

कारण परमात्मा की प्रार्थना की रीतियाँ भी भिन्न-भिन्न हो सकती है और है भी। पर ज्ञानी जन इस विभिन्नता में भी एकता का दर्शन और प्ररूपण करते है। भिन्न-वाक्यता मे किस प्रकार एक-वाक्यता समायी रहती है; इस बात का विवेचन ज्ञानी जन ही भली भाँति कर सकते है, फिर भी अपनी शक्ति के अनुसार मै भी इस पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करता हू।

प्रार्थना की पूर्वोक्त कडियो मे जो कुछ कहा गया है, उससे यह विदित होता है कि कोई सिद्ध है, कोई साधक है। साधक, सिद्ध बनने के लिए साधन का उपयोग करता है, क्योकि साधन द्वारा ही 'सिद्ध' बना जा सकता है। सिद्धो की साधना देखकर यह समझा जा सकता है कि यदि पर्याप्त अच्छे साधन हमे मिल सकें तो हम भी सिद्ध हो सकते हैं। जिन्होने 'सिद्ध' पद पा लिया है, वे हमारे लिए साधन का जो आदर्श छोड गये हैं, अगर उसी आदर्श मार्ग का अनुसरण किया जाये और उल्टे मार्ग का अवलम्बन न लिया जाये तो हम निस्सन्देह सिद्धि लाभ कर सकते हैं।

सिद्धो ने हमारे लिए कौन-सा आदर्श-मार्ग बताया है? इस प्रश्न के उत्तर मे मैं कहता हूं—वह मार्ग परमात्मा की प्रार्थना करने का मार्ग है।

परमात्मा की प्रार्थना यदि सम्यक् प्रकार से की जाये, उसमें किसी प्रकार के छल-कपट का समावेश न हो, तो आत्मा ससार की इस भूल-भुलैया में कदापि न भटके। लेकिन आत्मिक अशुद्धि को दूर करने जाते, दूसरे प्रकार

की अशुद्धि न आ जाये, परमात्मा की प्रार्थना करते समय इस बात की सतत सावधानी रखनी चाहिए। क्योकि परमात्मा की प्राथना का उद्देश्य आत्मिक अशुद्धता को धो डालना है।

आत्मा अपने वास्तविक रूप को भूलकर, ससार की ऋद्धि के प्रलोभन मे पड जाता है और फिर उन प्रलोभनो के पीछे-पीछे भकटता फिरता है। वह जगत् के एक दु.ख को दूर करने के प्रयास मे दूसरे अनेक नये दु.खो का शिकार बन जाता है। वह इस मूल तथ्य की ओर नही देखता कि—'मैं जिन कष्टो को दूर करने के लिए व्यग्र हो रहा हू, उन कष्टो का उद्गम-स्थान क्या है? यह कष्ट क्यो और कहा से आये हैं? अब वे कष्ट किस प्रकार विनष्ट किये जा सकते हैं?

मनुष्य भूख का दु ख आने पर भोजन का सहारा लेता है। वह यह नही सोचता कि भूख का दु.ख क्यो आता है? कदाचित भूख के कारण पर विचार करता भी है तो उसमे ऐसी कोई भूल कर बैठना है, जिससे एक कष्ट को दूर करने के प्रयास में दूसरे कष्टो को आमन्त्रित कर लेता है। परमात्मा की प्रार्थना नवीन कष्टो को न्योता देने के लिए नही है। आगत कष्टो के मूल कारण की खोज करके, उनसे मुक्त होने के लिए और अशुद्धि का निवारण करने के लिए परमात्मा की प्रार्थना की जाती है।

यह बुद्धिवाद का युग है। इस युग में प्रत्येक कार्य आरम्भ करने से पहले बुद्धि का उपयोग किया जाता है। पर भूल न जाना—जीवन-सिद्धान्त और बुद्धि-सिद्धान्त अलग-अलग दो वस्तुएँ हैं। दोनो के समन्वय मे ही व्यक्ति और

समाज का मगल है । अतएव बुद्धि-सिद्धान्त के साथ जीवन-सिद्धान्त का भी उपयोग करना चाहिए ।

जीवन-सिद्धान्त का सम्बन्ध आत्मा से है और बुद्धिवाद का बुद्धि के साथ । आत्मा भूत, भविष्य और वर्तमान–इन तीनो कालों मे एक रस रहता है । बुद्धि नाना रूपधारिणी है । वह किसी समय कुछ और किसी समय कुछ बन जाती है । आत्मा नित्य है, बुद्धि अनित्य है । आत्मा सब का एक-सा है और बुद्धि सबकी अलग-अलग प्रकार की है । धर्मी, अधर्मी, ज्ञानी, अज्ञानी, वीर, कायर, स्त्री-पुरुष—सभी की बुद्धि सुषुप्ति-अवस्था मे कौन जाने कहाँ लीन हो जाती है । परन्तु आत्मा उस अवस्था में भी सबका स्वस्थान पर ही रहता है । गाढ निद्रा की अवस्था मे बुद्धि विलीन हो जाती है । इन्द्रियों की और मन की सुषुप्ति निन्द्रा कहलाती है । इस सुषुप्ति में बुद्धि भी शान्त हो जाती है । किन्तु आत्मा जब जागता है तो वीर पुरुष जाग कर जैसे अपने हथियार सँभालता है, उसी प्रकार वह भी अपने सस्कारो के अनुसार बुद्धि को सभालता है । लेकिन सुषुप्ति-अवस्था में बुद्धि कहाँ गायब हो रहती है, इसका उसे पता नही रहता । मगर आत्मा उस समय भी जागृत बना रहता है । ऐसी अवस्था मे जीवनवाद आत्मा के सामने बुद्धिवाद को अधिक महत्व नही दिया जा सकता ।

आज सर्व-साधारण की बुद्धि वहिर्मुख हो गई है । बुद्धि दृश्यमान भौतिक पदार्थों को पकडने दौड रही है । मगर बुद्धि की यह दौड़ आत्मा की परछाई तक नही पा सकती । आत्मा की शोध, बुद्धि के सामर्थ्य से परे है । यही नही, बल्कि बुद्धि के द्वारा आत्मा का कल्याण भी होना

सभव नही है ।

पाश्चात्य लोगो ने वुद्धि द्वारा वाह्य-भौतिक पदार्थों का खूब विकास किया है । रेडियो की बदौलत अमेरिका में गाया हुआ गीत भारत मे बैठे-बैठे सुन सकना क्या छोटी बात है ? इस प्रकार वाह्य पदार्थों की शोध में और उनका विकास करने मे बुद्धि का उपयोग करने के कारण बुद्धि-बहिर्मुखी हो गई है और बहिर्मुखी वुद्धि वाले आत्मा की खोज नही कर सकते । यही नही, कुछ लोग तो बहिर्मुख वुद्धि के प्रभाव से प्रभावित होकर यहा तक कहने का साहस करते है कि आत्मा कोई वस्तु है ही नही । ऐसे लोग, बुद्धि के द्वारा भौतिक पदार्थों के सान्निध्य में इतने अधिक ग्रा गये है कि उनकी दृष्टि में भौतिक पदार्थों के सिवाय और कोई वस्तु ही नही है । यह भ्रम इसी कारण उत्पन्न हुआ है कि बुद्धि बहिर्मुखी हो गई है । यदि वुद्धि को वहिर्मुख न वनाकर अन्तर्मुख बनाया जाये तो वही वुद्धि आत्मोन्मुख वन सकती है । वुद्धि को अन्तर्मुखी बनाने वाले महात्मा आज भी भारतवर्ष मे मौजूद हैं । ऐसे महात्मा मौजूद न होते तो जगत् मे प्रलय न मच जाता ! प्राचीन काल के महात्माओ ने बुद्धि को भौतिक पदार्थों से विमुख रखकर अन्तर्मुख वनाया था । उन्होंनें कहा था— 'इन दृश्यमान वाह्य पदार्थों मैं ही विश्व की परिसमाप्ति नही हो जाती । इन भौतिक पदार्थों से परे एक वस्तु और भी विश्व मे विद्यमान है और वह आत्मा है । वह आत्मा शाश्वत है— सनातन है ।' इन महात्माओ के कथन पर प्रगाढ श्रद्धा रखो, वुद्धि को वहिर्मुख न वनने देकर अन्तर्मुख बनाओ और फिर परमात्मा के प्रति विनम्र भाव से प्रार्थना करो ।

बुद्धि अपने-आप में निकम्मी या तुच्छ वस्तु नही है। बुद्धि का सहारा लिये बिना आगे प्रगति भी नही हो सकती। पर बात इतनी ही है कि बुद्धि एकान्त बहिर्मुखी नही होनी चाहिए। अगर बुद्धि अन्तर्मुखी हो तो आत्मा की शीघ्र ही पहचान हो सकती है।

बुद्धि की बदौलत ही हम मनुष्य कहलाते है। आत्मा की दृष्टि से तो मनुष्य और पशु मे कुछ अन्तर नही है। दोनो मे बुद्धि का भी भेद है। पशु की बुद्धि का विकास नही हुआ है। वह भूतकाल और भविष्यकाल के सम्बन्ध मे ठीक विचार नही कर सकता। मनुष्य की बुद्धि विकसित है। वह पूर्वापर का भलीभाँति विचार कर सकता है।

मान लीजिए, किसी पशु को दुर्भिक्ष के कारण घास-चारा नही मिला है। इस कारण उसने बहुत सकट उठाये है। पर अब उसे घास की गाडी मिल जाती है तो वह भूतकाल के संकटो का स्मरण करके घास को सिलसिले-से सभाल कर नही खाता। वह एक ही साथ सारा घास रौंद डालता है। इस प्रकार पशु भूतकाल के सकटों का स्मरण रखकर भविष्य में उनसे बचने के उपाय नही सोच पाता। इसी से वह पशु कहलाता है, जब कि मनुष्य भूत, भविष्य और वर्तमान की परिस्थिति के सम्बन्ध मे भलीभाँति विचार कर सकता है। पशु और मनुष्य में यह अन्तर है।

इतिहास के निर्माण का उद्देश्य भूतकाल से परिचय प्राप्त करना है। प्राचीन काल मे कैसे-कैसे बुद्धिमान पुरुष थे और उन्होने कैसे-कैसे शुभ कार्य किये थे, यह बात विदित होती है। भूतकालीन वृत्तांत को इतिवृत्त द्वारा जानकर

हम आगे बढ सकते हैं। भूतकाल से शिक्षा ग्रहण करके भावी जीवन को सुख-सम्पन्न बनाना मनुष्य का कर्त्तव्य है। विवेक-बुद्धि से विभूषित मानव व्यक्ति भूतकाल को देखकर अगर भविष्यकालीन जीवन को सुखमय नही बनाता तो मनुष्य और पशु में क्या अन्तर है ? अतएव प्रत्येक मनुष्य को अपनी बुद्धि का सदुपयोग करके अपना भविष्यकालीन जीवन सुख-सम्पन्न और शातिमय बनाना चाहिए।

अक्सर पूछा जाता है—जीवन को सुखपूर्ण बनाने का कोई उपाय है ? इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि यदि जीवन को सुखमय बनाने का कोई उपाय न होता, तो महात्मा पुरुष ऐसा करने का उपदेश ही क्यो देते ? यही नही, वे सुख प्राप्ति के साधनो का निर्देश भी कर गये है।

ससार के सभी जीव दु खो से और सकटो से बचने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं। पर इस प्रयत्न मे मनुष्य को जितनी सफलता प्राप्त हो सकती है, उतनी सफलता किसी अन्य प्राणी को प्राप्त नही हो सकती।

जीवन को सुखी बनाने का उपाय परमात्मा की प्रार्थना है। अगर तुम सुखी बनना चाहते हो तो परमात्मा की प्रार्थना के साथ प्रीति-सम्बन्ध स्थापित करो, ऐसा सम्बन्ध—जो रग-रग में रम जाये, नस-नस मे व्याप जाये। ऐसा न हो कि जब तक यहाँ बैठे हो तब तक तो परमात्मा को याद करो और यहाँ से बाहर पैर धरते ही उसे भूल जाओ। अगर कोई बालक, पाठशाला मे 'पाँच और पाँच—दस' गिनना सीखा हो, पर पाठशाला मे पिंड छूटते ही 'ग्यारह' गिनने लगे तो उसकी सच्ची शिक्षा नही कहलाती। इसी प्रकार यहाँ से विदा होते ही अगर मस्तक मे से परमात्मा

के नाम को भी विदा कर दो तो तुम्हारा उपदेश-श्रवण भी—वास्तविक—सफल नही कहला सकता। अतएव जब यहाँ से बाहर चले जाओ तब भी परमात्मा को नही भूलो। वरन् परमात्मा की प्रार्थना द्वारा, ससार में अवश्यभावी जन्म-जरा-मरण आदि भयो से मुक्त होकर अमर बनने का प्रयत्न करो। जीवन के इस प्रधान लक्ष्य को भूल न जाना।

कुछ लोगो को यह भ्रम है कि गृहस्थ-अवस्था मे रहते हुए भावना अमृतमय नही बन सकती। अतएव वे कहते हैं –हम क्या करें– भावना को अमृतमय बनाये या ससार-व्यवहार का निर्वाह करे ? वास्तव मे, गृहस्थावस्था साधक दशा में बाधक है किन्तु जो गृहस्थ अमृत-भावना का अभ्यासी बन जाता है, उसके लिए गृहस्था-अवस्था सर्वथा बाधक नही है। अतएव मैं सिर्फ यही कहता हू कि परमात्मा की प्रार्थना द्वारा भावना को अमृतमय बनाने का प्रयास करो। प्रार्थना के विषय में तुम बहुत दिनो से सुन रहे हो। उसका कुछ असर तुम्हारे हृदय पर पढा है या नही ? जब द्रव्य वस्तु-स्थूल–का प्रभाव भी अवश्य पडता है तो भाव का प्रभाव पडे बिना क्या रह सकता है ? अगर तुम उपदेश को अपने हृदय में स्थान दोगे तो उसका प्रभाव तुम्हारे जीवन पर अवश्य पडेगा और उससे तुम्हारा कल्याण भी होगा।

जानते हो भावना को अमृतमय बनाने और न-बनाने मे क्या अन्तर है ? कोई एक काम पापी पुरुष करे और वही काम कोई धर्मनिष्ठ करे, तो इन दोनो के काम में जो अन्तर हो, वही अन्तर भावना को अमृतमय बनाने न-बनाने मे है।

दोनो एक ही काम करते है, फिर भी पापी और धर्मी के कार्य मे अन्तर होता है। इस अन्तर का कारण, धर्मी पुरुष के अन्तर मे विद्यमान अन्तरमयी भावना ही है। जिनके हृदय-रूपी झरने से भक्ति और अमृत भावना का प्रवाह निरन्तर प्रवाहित होता रहता है, उनके नेत्रो की ओर देखो, उनका मुँह देखो, उन की प्रत्येक चेष्टा का दृष्टिपात करो। फिर धर्म से दूर-दूर भागने वाले की आँखे देखो, मुख देखो, प्रत्येक प्रवृत्ति देखो। तुम्हें स्वय दिखाई देने लगेगा कि दोनो मे कितना-क्या भेद है ?

तुम चाहो तो तुम्हारे हृदय से भी भक्ति और अमृत-मयी भावना का झरना फूट सकता है। पर तुम बाह्य प्रपचो मे इतने तन्मय हो रहे हो कि वह प्रशान्त प्रवाह दूसरे मार्ग पर चला गया है और तुम यह जानते ही नही हो। इस-लिए तुम अपनी वुद्धि को वहिमुख न होने देकर अन्तर्मुखी वनाओ। बस, तुम्हारे हृदय से भी भक्ति और अमृतमयी भावना का पीयूष-प्रवाह प्रवाहित होने लगेगा।

जिन ज्ञानियो ने अपनी वुद्धि अन्तर्मुखी वना ली है, उनका मुख देखो, तो जान पडेगा कि अमृतमयी भावना के प्रभाव मे उनका मुख कितना प्रफुल्लित है! कितना आह्लाद-मय है! कैसी अनुपम शाति उनके मुख पर किलोले कर रही है! उनके नेत्र देखो तो मालूम होगा, उनमे से कैसी अद्भुत जोति जग रही है! कैसा उल्लास उनमे से फूट पडता है! उनकी किसी भी चेष्टा का अवलोकन करो, विदित होगा कि उसमे जैसे अलौकिक सयतता, अगाध गभी-रता और निस्पृहता भरी हुई है!

दुनिया के लोग जिसे पर्वत के समान दु:ख अनुभव

करते है, उस भयकर दुख के माथे पर आ पडने पर भी, जिस दिव्य भावना का पवित्र त्राण पाकर ज्ञानी जन प्रसन्न एवं प्रमोदमय बने रहते है, मानो चिउटी भी शरीर पर नही रेंग रही है, उस भव्य भावना को खोजो। उसमे एक अद्-भुत सामर्थ्य है। वह भावना एक ऐसा अनोखा यन्त्र है, जिसमे घोर-से-घोर दुख भी सुख का रूप धारण कर लेता है! वह वेदना की विकृति को निकाल फेंकती है। इस भावना से भूषित भव्य पुरुष कैसा होता है? यह स्पष्ट करने के लिए एक प्राचीन ग्रन्थ मे आई हुई कथा उपयोगी होगी। यह कथा सुनकर तुम समझ सकोगे कि अमृतमयी भावना वाला पुरुष किस प्रकार स्व-पर का भेद भूल जाता है और विपदा की वेला कितना अधिक निश्चल और प्रसन्न रह सकता है।

मघा का वृत्तान्त×

मगध देश के एक गाँव मे एक किसान के घर पुत्र का जन्म हुआ। पुत्र का जन्म मघा नक्षत्र मे हुआ था, अतएव उसका नाम भी 'मघा' रखा गया। जैन साहित्य मे आये हुए उल्लेख से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल के लोग उसी नक्षत्र के आधार पर नाम रखते थे, जिस नक्षत्र मे बालक का जन्म होता था। आज नाम रखने की प्रथा और ही प्रकार की चल पड़ी है, पर पहले ऐसी प्रथा नही थी।

मघा पूर्व जन्म के विशेष सस्कार लेकर जन्मा था। उसकी आकृति-प्रकृति को परखने वाले लोग कहा करते—

× बौद्ध जातक कथा।

वालक अत्यन्त होनहार है । भविष्य में उसके द्वारा कोई उत्तम कार्य होगा । आकृति पूर्व-जन्म के सस्कारो की भव्यता का परिचय देती है । कहावत भी है– 'पूत के पाव पालने मे ही दिख जाते है ।' तथा 'होनहार विरवान के होत चीकने पात ।' यह कहावतें तो पूत के लक्षण पालने में परख लिये जाने की बात कहती हैं, पर वास्तव में तो जब पुत्र माता के गर्भ मे होता है, तभी उसके लक्षण परखे जा सकते है।

जैसे चन्द्रमा और कमल को देखकर हृदय खिल-सा उठता है, उसी प्रकार बालक मघा को देखकर सव लोगों को आनन्द होने लगा । वालक को देखकर भविष्य-वेत्ता कहने लगे—जनता जिस तत्व से अनभिज्ञ है, यह वालक वह तत्व सवको समझाएगा ।

मघा की वाल-क्रीडा उसके सस्कारो के अनुसार समाप्त हुई । वह कुछ वडा हुआ । अव वह पहाड, चन्द्र, सूर्य, नदी, सरोवर, वृक्ष आदि निसर्ग की रचना देखकर आनन्द अनुभव करने लगा ।

ज्ञानी और अज्ञानी के वीच यह एक महान् अन्तर है कि अज्ञानी जिन पदार्थों को अपने विनोद और आमोद-प्रमोद का साधन समझता है, ज्ञानी उन्ही पदार्थो को अपनी जीवन-साधना का कल्याणकारी साधन मानते हैं । किसी झरने का झर्-झर् शब्द सुनकर साधारण आदमी उसे विनोद का कारण मानकर थोडी देर खुश हो लेता है । परन्तु ज्ञानी जन उसी ध्वनि को सुनकर गभीर विचार करते हैं । वे सोचते हैं—'यह झरना, मेरे आने से पहले ही झर्-झर् ध्वनि कर रहा था, इस समय भी यही ध्वनि कर रहा है और जव मैं यहाँ से चल दूगा तव भी इसका यह नाद

निरन्तर जारी रहेगा। यह झरना न किसी की निन्दा की परवाह करता है, न प्रशसा की, यह तो इसी प्रकार सगीत करता हुआ सागर मे समा जाता है। एक ओर मैं हूं, मनुष्य प्रकृति का राजा! जो जरा-सी प्रशसा सुनकर फूलकर कुप्पा हो जाता हू और तनिक-सी निन्दा सुनते ही ज्वालाएँ उगलने लगता हू!' ज्ञानी-जन प्रकृति के प्रगाढ परिचय से ऐसा पाठ सीखते हैं।

मघा भी प्रकृति की पाठशाला मे ऐसा पाठ पढने लगा। विशाल सरिताएँ देखकर वह सोचने लगता- 'यह गगा-यमुना आदि नदियाँ कह रही हैं— हम पहाड़ मे से निकल कर समुद्र से मिलने जा रही हैं। मार्ग में हमे जितनी गदगी मिलती है, उसे अपने में मिलाकर अपना-सा रूप प्रदान कर देती हैं। गदगी से मिलकर हम स्वय गदी नही बनती, वरन् गदगी को ही अपनी पवित्रता दान कर अपनी-सी बना लेती है अर्थात् गदगी भी हमारे ससर्ग से पवित्र बन जाती है।'

सुना है, बनारस और कलकत्ता आदि शहरो की गटरें गगा नदी मे उतारी गई हैं। गगा नदी इन गटरो की गदगी को अपने पावन जल मे स्वच्छ बनाकर अपने मे समाविष्ट कर लेती है। महापुरुषो का स्वभाव भी ठीक ऐसा ही होता है। 'गदा' मनुष्य भी उनके ससर्ग से 'वदा' बन जाता है। 'गदा' के ससर्ग से वे स्वय गदे नही बन जाते, वरन् उस गंदे को ही अपनी पवित्रता रूपी पानी से 'वदा' बना देते हैं।

मघा ने प्रकृति से इस प्रकार की अनेक शिक्षाएँ प्राप्त की। मानो प्राकृतिक रचना ही उसकी पाठशाला बन गई। आज तो शिक्षा पाने के लिए हाई-स्कूल—कॉलेज आदि शालाएँ

खुल गई है, पर यहाँ जीवन-शिक्षा मिलती है या नहीं, इस बात की जाँच-पडताल करने की किसे पडी है ?

प्रकृति मे शिक्षा पाकर मघा ने निश्चय किया—जैसे प्रकृति अपना कर्त्तव्य निरन्तर पालन करती रहती है, वह कर्त्तव्य-पालन में एक दिन भी भूल नही करती, इसी प्रकार मैं भी अपने कर्त्तव्य का अप्रमत्त भाव से पालन करूँगा।

इस प्रकार निश्चय करता हुआ मघा बडा हो गया। वह अपने हाथ में झाड़ू लेकर अपना और अपने पडौसियों का आँगन झाड-बुहार कर साफ-सुथरा कर दिया करता। मघा, यह काम किसी की जोर-जबरदस्ती से नही, निष्काम भावना से करता।

मान लीजिए, नगर मे जाने के दो मार्ग हैं—एक गदा है, दूसरा साफ है। तुम साफ रास्ते से जाना पसद करोगे, पर जिन्होने उसे साफ किया है उन्हे पसद नही करोगे—उनसे घृणा करोगे ! यह कितनी बडी विडम्बना है !

मघा किसी आशा मे प्रेरित होकर नही, पर निष्काम भाव-से अपना और अपने पडौसी का आँगन साफ करता था। मघा के इस कार्य से उसके घर वाले आग-बबूला हो उठते और उसे उलहना देते। इतना ही बस न था। कोई-कोई अपढ घर वाला तो उसे थप्पड भी जड देता। यह सब होने पर भी मघा अपने कर्त्तव्य मे तन्मय रहता और प्रकृति से पाई हुई शिक्षा की परीक्षा हो रही है, यह मान-कर सभी कष्टो को शान्तिपूर्वक सह लेता। प्रारभ मे तो वह अपना और अपने पडौसी का ही आँगन साफ करता था, पर ज्यो-ज्यो उसकी शक्ति का विकास होता गया,

त्यो-त्यो उसने अपना कार्य-क्षेत्र भी बढा दिया।

आजकल लोगों की शक्ति का अधिकांश तो मानसिक चिन्ताओ से नष्ट हो जाता है। आत्मा में अनन्त शक्ति है, पर लोग उस शक्ति को विकसित करने का मार्ग भूल गये हैं, और इसी कारण वह शक्ति दब गई है। इसके अतिरिक्त, इस युग में आराम के जितने साधन प्रस्तुत हुए है, उनसे उतना ही आत्मिकशक्ति का ह्रास हुआ है। मोटर, वायुयान आदि साधनो नें तुम्हारी शक्ति का अपहरण किया है। तुम रेडियो सुनना पसद करते हो, पर उसे सुनते-सुनते अपने स्वर को भी भूल गये हो!

मघा की शक्ति ज्यो-ज्यो बढती गई, त्यों-त्यो वह अधिक विस्तृत कार्य करने लगा। लोग आध्यात्मिकता के नाम पर क्रिया की अवहेलना करते हैं, परन्तु सच्चा ज्ञान वही है जिसमे सक्रियता हो। मघा को जो ज्ञान था, वह उसके अनुरूप कार्य भी करता था। मघा कहने की अपेक्षा कर-दिखाने मे विश्वास करता था। गली-कूचो में पडे हुए कचरे को वह उठाता और बाहर फेंक आता था। गलीच जगह को साफ कर देता था। कई बार गलियो मे रहने वाली स्त्रियाँ, साफ की हुई जगह मे कूडा-कचरा फेंक देती थी और मघा उसे उठा कर बाहर डाल आता था। ऐसा करते समय मघा को जरा भी क्रोध न आता था। उल्टे, वह समझता कि यह स्त्रियाँ मेरे कार्य मे वेग ला रही है। स्त्रियाँ मघा के इस मूक और निःस्वार्थ सेवा-भाव को देख-कर लज्जित हो जाती और दुबारा ऐसा अनुचित कार्य न करती। उनमे से कोई-कोई तो उसके कार्य में हाथ वँटाने लगी।

संभव है आजकल की स्त्रियो को मघा का यह कार्य पापजनक प्रतीत होता हो, पर इससे उनका धर्म-विषयक अज्ञान ही ध्वनित होता है। कचरा बाहर न फेंकना और उसमें जीवो की उत्पत्ति होने देना अहिंसा धर्म की दृष्टि से उचित नही कहा जा सकता। अहिंसा धर्म तो क्षुद्र जीवो की उत्पत्ति न होने देने की हिदायत करता है। यद्यपि यह जीव कर्मवश उत्पन्न होते हैं, पर मनुष्यो मे विवेक-बुद्धि है, अत गदगी इकट्ठी करके उसमे क्षुद्र जीव उत्पन्न न होने देने का विवेक रखना चाहिए।

मघा ज्यो-ज्यों अपना कार्य-क्षेत्र बढाता गया त्यों-त्यों उसकी निन्दा का क्षेत्र भी बढता चला गया। जहाँ कही लोगों की टोली जमा होती वही मघा की निंदा होने लगती। लोग निंदा से घबराते है। अगर निंदा से घबराहट न हो तो वह पौष्टिक पदार्थ की तरह शक्ति प्रदान करती है। मघा निंदा से जरा भी विचलित नही होता था। वह अपने विकास मे निंदा को भी एक साधन ही समझता था। अपनी निंदा सुनकर सामान्यत लोगों को एक प्रकार का आवेश आ जाता है। ज्ञानी-जन इस आवेश का सदुपयोग कर लेते हैं और अज्ञानी उसका दुरुपयोग करते हैं।

लोगो मे होती हुई अपनी निंदा सुनकर मघा सोचता—अब मेरे काम की कद्र हो रही है। ऐसा सोचकर वह नया उत्साह और नई स्फूर्ति प्राप्त करता। घबराहट उसके पास तक न फटकने पाती।

मघा की निंदा सुनकर वहाँ के दो नवयुवकों ने आपस मे विचार किया—'क्यों मघा की निंदा की जाती है ?

उसने कौनसा निन्दनीय दुष्कर्म किया है ? क्या वह मदिरा पान करता है ? वेश्यागमन करता है ? जुआ खेलता है ? वह क्या चिलम या हुक्का पीता है ? (वर्तमान युग की भाषा में) क्या बीडी-सिगरेट पीता है ? या होटलो में जाकर चाय और सोडा-लेमन डकारता है ? मघा इनमे से किसी भी व्यसन का सेवन नही करता। इसके अतिरिक्त और कोई बुराई भी उसमें नही पाई जाती। फिर लोग क्यो उसे बदनाम करते है ? इस गाँव के सभी लोग तो मघा के निंदक हैं, फिर किसके सामने उसके सत्कार्य की प्रशसा की जाये ? सारा गाँव मघा के कार्य को घृणा की दृष्टि से देखता है, तो देखता रहे, मगर उसका कार्य वस्तुत. लोकोपयोगी है और इसलिए उसके कार्य को वेग अवश्य मिलना चाहिए।"

इस प्रकार विचार कर दोनों नवयुवक मन-ही-मन मघा की सराहना करने लगे। एक नवयुवक ने दूसरे से कहा—भाई इस विषय मे तुम्हारा और मेरा मन एक है और एक मन होने से हम ११ के समान बन गये हैं। यदि हम दोनो मघा के साथ मिल जाएँ तो एकसौ ग्यारह के बराबर कार्य कर सकेंगे। अगर तुम अन्त करण से मघा के कार्य की सराहना करते हो, तो उस सराहना को वचन तक की सीमित नही रखना चाहिए। चलो मघा के साथ हम लोग मिल जाये और अपने अन्त.करण की भावना एव वचन को क्रिया का रूप प्रदान करें।

संसार में ऐसे लोगो की कमी नही है जो किसी कार्य की प्रशसा में 'वाह ! वाह !' के नारे लगाते हैं और जब वही कार्य सिर पर आ पडता है तो एक ओर खिसक जाते

हैं। इस प्रकार की दुरगी नीति से कोई भी कार्य सिद्ध नही हो पाता। अतएव हमारी प्रामाणिकता का यह तकाजा है कि हम जिस कार्य को हृदय से अच्छा समझे उस कार्य को क्रिया में उतारने का हृदय से प्रयास करें। दूसरो को खुश करने के लिए मुँह से वाह-वाह करना कार्यकर्त्ताओं को और अपने अन्तकरण को छलने की चालाकी है। चालाकी से दुनिया खुश हो सकती है, परमात्मा नही।

दूसरे नवयुवक ने उत्तर देते हुए कहा--मघा के साथ मिलने की क्या आवश्यकता है ? वह जो कार्य कर रहा है, वही कार्य हम लोगो को भी आरभ कर देना चाहिए।

पहला युवक--तो क्या मघा अपना गुरु बनेगा ?

दूसरा युवक---बेशक !

पहला युवक---सुनते है, गुरुपद का अधिकारी वही हो सकता है जिसने घर-द्वार त्याग दिया हो और जो भिक्षा-वृत्ति करके जीवन-निर्वाह करता हो। मघा ने तो अभी घर-द्वार नही त्यागा है। इस अवस्था मे उसे गुरुपद पर किस प्रकार स्थापित किया जा सकता है।

दूसरा युवक---अगर हमें गृह-त्याग कर निवृत्ति मार्ग पर चलना हो तो गृह त्यागी---अनगार पुरुप को ही गुरु बनाना चाहिए। जब हम प्रवृत्तिमय जीवन व्यतीत करना चाहते है तो मघा के समान सत्य प्रवृत्ति करने वाले गुरु की ही आवश्यकता है। मघा जैसे सत्पुरुप को गुरु बनाने से ही, 'प्रवृत्ति' करते हुए भी अन्तरात्मा को पवित्र मार्ग पर लगाया जा सकता है।

इस प्रकार विचार-विनिमय करके दोनो युवक मघा

के पास आये। मघा उस समय सफाई के काम मे लगा था। दोनो युवको ने मघा को प्रणाम किया। विनीत भाव मे मघा ने उत्तर दिया— "भाइयो, आप लोगो ने मुझ मे ऐसा क्या पाया है कि आप मुझे प्रणाम करते है? मैं एक साधारण मनुष्य हू। मुझे तो तन ढँकने को पूरे कपडे भी नसीब नही होते। मुझ जैसे गरीब को आप किसलिए नमस्कार करके आदर दे रहे हैं?"

मघा की इतनी अधिक नम्रता देख दोनो युवक चकित रह गये और भीतर-ही-भीतर उसकी निरभिमानता की प्रशसा करने लगे।

गाँधीजी भी थोडे और सादे वस्त्र पहनते है और तुम कीमती कपडे पहनते हो। फिर भी तुम उनका कितना अधिक आदर करते हो? उनका जो आदर-सत्कार तुम करते हो सो उनका महत्कार्य देखकर ही। इससे यह प्रकट होता है कि तुम्हारा अन्तरात्मा तो स्वभावत. पवित्रता चाहता है, पर ऊपरी ढोग उसकी भावना को दबा देता है, कुचल डालता है। वस्तुत लज्जा-निवारण के लिए वस्त्र पहने जाते हैं। पर आज यह मूल उद्देश्य भुला दिया गया है। अब वस्त्रो मे शृङ्गार को महत्व दिया जाता है। वस्त्र लज्जा की रक्षा के लिए पहनने चाहिए, यह उद्देश्य क्या आजकल के स्कूलों और कॉलेजो मे समझाया जाता है?

मघा ने दोनो युवको को लक्ष कर कहा—भाइयो, जैसा मेरा काम है वैसी ही मेरी पोशाक है। कीमती कपडे पहन कर मै अपना काम करता तो मेरा काम पार ही न पड़ता। कारण यह है कि कीमती कपड़े आलस्य की वृद्धि

करते है, और आलस्य बढाने वाले बहुमूल्य वस्त्र कार्यकर्त्ताओ को नही सोहते। इसी कारण मैंने अपनी पोशाक, अपने कार्य के अनुरूप ही रख छोड़ी है।

मघा की यह सीधी और सच्ची बात सुनकर दोनो युवक मित्र अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने प्रसन्नता के साथ मघा से कहा—'हम दोनो आपके शिष्य बनने आये हैं। हम आपकी आज्ञा के अनुसार ही वर्त्ताव करेंगे।'

मघा ने कहा—भाइयो, आप मेरे शिष्य बनना चाहते हैं, पर मेरे पास क्या धरा है? मैं ऐसी भी स्थिति में नही हूं कि आपको खाने के लिए रोटी का टुकड़ा दे सकू। मेरे घर वाले बडी मुश्किल से मुझे भोजन देते हैं। वे कहते है—'काम तू औरो का करता है और खाने को यहाँ आ धमकता है।' पर मैं उनके इन कटु वाक्यो की परवाह नही करता। मैं सोचता हूं—घर वाले मुझे रुखी-सूखी रोटी के साथ यह वाक्य रूपी घी भी दे रहे हैं। जब मैं अपने घर का काम करता हू तो मेरे घर वालो को खुशी होती है। वे सिर्फ दूसरो का काम कर देने से नाराज होते हैं। पर मुझे अपना और पराया दोनो का काम करना आनन्द-प्रद मालूम होता है। मेरे और मेरे घर वालो के विचार में यही वडा भारी भेद है। हाँ, तो मैंने अपनी स्थिति साफ-साफ आपके सामने रख दी है। क्या फिर भी आप मेरे शिष्य बनना पसद करते हैं?

युवको ने कहा - आपने हृदय खोलकर जो बाते कही है, उन्हें हम लोग सुन-समझ चुके हैं। हम आपके चरणो का अनुसरण करना चाहते हैं और इसी कारण आपके शिष्य बनना चाहते हैं।

यहाँ राजकोट में श्रावकों के कुछ घर तो ठीक हैं परन्तु कुछ घर अत्यन्त गदे हैं। जब मैं श्रावको के गदे घर देखता हूं तो सोचने लगता हूं—क्या सच्चे-विवेकी श्रावक का घर गदा हो सकता है ? जो गदगी फैलाता है वह दोषी नही, और जो गदगी साफ करता है वह दोषी कहलाये—नीच गिना जाये ! मैं पूछता हूं—यह कहाँ का अनोखा न्याय है ? वास्तव में अहिसा धर्म को ठीक तरह न समझने के कारण ही घर मे गदगी रहती है। जिनके घरो में आटा, दाल या इसी प्रकार की कोई अन्य खाद्य वस्तु सडी-गली पडी रहती है, और उसमें जीव-जतु उत्पन्न होते रहते हैं, उन लोगो ने अहिसा धर्म के मर्म को समझा ही नही है। इस कथन में जरा भी अत्युक्ति नही है।

जो लोग अपना ही घर साफ-सुथरा नही रख सकते, वे दूसरो के घरो की क्या खाक सफाई करेंगे ?

कुछ लोग कहते हैं—जैनधर्म तो निवृत्ति-प्रधान धर्म है, तब ऐसी प्रवृत्ति मे किसलिए पडना चाहिए ? बात सही है। जब ससार से निवृत्त हो जाओ, तब निवृत्ति-धर्म का पालन करो, यह उचित ही है, पर जहाँ तक तुम ससार से निवृत्त नही हुए हो, प्रवृत्ति में पडे हुए हो, वहाँ तक पराधीन रहने और परावलम्बन का पोषण करने की आज्ञा जैनधर्म नही देता। जैन शास्त्र यह नही बतलाता कि तुम प्रवृत्ति में पडे रहकर भी पराधीन बनो। इसके अतिरिक्त एक बात और ध्यान मे रखनी चाहिए। जैनधर्म निवृत्ति प्रधान तथान तो है पर एकान्त निवृत्ति रूप नही है। जो प्रवृत्ति, निवृत्ति मे साधक हो और बाधक न हो, उसका जैनधर्म में एकान्त निषेध नही है। जैनधर्म अनेकान्त-पोषक

धर्म है ।

भगवान् महावीर ने गृहस्थधर्म का जो विधान किया है, उसके अनुसार आचरण करने से गृहस्थ के घर मे अशुचि या अपवित्रता को अवकाश ही नही है । पर आजकल कुछ लोग, गृहस्थ होते हुए भी सूक्ष्म हिंसा का गहरा विचार तो करते है, पर परम्परा से होने वाली स्थूल-हिंसा की ओर ध्यान भी नही देते । जो स्थूल-हिंसा परम्परा से मनुष्य-हिंसा तक का रूप धारण कर लेती है, उसे जब सरकारी कानून से बाध्य होकर मानते ही हो तो क्या यह बेहतर न होगा कि उसे धर्म का कानून समझकर मानो ? स्वेच्छा से अहिंसा का पालन करना क्या श्रेष्ठतर नही है ?

मघा ने युवको से कहा—'अगर आप निखालिस दिल से मेरे शिष्य बनना चाहते हैं तो आपको मेरी आज्ञा का अनुसरण करना होगा । आप यह स्वीकार करते है ?'

युवको ने अपनी हार्दिक स्वीकृति जताई ।



जन-सेवा

(२)



प्रार्थना

अरहनाथ अविनाशी, शिव-सुख लीधो ।
विमल विज्ञान विलासी, साहब सीधो ॥१॥

तू चेतन भज अरहनाथ ने, ते प्रभु त्रिभुवनराया;
तात 'सुदर्शन' 'देवी' माता, तेहनो नंद कहाया ॥
साहब०

श्री अरहनाथ भगवान् की यह प्रार्थना है। जो लोग परमात्मा की प्रार्थना में श्रद्धा रखते है और जो प्रार्थना की शक्ति को स्वीकार करते हैं, उनके लिए प्रार्थना एक अपूर्व वस्तु है। प्रार्थना विश्वास की वस्तु है। उस पर यदि विश्वास रखा जाये तो उससे अपूर्व वस्तु की प्राप्ति होती है। यदि प्रार्थना मे विश्वास न हुआ तो वही एक प्रकार का ढोंग बन जाती है। उससे फिर अपूर्व वस्तु की प्राप्ति होना संभव नहीं है। कल्प-वृक्ष मे कौन-सी वस्तु नही रही हुई है? उसमें रहती तो सभी वस्तुएँ है पर नजर एक भी नही आती। फिर भी कल्प-वृक्ष के नीचे बैठ-

कर जिस वस्तु की कल्पना की जाती है, वही वस्तु मिल जाती है। इस प्रकार कल्प-वृक्ष स्वय कल्पना (चिन्ता) के आधार से वस्तु प्रदान करता है। यदि कल्पना न की जाये तो उस वस्तु की प्राप्ति नही हो सकती। इसी प्रकार पर-मात्मा की प्रार्थना मे निहित शक्ति भले ही दृष्टिगोचर न हो, पर यदि उस पर विश्वास किया जाये तो उससे समस्त मनोरथ पूरे हो सकते हैं। यही कारण है कि ज्ञानीजन परमात्मा की प्राथना के सामने कल्प-वृक्ष या चिन्तामणि रत्न की भी परवाह नही करते। उनकी दृष्टि मे परमात्मा की प्रार्थना के मुकाबिले उसकी कुछ भी कीमत नही है। जब हमारे भीतर परमात्मा की प्रार्थना पर ऐसा प्रगाढ विश्वास पैदा हो जायेगा और प्रार्थना के समाने कल्प-वृक्ष और चिन्तामणि भी तुच्छ प्रतीत होने लगेंगे, तब हमे स्पष्ट मालूम हो जायेगा कि परमात्मा की प्रार्थना मे कैसी अद्-भुत शक्ति विद्यमान है। अत परमात्मा की प्रार्थना में दृढ विश्वास रखो। हाँ, एक बात स्मरण रखनी चाहिए और वह यह है कि जब किसी सासारिक पदार्थ की इच्छा को पूर्ण करने के लिए परमात्मा की प्रार्थना की जाती है, तब वह सच्ची प्रार्थना नही वरन् ऊपरी ढोंग बन जाती है। इस विषय में भक्त केशवलाल ने ठीक ही कहा है—'परमा-त्मा की प्रार्थना में पन्द्रह आना मन लगा हो और केवल एक आना मन किसी सासारिक पदार्थ की पूर्ति मे लगा हो, तो वह प्राथना भी ढोंग रूप ही है।'

कहा जा सकता है कि किसी वस्तु की आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए अथवा किसी कष्ट को निवारण करने के लिए परमात्मा की प्रार्थना का उपाय किया जाये तो

क्या बुरा है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि, जब किसी वस्तु की आवश्यकता खडी हो या कोई संकट सिर पर आ पडे तो इस प्रकार विचार करना चाहिए - परमात्मा की प्रार्थना न करने के कारण ही ऐसी अवस्था उत्पन्न हुई है। इसीलिए मुझे परमात्मा की प्रार्थना में अपना मन लीन रखना चाहिए ।

इस प्रकार सिर पर आये हुए संकट को प्रार्थना मे प्रवृत्त होने का साधन बना लेना चाहिए । जब निष्काम-भावना से तुम परमात्मा की प्रार्थना में तन्मय होना सीख लोगे, तो सकट स्वयमेव तुम से दूर भागते फिरेंगे ।

किसान को घास और भूसे की भी आवश्यकता पडती है, पर वह घास-भूसे के ही लिए खेती नही करता । उसका उद्देश्य तो धान्य की प्राप्ति करना होता है। फिर भी धान्य के साथ घास-भूसा भी आनुपगिक रूप मे उसे मिल ही जाता है । इसी प्रकार परमात्मा की प्रार्थना करते समय ऐसा विचार करना चाहिए कि ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए मैं प्रार्थना करता हूं; क्योकि प्रार्थना द्वारा भगवान् का अनुग्रह प्राप्त करने मे ही आत्मा का कल्याण समाया हुआ है । इस प्रकार की उन्नत भावना रखने से अन्न के साथ जैसे घास-भूसा आप ही मिल जाता है, उसी प्रकार सासारिक पदार्थ भी अनायास ही मिल जाते हैं । लेकिन संसार की समस्त वस्तुओ को पा लेने की अपेक्षा आत्मा का कल्याण-साधन श्रेष्ठतर है । अतएव आत्मिक निर्मलता के लक्ष्य से ही परमात्मा की प्रार्थना करनी चाहिए । अगर प्रार्थना द्वारा आत्मा का हित-साधन हो सकता है तो तुच्छ चीजो को पाने के लिए उस प्रार्थना का उपयोग करना,

चने के वदले रत्न देने के समान मूर्खता है। आत्म-कल्याण की अभिलाषा रखने वालों को ऐसी मूर्खता कदापि नही करनी चाहिए ।

परमात्मा की प्रार्थना, किसी भी स्थान पर और किसी भी परिस्थिति मे की जा सकती है । पर प्रार्थना मे आत्म-समर्पण की अनिवार्य आवश्यकता रहती है । प्रार्थना करने वाला अपनी व्यक्तिगत सत्ता को भूल जाता है। वह परमात्मा के साथ अपना तादात्म्य-सा स्थापित कर लेता है । वस्तुत. आत्मोत्सर्ग के बिना सच्ची प्रार्थना नही हो सकती । इसीलिए भक्त-जन कहते हैं—

तन धन प्राण समर्पो प्रभु ने, इन पर वेगि रिझास्यां राज ।

अर्थात् परमात्मा की प्रार्थना करते मैं तन, धन और प्राण भी अपण कर दूगा ।

इस परम उज्ज्वल भावना के साथ तुम भी परमात्मा की प्रार्थना करो तो निस्सन्देह तुम्हारी आत्मा का कल्याण होगा । परमात्मा की प्रार्थना एक ऐसी वस्तु है जो सव को, सव समय में सुलभ है । अतएव हमें इस सुलभ वस्तु का सदुपयोग कर लेना चाहिए और अपने जीवन में ताने-वाने की तरह वुन लेना चाहिए । ऐसा करने से जल्दी हो या देर मे, पर आत्म-जागृति अवश्य होगी ।

जव कोई मनुष्य तीन या चार वजे उठने का दृढ निश्चय करके सोता है तो, भले ही वह देरी से सोए, फिर भी निश्चित समय पर वह जाग जाता है । यह अनुभव तुमने भी कभी किया होगा । हम मे ऐसी कौन-सी शक्ति है जो भर नीद मे भी नियत समय पर हमे जगा देती है !

आत्मा की इस शक्ति को जागृत करने के लिए दृढ निश्चय पूर्वक परमात्मा की इस प्रकार प्रार्थना करो :—

क्रोड़ जतन करता नहीं पामे, ऐवो मोटी माम।
ते जिन-भक्ति करीने लहिए, मुक्ति अमोलक धाम॥

अर्थात्—जो मुक्ति अन्य अनेक उपाय करने पर भी प्राप्त नही होती, वह परमात्मा की प्रार्थना द्वारा प्राप्त हो सकती है।

जिन्हे ऐसी बातो पर श्रद्धा ही नही है उनके लिए यह बात निरथक हो सकती है, पर जो प्रार्थना में निश्चल श्रद्धा रखते हैं उनके लिए यह सोलह आने सत्य है।

'परमात्मा की प्रार्थना करने से आत्म-शुद्धि होती है', यह कथन तो तभी ठीक हो सकता है, जब परमात्मा की सत्ता की प्रतीति हो जाये। पर उसकी प्रतीति किस प्रकार हो सकती है ? परमात्मा तो अगम्य और इन्द्रिय तथा मन से भी अगोचर है। ऐसी अवस्था मे उसका अस्तित्व कैसे समझा जा सकता है ? इस प्रश्न का स्पष्टीकरण करने के लिए मैं स्वानुभव की एक बात बताता हू।

जिस प्रान्त मे मेरा जन्म हुआ, उसमे खूब वर्षा होती है। वहाँ वर्षा ऋतु में आकाश बादलो से प्राय सदैव ढंका रहता है। कभी-कभी तो यह जानना कठिन हो जाता है कि सूर्य अस्त हो गया या नही ? किन्तु पोयणा का फूल देखकर मालूम किया जा सकता था कि सूर्य अस्त हो गया है। उस प्रान्त (मालवा) मे पोयणा नामक एक प्रकार का फूल होता है। वह फूल सूर्य के उदय होने पर खिलता है और अस्त होते ही मुरझा जाता है। अतएव उसके खिलने

और मुरझाने से सूर्य के उदय-अस्त का अनुमान किया जाता है ।

यहाँ विचारणीय बात तो यह है कि एक फूल को तो सूर्य के उदय और अस्त का भान हो जाता है और हम जैसे मनुष्यो को उसका पता तक नही चल पाता, यह हमारी कितनी बडी अपूर्णता है ? एक साधारण फूल उदय-अस्त को जान लेता है तो क्या हम लोग न जान पाते होंगे ? जान तो जरूर लेते होगे, पर ससार की दूसरी अनेक झझटो मे पडे रहने के कारण वह जानी-समझी हुई बात भी भुला दी जाती है । हमारा ध्यान जब दूसरी ओर अति-अधिक व्याप्त रहता है तव अपने शरीर पर लगी हुई चोट को भी हम भूले रहते हैं । यही कारण हैं कि हमें ऐसे प्रश्न पूछने पडते है कि हमे परमात्मा की प्रतीति किस प्रकार हो सकती है ? वास्तव मे ऐसे प्रश्नों के उद्‌भव का कारण आत्मा में विद्यमान शक्ति का अज्ञान है । परमात्मा की प्रतीति करने के लिए आत्मा की शक्ति को पहचानने का प्रयत्न करना चाहिए । प्रयत्न करने पर भी अगर परमात्मा की प्रतीति और अनुभूति न हो तो, जैसे पोयण के फूल से सूर्य के उदय-अस्त का पता लगाया जाता है, उसी प्रकार अपनी विशिष्ट आत्म-शक्ति द्वारा परमात्मा की अनुभूति करने वाले महात्मा पुरुषो के कथनानुसार आत्म-शक्ति सपादन कर परमात्मा को पहचानने का प्रयत्न करना चाहिए । तुम्हे प्रतिदिन आध्यात्मिक एव व्यावहारिक बाते इसीलिए सुनाई जाती हैं कि तुम परमात्मा की अनुभूति कर सको ।

कुछ लोगो की यह भ्रमपूर्ण धारणा है कि अगर वे आध्यात्मिकता मे पड जायेंगे तो उनका व्यवहार उलट

जायेगा । पर वास्तव मे यह मान्यता भूल-भरी है ।

आध्यात्मिकता का आश्रय लेने से तुम्हारा व्यवहार कदापि नही बिगड़ सकता । हाँ, एक बात अवश्य है कि आज व्यवहार के नाम पर तुम जो घमाचौकडी मचाते हो, उसे फिर तुम्हारे व्यवहार मे स्थान न मिल सकेगा । रोटी पकाते समय अग्नि इतनी अधिक तेज नही रखी जाती कि रोटी जलकर राख हो जाये । साथ ही इतनी मद भी नही रखी जाती कि रोटी सिकने ही न पाए । उस समय आग ऐसी मध्यम कोटि की रखी जाती है कि रोटी न तो जल सके, न कच्ची बनी रहे । इसी प्रकार आध्यात्मिकता को मे स्थान दिया जाये, तो जीवन-व्यवहार ऐसे मध्यम माग पर व्यवस्थित रूप से चलता है कि न तो जीवन मे छैला की तरह उडाऊगीरी आने पाती है, न कृपण के समान कृपणता को ही स्थान मिल पाता है । उस अवस्था मे जीवन मध्यम स्थिति मे रहता है । अतएव इस भ्रम को निकाल डालना चाहिए कि जीवन-व्यवहार मे आध्यात्मिकता को स्थान देने से जीवन-व्यवहार ठीक तरह नही निभता । आज-कल कुछ लोग आध्यात्मिकता की ओट में कृपण वन जाते हैं । जो लोग तुच्छ और नगण्य वस्तु के भी ममत्व का परित्याग नही कर सकते, जिन्हे दिन-रात का और भक्ष्य-अभक्ष्य तक का विवेक नही और जो आध्यात्मिकता की ओट मे कृपणता का सेवन कर रहे हैं, कहना चाहिए कि वे लोग आध्यात्मिकता को वदनाम कर रहे है ।

आध्यात्मिकता कोई साधारण वस्तु नहीं है । गीता मे आध्यात्मिकता को सव विद्याओ मे प्रथम स्थान दिया गया है । जहाँ दूसरे के कल्याण के लिए छोटी-सी वस्तु का

भी त्याग नहीं किया जा सकता, वहाँ भला आध्यात्मिकता कैसे निभ सकती है ? जहाँ लोभ-दशा है वहाँ आध्यात्मिकता को स्थान नही मिल सकता। आध्यात्मिकता का स्थान वहाँ है जहा पर-कल्याण के लिये प्राणो का उत्सर्ग करने मे भी आनाकानी नही होती। राजा मेघरथ ने कबूतर की रक्षा के लिये शरीर-त्याग किया था। क्या उसमे आध्यात्मिकता नही थी ? निस्सन्देह मेघरथ मे आध्यात्मिकता थी और इसी कारण उसनें पर-कल्याण के लिये शरीर का त्याग किया था। उसे भलीभाँति ज्ञात था कि परोपकार के लिये आत्मसमपण करना ही सच्ची आध्यात्मिकता है। इससे यह स्पष्ट है कि जो अध्यात्म-निष्ठ होता है वह दूसरो के हित में अपना हित मानता है। पर-हित में स्वहित किस प्रकार समाया रहता है, इस बात को समझने के लिये मघा का वृत्तान्त बतलाया जाता है :—

मघा ने प्रकृति से यह पाठ सीखा था कि जो बात मुझे अनुकूल हो, वही दूसरो के लिए करनी चाहिए। भूतकाल और वर्त्तमान काल के अनेक उदाहरणो से यह स्पष्ट विदित होता है कि प्रकृति की पाठशाला मे जैसी सजीव शिक्षा मिल सकती है, वैसी अन्यत्र कही नहीं मिल सकती। ज्ञानियो ने विश्व को पुरुषाकार बतलाया है। अगर पुरुष की आकृति वाले इस विश्व का ध्यान किया जाये, तो आत्मा को अपूर्व आनद की प्राप्ति होती है।

प्रकृति के रहस्य का सूक्ष्म निरीक्षण किया जाये तो उसमें से आत्मा अपूर्व शिक्षा ग्रहण कर सकता है। छोटे-से फूल की पांखडी मे कौन-सा तत्व समाया हुआ है, उसकी किस प्रकार की रचना है और उसमे हम क्या सीख सकते हैं,

इस प्रकार यदि गहरा विचार किया जाये तो हमारे आश्चर्य का ठिकाना न रहेगा ।

बडे-बड़े कुशल कारीगर विशाल और सुन्दर प्रासाद के निर्माण में जिस कौशल को अभिव्यक्त करते हैं, उनका वह कौशल भी फूल की पाँखडी की रचना की रमणीयता के सामने पानी भरता है ।

मघा प्रकृति की शिक्षा के अनुसार कार्य करने लगा। वह अडौस-पडौस वालो का आँगन भी साफ कर डालता और गाँव के गली-कूचे भी । गली की अनेक स्त्रियां मघा के इस कार्य की निन्दा करके ही नही अघाती थी, वरन् उसके काम में बाधा पहुँचाने के उद्देश्य से साफ की हुई जगह में कूडा-कचरा बिखेर देती थी । यह सब होने पर भी मघा सदैव एक-सा प्रसन्न-चित्त रहता और प्रसन्नता के साथ गदी जगह को दुबारा झाड देता था । वह सोचता-मेरी यह बहिने मुझ पर बड़ा ऐहसान कर रही है—मेरा उपकार कर रही हैं, जो घर के भीतर सडते हुए कचरे को बाहर फेंक कर मेरे कार्य मे सहायता पहुँचा रही है ।

जब तुम्हे कोई गाली दे तो तुम्हे भी ऐसा उज्ज्वल विचार करना चाहिए कि, इसके मुँह में गाली की जो गंदगी भरी थी, वह बाहर आ गई, यह बहुत अच्छा हुआ । इतने अश मे गाली देने वाले का मुँह शुद्ध हो गया, यह मेरे लिए प्रसन्नता की बात है ।

किसान खाद के रूप मे गदगी का सदुपयोग कर लेते हैं और उससे उत्तम उपज होती है । इसी प्रकार तुम भी आत्म-कल्याण के रूप मे गालियो का सदुपयोग कर सकते हो ।

निन्दा से घबराना मघा ने सीखा ही नही था। वह हमेशा अपने नियत कार्य में तन्मय रहता था। मघा की यह कार्य-प्रणाली देख दोनों युवक उसके शिष्य बनने को तैयार हुए। मघा ने उनसे कह दिया—मेरे पास खाने-पीने को कुछ भी नही है। हाँ, मेरे साथ काम करने मे तुम्हे लोक-निंदा का और गालियो का प्रसाद अवश्य मिलेगा और वह प्रसाद तुम्हे समताभाव से भोगना होगा। क्या तुम मेरे शिष्य बनकर निन्दा और गालियो का उपहार प्रेमपूर्वक स्वीकार करने के लिए तैयार हो ?

मघा का यह कथन सुन दोनो युवक आपस में कहने लगे— 'गुरु हो तो ऐसा हो, जो चेला मूडने के लिये दूसरे को झूठे प्रलोभन मे न डाले।' इस प्रकार विचार कर दोनो ने मघा से कहा--'आपका स्पष्ट कथन सुनकर शिष्य बनने की हमारी भावना अधिक बलवती हो गई है। कृपा कर अब हमे गुरु-मत्र सुनाइए और दीक्षा दीजिए।'

मघा ने कहा 'भाइयो, मैं पढा-लिखा तो हू नही, फिर तुम्हे क्या गुरु-मत्र सुनाऊँ !'

युवक—'पढे-लिखो के मत्र तो हमने बहुत बार सुने है। उन्हे सुनते-सुनते ऊबमे गये है। अब हमे आप सरीखे कर्त्तव्य-परायण व्यक्ति का मत्र सुनने की उत्सुकता है। अत. अपने कर्त्तव्य का मत्र हमे सुनाइए। बताइए, आपका शिष्य बन जाने पर हमें क्या कार्य करना होगा ? हम आपको यह विश्वास दिलाना चाहते है कि आपका कर्त्तव्य-मत्र ही अन्त तक हमारा जीवन-मत्र होगा।'

मघा-सुनो ! तुम्हे जो कुछ करना होगा वह जन-

लाता हूं। यद्यपि मैं पढा-लिखा नही हूं, मगर प्रकृति से मैंने यह शिक्षा ली है कि— 'जो काम अपने लिए अनुकूल हो वह दूसरो के लिए करना चाहिए और जो अपने लिए प्रतिकूल हो वह दूसरो के लिए भी नही करना चाहिए।' सक्षेप मे तुम्हे यह करना होगा :—

आत्मैपम्येन सर्वत्र सम पश्यति योऽर्जुनः

—गीता

अर्थात्—जो अपने लिए प्रियकर है वह दूसरो के लिए करना चाहिये। इस उपमा-प्रमाण से प्रत्येक कार्य करना चाहिए, यही ज्ञानियो का कथन है।

मघा बोला—प्रकृति से मैंने यह पाठ सीखा है। मुझे लगा— साफ-सुथरा रास्ता मुझे पसद है तो दूसरे लोग रास्ता साफ करें और मैं उस पर चलू, इसकी अपेक्षा क्या यही सगत और समुचित न होगा कि मैं स्वय रास्ता साफ करू! 'जो बात अपने लिए अनुकूल हो वह दूसरो के लिए भी करना' यह मेरी पहली शिक्षा है और 'ससार के समस्त प्राणियो को अपने समान ही समझना' यह मेरी दूसरी शिक्षा है। ऐसा नही होना चाहिए कि अपने लिए तो पाँच-पाँच दस गिने और जब दूसरो की वारी आवे तो ग्यारह गिनने लगें! ऐसा करने वाला आत्म-वचना तो करता ही है, साथ ही विश्वासघात भी करता है और अपनी आत्मा को अपराधी बनाता है। इसलिए जैसा व्यवहार तुम अपने लिए चाहते हो वैसा ही तुम दूसरो से करो। इसके अतिरिक्त अनिच्छनीय प्रवृत्ति नही करनी चाहिए। दूसरो पर जोर-जबरदस्ती करने से उन्हे कष्ट पहुँचता है। इसलिये ऐसी खराव प्रवृत्तियो से सदा बचते रहना। मान लो, तुम्हारे

पास दो कोट हैं। उनमे से एक फालतू है। अगर तुम्हारे सामने कोई गरीब आदमी सख्त सर्दी का मारा थर-थर काँप रहा हो, तो अपना फालतू कोट उसे दे देने की इच्छा तुम्हारे अन्त.करण मे उत्पन्न होनी चाहिए। अगर तुम इस अवस्था मे उसे अपना कोट नही दे सकते, तो यह समझा जायेगा कि तुम अब तक परायी पीड़ा को पहचान नही पाये हो। भोजन से तुम्हारा पेट ठसाठस भर गया हो, फिर भी बची हुई रोटी किसी गरीब को दे देने की भावना तुम्हारे हृदय में पैदा न हुई और रोटी सेंक कर या सुखा कर दूसरे दिन खाने की तृष्णा बनी रही, तो माना जायेगा कि अभी तुम दूसरे की आत्मा को अपनी आत्मा के समान समझने मे समर्थ नही हो सके हो।

मघा ने युवको से कहा - अगर तुम मेरे शिष्य बनना चाहते हो तो तुम्हे समस्त प्राणियो को आत्मा-तुल्य समझना होगा। इतना ही नही, तुम्हे सब प्रकार के दुर्व्यसनो से भी दूर रहना होगा, क्योकि व्यसन के नशे मे कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का भान नही रहता। अतएव सब प्रकार के मादक पदार्थों से तुम्हे बचना होगा। जो पदार्थ बुद्धि को भ्रष्ट करते हैं, वे सब मादक पदार्थ हैं। कहा भी है :—

बुद्धि लुम्पति यद्द्रव्य मदकारि तदुच्यते।

जिन पदार्थों को सूघने से, खाने से, पीने से बुद्धि भ्रष्ट या नष्ट होती है, वे सब मादक द्रव्य हैं। मादक कहे जाने वाले पदार्थों में ही मद हो, सो बात नही है, हृदय की भावना मे भी मद होता है। ग्रन्थो मे रावण को हजार विद्या वाला बतलाया गया है, फिर भी वह सीता को देख-

कर बे-भान हो गया । इस प्रकार भान भूल जाना हृदय का मद है । हृदय के इस मद से बचना अपेक्षाकृत अधिक कठिन होता है, पर तुम्हे इस मद से भी हमेशा बचते रहना होगा ।

आजकल के युवको में कितने ही ऐसे निकलेंगे जो पर-स्त्री को देखकर भान भूल जाते हैं । यही नही, राजा और महन्त कहलाने वाले भी वेभान हो रहे हैं। कथन का समर्थन करने के लिए उदाहरणो की कमी नही है ।

मघा ने युवको को कर्त्तव्य-बोध कराते हुए कहा – जिन पदार्थो के सेवन से कृत्याकृत्य का भान नष्ट हो जाता हो, ऐसे पदार्थों का सेवन न करना, यह मेरा गुरु–मत्र है। यह मत्र उङ्गलियों के पौरों पर गिनने या जाप करने के लिए नही है । इसे अच्छी तरह याद रखकर कार्य-रूप मे परिणत करना होगा । मैंने यह निवृत्ति का मत्र समझाया है । इसके साथ ही प्रवृत्ति का मत्र भी तुम्हे सीखना है । वह मत्र यह है –

'तुम्हे स्वामी बनकर नही, वरन् सेवक बनकर जन-समाज की सेवा करनी चाहिए । सेवा करते-करते अगर प्राणो का उत्सर्ग करना पड जाये तो वह भी प्रसन्नतापूर्वक करना चाहिए ।'

मघा ने जो शिक्षा वताई है, उसमे किसी भी धर्म या दर्शन का विरोध नही हो सकता । जो व्यक्ति अपना जीवन-व्यवहार इस शिक्षा के अनुसार चलाता है, वह निस्सन्देह स्व-पर कल्याण कर सकता है ।

मघा की इन तात्त्विक बातों को सुनकर युवक कहने

लगे—'ईश्वर कहाँ है, यह सोचते-सोचते हम थक गये, पर अब जान पडता है, वह आपके भीतर विराजमान है। आपके निर्मल अन्त'करण मे जिन उदार भावो का वास है, उन भावो मे ईश्वर का दिव्य दर्शन हो रहा है।'

तुम भ्रमण के लिए भले ही मक्का, मदीना, काशी या शत्रुजय जाओ, पर अगर हृदय के शुद्ध भावों को ओर दृष्टि न फेरोगे तो वहाँ जाना निरर्थक जान पडेगा। हृदय मे शुद्ध भावना को स्थान देना और सेवा को अपने जीवन का आदर्श बनाना, किसी भी तीर्थ से कम पवित्र नही है। जैसे सूर्यमुखी फूल द्वारा सूर्य के उदय-अस्त का पता चल जाता है, उसी प्रकार हृदय की भावनाओ से यह मालूम हो जाता है कि अपने हृदय मे ईश्वर बसता है या नही! कदाचित् तुम्हे अपनी आत्मा की और परमात्मा की प्रतीति न होती हो तो विशुद्ध भावनाओ के रग मे रँगे हुए, शृङ्गार से सर्वथा हीन किसी अस्थि-पिंजर को (किसी कृशकाय महात्मा को) देखो। तब तुम्हे ज्ञात हो जायेगा कि विशुद्ध भावनाओ में ही ईश्वर का निवास है।

मघा के दिल की बातें सुनकर दोनो युवक आश्चर्य के साथ आनन्द का अनुभव करने लगे। मघा के पैरो पकड़-कर, गद्‌गद् होकर बोले—'हमारे सिर पर आशीर्वाद का हाथ रखिए। हम लोग आपके शिष्य बनना चाहते हैं। हम प्रतिज्ञा करते है कि हमारी प्रवृत्ति आपके आदेश के अनुसार ही होगी।'

मघा खड़ा हुआ। दोनो को छाती से लगाया और अपने शिष्य के रूप मे स्वीकार कर लिया। इस प्रकार

मघा को दो मिले और मघा अब षट्-भुज (छह भुजा वाला हो गया ।)

ईश्वर का चतुर्भुज रूप माना जाता है । तुम भी विवाह-बधन मे बँधकर चतुर्भुज कहलाते हो । पर तुम वास्तव मे चतुर्भुज हो या चतुष्पद, यह भगवान् ही जाने। जो सच्चे स्त्री-पुरुष होगे, वे चतुर्भुज बनकर आत्म-कल्याण के साथ-साथ जगत् का भी कल्याण करेंगे ।

मघा को दो साथी मिले, पर इससे वह जरा भी आलसी न बना । वह अब पहले से भी अधिक काम करता था । उसे यह भली-भाँति ज्ञात था कि मै जैसा व्यवहार करूँगा, मेरे शिष्य भी मेरा अनुकरण करके वैसा ही व्यवहार करेंगे । ऐसा विचार कर वह आदर्श कार्य करता था। वह बहुत बार सोचा करता— 'हे प्रभो ! इन युवको के अन्त करण मे किसने प्रकाश की किरणे भरी है कि ये मेरे साथी बन गये हैं ? दयाधन ! जान पडता है, यह तुम्हारे असीम अनुग्रह का ही परिणाम है ।'

कुछ दिनो बाद पहले वाले दो युवको की तरह तीस युवक और मघा के शिष्य बन गये । अब कुल बत्तीस शिष्य और एक स्वय, इस प्रकार तेतीस जने हो गये । मघा सुबह मे तडके ही उठ बैठता । अपने शिष्यो के साथ पहले परमात्मा की प्रार्थना करता और फिर दिन भर के काम का बँटवारा कर देता । वह किसी को कहता—तुम शराबियो से अनुनय-विनय करके, शराब पीने की हानियाँ समझा कर, उन्हे शराब पीने से रोकना । किसी को गाँव के दीन-दुखियो और रोगियो की सार-सँभाल का काम सौंपता, किसी को गाँव के रास्ते साफ करने का और किसी को, जनता का

हित करने वाली शिक्षा देने का काम सौपता था ।

मघा कौन कार्य, किस प्रकार करता था, यह सब बाते व्याख्यान में नही कही जा सकती । वाणी में इतनी सामर्थ्य ही नही है कि उसका सहारा लेकर सब बातें भली-भाँति समझायी जा सके। केवल-ज्ञानी अपने ज्ञान से जितना जानते है, उसका अनन्तवाँ भाग ही भाषा द्वारा व्यक्त कर सकते है । तब सामान्यजन का कहना ही क्या है ! निष्काम भाव और हृदय की सच्ची लगन से किये जाने वाले कार्य का प्रभाव बिना पड़े नही रहता। मघा की निष्काम भावना के कारण गाँव भर मे एक भी शराबी, वेश्यागामी और चोर न रहा ।

उस समय चाय-बीडी का प्रचार नही था, अतएव मघा को इस सम्बन्ध मे सुधार करने की आवश्यकता ही न पडी । पर आजकल चाय-बीड़ी का प्रचार बहुत अधिक हो गया है । पहले के श्रीमान् मे और आधुनिक श्रीमान् में बहुत अन्तर पड गया है । पहले की श्रीमन्ताई कुछ और थी, और आज की श्रीमन्ताई कुछ निराले ही ढग की है। प्राचीनकाल के श्रीमान् अपने घर पर गाये-भैंसें पालते थे। वे स्वय उनका दूध-घी खाते थे और दूसरो को भी उससे लाभ पहुंचता था । दूसरो को कदाचित् दूध-दही न मिलता तो भी छाछ तो चाहे-जिसे मिल ही जाती थी । पर आज के श्रीमानो के घर चाय के प्याले सजे रहते है। इस अवस्था में दूसरे लोग उनसे क्या लाभ उठा सकते हैं ? चाय के प्याले दूसरो को लाभ नही पहुंचाते सो न सही, पर वे स्वय पीने वालो को भी तो लाभ नही पहुंचाते, उन्हे शारीरिक हानि उत्पन्न करते है। इनका परिणाम होता है, डाक्टर

की शरण लेना। आज के श्रीमान् दूसरो की सेवा करना भूल गये हैं। वे लोग बँगले में रहने और मोटरो पर सवार होकर चलने-फिरने में ही अपनी श्रीमन्ताई समझते है। गाय-भैंस पालने से मच्छर बढते हैं, अतएव बाजारू दूध खरीद लेने में ही अपना बडप्पन मानते हैं। पर उन्हे यह नही सूझता कि अगर गाय-भैंस पालने से ही मच्छर होते हैं तो उनके बँगले में गाय न रखने पर भी मच्छर कहाँ से आ पहुँचते है ? अगर तुम सच्चे श्रीमन्त हो तो अपनी श्रीमन्ताई का दूसरे की सेवा करने् में उपयोग करो। यह नही हो सकता तो तुम्हारी श्रीमन्ताई घोडे की पूछ के समान किस मतलब की है ? बडे-बड़े शानदार बँगले बनवाने मे, दो-चार कुत्ते पालने मे, या मोटर गाड़ी रखने मे और उसे चारो ओर फिरा कर लोगो पर धूल उडाने में भले ही आज तुम्हे श्रीमन्ताई दीखती हो, पर ज्ञानियो की दृष्टि मे वह सच्ची श्रीमन्ताई नही है। जो जन-समाज का अधिक-से-अधिक सेवा करते हैं वही सच्चे श्रीमत हैं और उनकी सच्ची श्रीमन्ताई जगत् के लिये हितकारक है।

मघा के सतत प्रयास से उस गाँव मे से मदिरा, पर-स्त्री-गमन और चोरी आदि के भूत भाग गये। मघा ने उस गाँव के निवासियो को यह भी सिखाया—तुम इतना अधिक खर्च मत रखो जिससे तुम्हे कर्ज लेना पडे। आय के परि-माण मे व्यय करो। अनिवार्य आवश्यकता के समय कर्ज लेना पडे तो उसे नियत समय से पहले ही चुका डालो। अगर कर्ज सिर पर चढा लोगे और समय पर चुक न सकेगा तो लेनदार तुम पर दावा करेगा। इसमे तुम्हारा पतन है। इस प्रकार लोगो के घर-घर जाकर मघा ने यथासमय कर्ज

चुका देने के लाभ और न चुकाने के नुकसान उन्हे समझाये। इससे वहाँ के लोग अपने वश भर प्रथम तो ऋण लेते ही न थे, कदाचित् लेना भी पड़ता तो नियत समय से पहले ही चुका देते थे। इससे किसी को किसी पर दावा करने का अवसर ही नही मिल पाता था। इसके अतिरिक्त लोगो मे आपस में कभी कोई रगडा-झगडा हो जाता तो मघा या उसके शिष्य बीच-बचाव कर देते थे। अब मघा पर लोगों की आस्था बढ चली थी और लोग उसका कहना मानने लगे थे।

इस प्रकार मघा और उसके शिष्यो ने अपना जीवन लोक-सेवा के लिए समर्पित कर दिया। लोग भी उनके कार्य मे सहायता पहुँचाने लगे। गाँव में इतनी अधिक शान्ति और अमनचैन फैल गया कि जो लोग गाँव छोडकर दूसरी जगह जा बसे थे वे भी लौटने लगे। पहले पुरुष, स्त्रियो को बहुत कष्ट देते थे पर मघा के उपदेश से स्त्रियो ने भी शान्ति का श्वास लिया। जो स्त्रियाँ पहले मघा के काम मे रोडा अटकाती थी, वही अब मघा को आसीस देने लगी और अपने किये पर पछताने लगी। वे कहती— 'हम तो मघा की साफ की हुई जगह मे कचरा बिखेर देती थी, पर वह चुपचाप उसे उठा ले जाता था। मघा ने बाहर का ही कचरा साफ नही किया है किन्तु हमारे हृदय का कचरा भी साफ कर दिया है। परमात्मा इस पुण्यजीवी मघा को चिरायु करें।'

इस प्रकार मघा के लिए लोग परमात्मा से प्रार्थना करते और प्रभात मे उनके दर्शन करने आते थे। पर मघा अपनी कीर्ति से फूल जाने वाला व्यक्ति न था। वह तो

सदा की भाँति अपने काम में लीन रहता था। उसके पास इतना समय ही न था कि लोगो को दर्शन देने के लिए वह कही एक जगह बैठा रहता। लोग जब उसके दर्शन करने आते तो वह यही कहता—आप लोग अपने घर-द्वार को और हृदय को साफ-स्वच्छ रखिए, यही मेरा सच्चा दर्शन है।

यह तो मुझे भी कहना पड़ेगा कि यहा की जनता मालवा, मेवाड़ और मारवाड की जनता की अपेक्षा घर और अन्य वस्तुओं को अधिक साफ-सुथरा रखती है। पर साथ ही यह भी कहना होगा कि तुम घर की तरह गलियो को साफ नही रखते। गलियो में बेहद गदगी रहती है। जूता पहनने के कारण सभव है तुम्हे गलियो की गदगी का पूरा ख्याल न आता हो, पर हम जूते नही पहनते इस कारण हमे गदगी की अधिकता का खूब अनुभव होता है। शास्त्र मे कहा है—अशुचि मे चलने से हिंसा होती है। दूसरे लोग भी अशुचि को अस्पृश्य ही मानते हैं। अगर तुम श्रावक होकर भी अपने घर का कचरा गली के नाके पर बिखेर देते और गदगी को बढाते हो, तो कहना चाहिए कि तुमने अब तक यह नही समझ पाया है कि गुरु की सेवा किस प्रकार करनी चाहिए!

मघा की सत्यवृत्ति से लोगो मे अपूर्व शान्ति फैल गई। इस कारण मघा सब का प्रेम-पात्र बन गया। पर उस गाँव मे तीन प्रकार के पुरुष ऐसे थे जिन्हे मघा अप्रिय ही नही वरन् कडुआ जहर-सा लगता था। वे यह थे—शराब बेचने वाले, वेश्याएँ और कचहरी के राजकर्मचारी। ये लोग मघा की सत्यवृत्ति से बहुत नाराज रहते थे। शराब की बिक्री एकदम बद हो जाने के कारण शराब बेचने वाले को

आमदनी मारी गई थी । वेश्यागामियों का अभाव हो जाने से वेश्याएँ नाराज रहती थी और झगडा-फसाद न होने के कारण राजकर्मचारी दिन भर हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते थे । इस प्रकार ये लोग मघा पर दाँत पीसते रहते थे और किसी उपाय से मघा यहाँ से भाग जाये तो वला टले और हमारा धवा फिर से चमक उठे, इसी उधेड़-बुन मे लगे रहते थे । मघा को गाँव से हटाने के लिए वे प्रयत्न करने लगे ।

अच्छा काम करने वाले का भी विरोध करने के लिए कोई-न-कोई खडा हो जाता है । जैसे दिन की थकावट दूर करने के लिए रात की जरूरत है उसी प्रकार सत्कार्य का विरोध करने वालो की भी आवश्यकता है । ज्ञानी-जन इस प्रकार के विरोध से या निंदा से रच मात्र भी नही घवराते, वल्कि विरोध को अपने कार्य का सहायक मानकर दुगुने उत्साह से उसे सफल वनाने मे जुट पड़ते हैं। वे सकटो को परमात्मा की प्रार्थना करने का प्रेरक मानकर प्रसन्न होते हैं ।

जो महाभाग सकट उपस्थित होने पर परमात्मा की प्रार्थना का आश्रय लेते है, उनके लिए सकट भी सहायक वन जाते हैं । तुम भी शुद्ध चित्त से परमात्मा की प्रार्थना करो तो तुम्हारा कल्याण ही कल्याण होगा ।



जन-सेवा

(३)

प्रार्थना

मल्लि जिन बाल ब्रह्मचारी, 'कुंभ' पिता 'परभावति' मैया,
तिनकी कुमारी; मल्लि जिन बाल-ब्रह्मचारी ॥ टेक ॥

श्री मल्लिनाथ भगवान् की यह प्रार्थना है। इस प्रार्थना मे भगवान् मल्लिनाथ का चरित्र इस प्रकार बताया गया है कि साधारण से साधारण मनुष्य भी सरलतापूर्वक हृदय मे उतार कर जीवन-सुधार और आत्म-कल्याण कर सकता है।

इस प्रार्थना द्वारा मेरी भावना को इतना अधिक पोषण मिला है कि इस प्रार्थना के आधार पर ही अगर मैं अपने जीवन की अपूर्णता दूर कर लू तो फिर मुझे कुछ भी करना शेष न रहे। इस प्रार्थना से मेरी भावना को किस प्रकार पोषण मिलता है, इस सम्बन्ध में मैं थोडा-सा ही कहना चाहता हूं। एक सिद्ध होता है, एक साधक होता है और एक साधन होता है। आत्म-कल्याण करने के लिए साधक को अनेक साधनो का उपयोग करना पडता है और उनके

द्वारा वह सिद्धि-लाभ करके सिद्ध बन जाता है। यह बात भगवान् मल्लिनाथ के चरित्र से स्पष्ट ज्ञात होती है।

भगवान् मल्लिनाथ के रूप-सौन्दर्य की प्रशसा चारों ओर फैली हुई थी। बहुत-से राजाओ ने सुना था कि राजा कुम्भ के घर एक सुन्दरी ने जन्म लिया है। अनेक राजा इस रूप-सुन्दरी के साथ विवाह करने के लिए लालायित थे। पर उनमे से भान भूले हुए छह राजा तो यहाँ तक तैयार थे कि यदि राजा कुम्भ अपनी कन्या हमें न देंगे, तो हम युद्ध करने से भी न चूकेंगे।

अन्त मे जब छहो राजाओ ने एक साथ चढाई कर दी, तो अपने पिता पर आई हुई विपदा को हटाने और राजाओ को प्रतिबोध देने के लिए भगवान् मल्लिनाथ ने जो रचना रची वह इतनी अधिक आकर्षक और विचित्र थी कि उसका सम्पूर्ण महत्व समझ सकना भी सभव नही है। भगवान् ने एक पुतली बनाई। देखने में वह हूबहू उन्ही जैसी थी। पर उसमे एक विशेपता थी। पुतली का मुकुट अगर उतार दिया जाता, तो उसमें से भयानक दुर्गंध फट पडती थी। उस दुर्गंध को सहन करना अत्यन्त कठिन था। मुकुट उतारने से पहले उसमे दुर्गंध का लेश भी प्रतीत नही होता था और उसका सौन्दर्य ठीक मल्लिनाथ जैसा दिखाई देता था।

यह रचना रचकर भगवान् मल्लिनाथ ने कहला दिया— 'आप एकदम निश्चिन्त रहिए। राजाओ का इलाज मुझ पर छोड दीजिए। छहो राजाओ को मुझे देखने के लिए बुला भेजिए।'

छहों राजा अत्यन्त कौतूहल और उत्सुकता के साथ 'मल्लिकुमारी' को देखने आये। दीपक को देखकर जैसे पतग मोहित हो जाता है उसी प्रकार प्रस्तुत पुतली देखते ही छहो राजा मुग्ध हो गये।

भगवान् पुतली का भीतरी रूप बताकर उनकी मस्ती को कपूर की तरह उडा देना चाहते थे। अतएव उन्होंने पुतली का मुकुट खोल दिया और तत्काल ही चारो ओर घोर दुर्गंध फैल गई। राजाओ के होशहवास गुम हो गये। दुर्गंध से घबरा कर और पुतली की ओर घृणा की नजर से देखते हुए वे बाहर निकलने लगे। भगवान् ने सोचा, इन्हे प्रतिबोध देने के लिए बस यही उपयुक्त अवसर है।

भगवान् की इस रचना पर विचार किया जाये तो जागृति एव सुषुप्ति अवस्था के विषय मे भी बहुत-कुछ जाना जा सकता है। साधारणतया जागृत-अवस्था को बहुत महत्व दिया जाता है और सुषुप्त-अवस्था को महत्व नही दिया जाता। पर एक दिन भी अगर तुम्हे नीद न आये तो कितना कष्ट होगा ? इससे यह स्पष्ट होता है कि किसी अश मे सुषुप्ति की भी आवश्यकता रहती है। निद्रा में जो कुछ होता है वह सुषुप्ति अवस्था का कार्य है। तुम बाहर की रचना देखते हो, पर अन्दर की रचना कैसी है, यह नही देखते। बाहर जो कुछ दिखलाई पडता है वह सब कर्म का फल है, पर कर्म-फल के पीछे क्या-क्या छिपा है, यह भी तो तलाशो ! भगवान् ने राजाओ को प्रतिबोध देते हुए कहा—राजाओ ! आप लोग क्यो विमुख हो गये हैं ? अभी तक आपको जो वस्तु अतिशय प्यारी प्रतीत होती थी वह

एकाएक अप्रिय क्यों हो उठी है ? अभी तक आप उसके बाह्य रूप को ही देख रहे थे, इस कारण उस पर प्राण निछावर कर देने को तैयार थे। पर भीतरी रूप का परिचय पाते ही आप घृणा के मारे नाक-भौं सिकोड़ने लगे। आप लोग निश्चित समझ रखिए—

महा असार उदारिक देही, पुतलो इव प्यारी।
संग किये पटकै भव-दुःख में, नारि नरक-बारी॥

तुम ऊपरी रूप देखते हो तब बेभान बन जाते हो, पर जब जरा अन्दर गोता लगाते हो, तो जिस पर मुग्ध हो रहे थे उससे भी घृणा करने लगते हो!

कल शिलालेख देखते हुए यहाँ का अजायबघर देखा था। उसमें एक जगह मनुष्य का अस्थि-पिंजर रखा हुआ है। उसे देखने से मनुष्य की हड्डियों की रचना का खयाल आ जाता है। पर क्या हाड़ों का पींजरा देखकर किसी के मन में विकार उत्पन्न होता है? किसी में काम-भावना जागृत होती है? पर जब वह हाड़ों का पींजरा चमड़ी से ढँका होता है तब विकार क्यों जाग उठता है?

संसार के पदार्थ अलग-अलग दृष्टियों से देखे जाने पर अलग-अलग प्रकार के दिखाई देने लगते हैं। हाड़ पींजरे को देखकर कोई अपना भोजन समझता है, तो कोई उसे अपनी खोज का साधन मानता है। किसी कुत्ते के सामने अस्थि-पिंजर रख दिया जाये तो वह अपना भोजन समझ कर खाने लगता है और वही अस्थि-पिंजर किसी डाक्टर के सामने रख दिया जाये तो वह शरीर-रचना सम्बन्धी किसी खोज के लिए उसका उपयोग करता है। ज्ञानी और

अज्ञानी के बीच भी इसी प्रकार का अन्तर है। अज्ञानी लोग हाड-पिंजर का बाहरी रूप देखकर मोहित हो जाते है और ज्ञानी-जन, बाहर दिखाई देने वाले रूप के पीछे क्या छिपा है, इस बात का विचार करके वैराग्यलाभ करते है।

छहों राजा भगवान् से कहने लगे—हम लोगो ने उस पुतली को पुतली नही समझा था। हम उसे साक्षात् मल्लि-कुमारी समझ रहे थे। वह सुवर्ण की पुतली थी, यह तो पीछे पता चल पाया है। आपने हमें बोध देने के लिए ऐसी रचना रची है, यह बात जानकर हमे अपने अज्ञान पर तरस आता है।

अपनी मूर्खता पर राजा लोग जी-भर पछताये। भगवान् ने आश्वासन देते हुए उनसे कहा—'घबराओ मत। अगर तुम्हारी भाँति मैंने भी बाहरी रूप पर ही दृष्टि रखी होती और भीतर की खबर न रखी होती तो गजब हो जाता। मैंने केवल बाह्य रूप को ही न देखकर अभ्यन्तर रूप का भी ध्यान रखा है। इसी कारण मुझे आप पर मोह उत्पन्न नही हुआ। जो हुआ सो हुआ। अब आप लोग अपनी आत्मा को जागृत करके आत्म-कल्याण की साधना कीजिए।'

हाँ, इतना दुहरा देना आवश्यक है कि आप बाहरी रूप को देखकर बेभान न बन जाया करें, पर यह देखा करे कि इसके भीतर क्या रचना भरी है? भगवान् मल्लि-नाथ की प्रार्थना करो तो तुम्हारे मिथ्या मोह का भूत भाग जायेगा और तुम्हारी आत्मा का कल्याण होगा।

आज प्रातकालीन भावना भाते समय मुझे विचार आया कि, हम जिनसे सहायता प्राप्त करते है उन्हे भूल

जाना कैसी गभीर भूल है ! मैं अन्न के अतिरिक्त दूध आदि पदार्थ ही लेता हूं। जिन पदार्थों की सहायता से यह शरीर निभ रहा है और जिनके आधार से मैं आत्म-कल्याण कर सकता हू, उन प्राणियो के ऋण से मैं कब और कैसे मुक्त हो सकूगा ? जैसे मुझे अन्य प्राणियो की सहायता की आवश्यकता पडती है, उसी प्रकार क्या तुम्हे सहायता की आवश्यकता नही होती ? आवश्यकता होने पर भी अगर तुम उनके ऋण से मुक्त होने के लिए प्रयत्न नही करते और फर्नीचर पर पॉलिश लगाने के समान ऊपरी लोकदिखाऊ काम करते हो, तो क्या यह उचित है ? तुम अपना बगला साफ रखना चाहते हो पर अगर तुम्हारा शरीर साफ न हुआ तो बँगले की सफाई से क्या होगा ? तुम आलमारी, मेज आदि फर्नीचर को साफ रखो, पर शरीर-सुधार की ओर तनिक भी ध्यान न दो तो वह सुधार है या बिगाड ? इस प्रश्न पर जरा विचार करो। तुम जीवन की वास्तविक आवश्यकताओ पर तो ध्यान नही देते और बाहरी कृत्रिमताओ को बढाने मे जीवन खर्च डालते हो ! जो अपनी गृहिणी को भूल कर सिनेमा की अभिनेत्री के पीछे सारी शक्ति व्यय करता है, उसकी क्या दशा होती है, सो जानते हो ? ठीक वही दशा वास्तविकता को भूल कर कृत्रिमता के पीछे पड कर अपनी शक्ति वर्बाद कर देने वालो की होती है। जैसे वे छह राजा पुतली के बाहरी रूप के पीछे पागल हो गये थे, उसी प्रकार तुम भी ऊपर के मिथ्या आडम्बरो को बढाने मे वास्तविकता को भुला देते हो। जब इन भूलो को दूर कर दोगे तभी तुम्हारे हृदय पर निर्ग्रन्थ-धर्म का प्रभाव पड सकेगा और जब तुम निर्ग्रन्थ-धर्म को अपने जीवन मे ताने-बाने की तरह बुन लोगे, तब तुम्हे न कुछ कहने की

खराब हो गई हो तो उसे बाहर निकाल देने से तत्काल ताजी हवा आ जाती है। उसके लिए कुछ प्रयत्न नही करना पड़ता। इसी प्रकार यदि हृदय की गदगी बाहर निकाल दी जायेगी तो अवश्य पवित्रता का प्रवेश होगा। तब पवित्रता लाने के लिए प्रयास नही करना होगा। लोगो की यह आदत-सी हो गई है कि अपने हृदय की गदगी दूर तो करते नही हैं और परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि मेरे दिल की गदगी को आप दूर कर दीजिए! पर जब उनसे कोई यही बात कहता है कि तुम्हारे हृदय मे गदगी है, तो लाल आँखे निकालने लगते हैं। यह पद्धति अच्छी नही है। इसका परित्याग करके सच्चे हृदय से परमात्मा के सामने अपने दोष उपस्थित करो और फिर हृदय-शुद्धि का प्रयास करो। अवश्य तुम्हारा कल्याण होगा।

मघा ने अपने बत्तीस शिष्यो को अपना आचारधर्म समझा कर अपने समान बना लिया। आचार्य मानतुङ्ग ने भगवान् की प्रार्थना करते हुए कहा है :-

तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किवा,
भूत्याऽऽश्रित य इह नात्मसम करोति।

—भक्तामर स्तोत्र

जिस वृक्ष का जल सीचकर पालनपोषण किया जाता है, वह क्या फल-फूल नही देता? अवश्य देता है। इसी प्रकार जो पुरुष लक्ष्मीवान् की सेवा करता है, वह स्वय लक्ष्मीवान् बन जाता है। सच्चा श्रीमान् वही है जो अपने सेवक को श्रीमान् बना देता है। भक्तजन कहते हैं— जब सच्चा श्रीमान् भी सेवक को अपने समान बना लेता है, तो

क्या परमात्मा अपने सेवक को अपने समान न वनाएगा ? परमात्मा अपने सेवक को--अगर सेवक सच्चा हो तो— अवश्य अपने समान वना लेता है ।

मघा ने अपने वत्तीसो शिष्यों को अपने समान वना लिया । वे भी जन-सेवा द्वारा शान्ति और आनन्द का अनुभव करने लगे । अव तक तो उसका काम-काज व्यवस्थित रूप से चलता रहा और उसके कार्य से सव ने शान्ति का अनुभव किया था; परन्तु अव उसकी सच्ची कसौटी का समय आ पहुँचा । जैसे नियमित अभ्यास करने वाला विद्यार्थी परीक्षा से नही घवराता, उसी प्रकार सच्चा सेवक जीवन-परीक्षा से नही घवराता । जो विद्यार्थी नियमित अभ्यास नही करता वह परीक्षा का समय आने पर डरने लगता है । उसे यह चिन्ता होने लगती है कि--हाय, अव क्या करूँ ? इसके विपरीत नियमित अभ्यास करने वाला विद्यार्थी, ज्यो-ज्यो परीक्षा नजदीक आती जाती है, त्यो-त्यो प्रसन्न होता है । उसे आत्मविश्वास होता है कि मैं परीक्षा मे उत्तीर्ण होकर प्रमाणपत्र प्राप्त करूँगा ।

इसी प्रकार ज्ञानी और विवेकशील लोग सकट के समय जरा भी विचलित या भयभीत नही होते । सकटो को अपनी जीवन-साधना की कसौटी समझकर--परीक्षा मानकर सकटो का स्वागत करते हैं और उनके आने पर प्रसन्न होते हैं । वे समझते हैं--यदि इस सकट की परीक्षा में हम उत्तीर्ण हो गये तो हमें परमात्मा की भक्ति का प्रमाणपत्र प्राप्त हो सकेगा ।

मघा की सत्प्रवृत्ति से ग्रामीण जनता को अत्यन्त लाभ

पहुँचा था । न तो उससे राजा को ही कोई हानि हुई थी और न प्रजा को ही । मघा के शुभ प्रयत्न से लोगो ने वेश्या-गमन, मदिरापान, चोरी आदि पाप-प्रवृत्तियो का परित्याग कर दिया था । उस समय होटल नही थे, अतएव होटलो के सम्बन्ध मे उसे कुछ कहना ही न था । हाँ, मघा जैसा कोई सुधारक आज हो तो वह होटल का व्यसन जरूर छुडा देता । आज होटलो के कारण कैसी-कैसी पाप-प्रवृत्तियाँ बढ गई हैं और लोग इन पाप-प्रवृत्तियो मे पड कर किस प्रकार पतन की ओर प्रयाण कर रहे हैं, यह सब के सामने है । जिस जाति मे या जिस घर मे मास-मदिरा का सेवन तो दूर रहा उनका नाम तक लेना पाप माना जाता है, उन्ही लोगो की सतान होटलो मे जाना सीख लेती है और धीरे-धीरे मास-मदिरा के खान-पान की पापमय प्रवृत्ति में पड जाती है, ऐसा सुना जाता है । जो लोग मास का स्वाद चखने के लिए अथवा दूसरो का मास खाकर हृष्ट-पुष्ट बनने की आशा से मास का सेवन करते हैं, उन्हे यह भूल न जाना चाहिए कि मास के सेवन से मनोवृत्ति तामसिक बन जाती है और अन्त मे अपने ही हाथो अनेक अनर्थ भुगतने पड़ते हैं । इसके अतिरिक्त मासभोजी को यह भी समझ रखना चाहिए कि जैसे हम दूसरो का मास उपभोग मे ला रहे हैं उसी प्रकार कही दूसरे हमारे मास का उपभोग न करने लगे !

मदिरा-पान करने वालो को अपने शरीर की दुर्दशा का भी भान नही रहता । वे तो केवल यही समझते हैं कि जब हमारे पास पैसा है तो क्यो न हम मौज-शौक मे उसका उपयोग करें ? अगर पैसा मौज-शौक मे काम न आया तो

जिन्दगी का मजा ही क्या ? इस प्रकार की दुर्भावना के शिकार हुए लोग मदिरा जैसे मादक पदार्थों के लिए अपने पैसो का और अपने वहुमूल्य जीवन का भी सर्वनाश कर डालते हैं। कहते है, अगर छत्रपति शिवाजी का पुत्र शभाजी सुरा और सुन्दरी के फन्दे में न पड़ा होता, तो वह 'वाप से वेटा सवाया' इस लोकोक्ति को सार्थक करने मे समर्थ होता। पर वह सुरा और सुन्दरी के मोह में अन्धा हो गया और अन्त मे उसकी वडी बुरी दशा हुई।

मघा के शुभ प्रयत्न से सव को शान्ति मिली, पर मदिरा वेचने वालो, वेश्याओ और राज-कर्मचारियो के लिए वह अशान्तिकर्त्ता हो गया। मघा इन सव की आँखो में काटे के समान चुभने लगा। उन्होने मघा को ही अपने रोजगार के मटियामेट होने का कारण समझा। लोगो पर उसका बहुत अधिक प्रभाव है और उसके कहने से ही लोग हमारे पास फटकते तक नही है, यह सोचकर उन्हे मघा वुरी तरह खटकने लगा। उन्होने सोचा किसी भी उपाय से मघा को हटाना चाहिए। ऐसा विचार कर उन्होने एक मडल वनाया और मघा को दूर करने के उपाय सोचे। अन्त मे राजा की शरण लेना निश्चित हुआ। पर उसका और उसके शिष्यो का कोई अपराव भी तो होना चाहिए ? राजा मे निर्वासन के लिए कहा जायेगा तव वह कहेगे— 'मघा साधु पुरुप है, उसे गाँव वाहर क्यो निकाला जाये ?' तव राजा के सामने यह कहना ठीक होगा —'मघा और उसके सव चेले उचक्के और लुटेरे है और उनके कारण प्रजा को अत्यन्त त्रास हो रहा है। उनके त्रास के आगे राजसत्ता भी भाग मारती है।' यह सुनकर राजा, मघा के ऊपर

कुपित होंगे और हमारी योजना सफल हो जायेगी, क्योंकि राजा हमारे ऊपर विश्वास करते हैं।

इस प्रकार निश्चय करके, राज-कर्मचारियो ने अपना सगठन और सुदृढ करने का निश्चय किया। सगठन-शक्ति अच्छे कार्य के लिए भी प्रयुक्त की जा सकती है और किसी अच्छे कार्य मे रोड़ा अटकाने के लिए भी प्रयुक्त की जा सकती है, क्योंकि शक्ति वह दुधारी तलवार है जिससे रक्षण और भक्षण दोनो काम लिये जा सकते हैं। राजकर्मचारियो के स्थापित किये हुए मडल मे पाप-प्रवृत्तियो द्वारा धन उपार्जन करने वाले कुछ लोग और शामिल हो गये। सब ने मिलकर मघा और उसके शिष्यो के विरुद्ध एक आवेदन-पत्र तैयार किया और राजा के पास ले गये।

मगध-नरेश को सूचना दी गई कि अमुक-अमुक राज-कर्मचारी आपसे मिलने के लिये आये हैं। पर उस समय राजा स्वय मदिरा के नशे मे चूर हो रहा था। जब नशा कम हुआ तो राजा अपनी राजसभा मे आया। राजा का आना था कि सब कर्मचारी पुकार मचाने लगे—'अन्नदाता! राज्य में अत्यन्त विग्रह फैल गया है। चारों ओर राज्य में लुटेरों ने उत्पात मचा रखा है। प्रजा इससे बहुत दु:खी हो गई है। इस त्रास को मिटाने के लिये प्रजा ने हमें यह निवेदन-पत्र लेकर आपकी सेवा में भेजा है। इसे पढ़कर उचित प्रबध करने की कृपा कीजिए।'

मघा और उसके साथियो के विरुद्ध जो आवेदन-पत्र राजकर्मचारियों ने तैयार किया था, वह राजा के समक्ष पेश किया गया। इसके अतिरिक्त झूठी-सच्ची अनेक बातें,

जो उनके मन में आई, राजा को कह सुनाई ।

आजकल भी राजकर्मचारी राजा को वास्तविक बात न कह कर 'मन-गमती' बाते बनाकर राजा के कान भर देते हैं । लोग बाहर की चोरी को बुरा कहते है पर आँखो मे धूल झोंक कर की जाने वाली इस प्रकार की सफेद चोरी की ओर नजर भी नही फेरते । चोर को चोरी करते देखकर वैराग्य-लाभ करने वाले समुद्रपाल जैसे विचारक तो विरले ही होते है ।

मगध-नरेश मदिरा के नशे मे चूर तो थे ही, न कुछ सोचा, न विचारा और राजकर्मचारियों की बातो पर सहसा विश्वास करके तत्काल हुक्म सुना दिया । उन्हे जाँच-पडताल करने की आवश्यकता प्रतीत ही नही हुई । राजा ने कहा—'सेना की एक टुकड़ी ले जाओ और राज-विद्रोहियो को पकड मँगवाओ ।' राजा का यह नादिरशाही हुक्म सुनकर राजकर्मचारियो के हर्ष का पार न रहा और सभी 'मेरी युक्ति काम कर गई' इत्यादि कहते हुए अपनी-अपनी बड़ाई करने लगे ।

प्रसन्नता मे पगे हुए और अपने आप मिया-मिट्ठू बनते हुए राजकर्मचारी सेना की टुकडी के साथ अपने गाँव लौटे ।

रास्ते मे कर्मचारियो ने सेना-नायक को सूचित कर दिया था कि—'देखिए, दूसरे किसी भी आदमी की न तो आप बात सुने और न किसी से कुछ पूछने के लिए रुके । अगर आप ऐसा न करेंगे तो बदमाशों को पकड़ना असभव हो जायेगा । हम जिसकी ओर संकेत करें, बस उसी को

गिरफ्तार कर लीजिए। अगर हम प्रगट रूप से उन बदमाशो के नाम आपको बताऐंगे तो हमारी जान की खैर नही। ये बदमाश बहुत चालाक हैं। इन्होंने गाँव वालो को भी विद्रोही बना दिया है। राज-मर्यादा की उन्हे रचमात्र परवाह नही है। अतएव किसी के कहने पर कान न देकर जिसकी ओर इशारा किया जाये, उसी को आप गिरफ्तार करते जाइए।' इस प्रकार सैनिको को पहले-से ही बहका दिया गया। यो सैनिक स्वय कितने उद्धत होते है, यह किसी से छिपा हुआ नही है।

सैनिक कहने लगे—हमे महाराज ने आपके आदेश का पालन करने की आज्ञा दी है। अतएव जो आपकी आज्ञा होगी, वह हमे स्वीकार है। हम दूसरो की न सुनेंगे और न मानेंगे। जिस किसी को भी गिरफ्तार करने की आपकी आज्ञा होगी, उसे फौरन विना विलब गिरफ्तार किया जायेगा।

इस प्रकार पूरी तैयारी करके सेना के साथ राज-कर्मचारी गाँव मे दाखिल हुए। गाँव के लोगो को पता चला कि महाराज, मघा और उनके शिष्यो पर खफा हो गये है और उन सबको पकडने के लिए सशस्त्र सेना आई है। कच्चे दिल का कोई आदमी सशस्त्र सेना के आगमन की बात सुनते ही घबडा उठता है, पर मघा कच्चे दिल का आदमी नही था। वह जो सत्कार्य कर रहा था उसमे उसका अटूट विश्वास था। वह किसी का डिगाया डिगने वाला नही था। जब उसने अपने पकडने के लिए सशस्त्र सेना के आने का समाचार सुना, तो वह सोचने लगा—'मेरी परीक्षा का समय आ पहुँचा है।' उसने अपने साथियो को बुलाकर कहा—आज हम सब की परीक्षा का समय आ गया है।

अब छोटे-छोटे काम छोडो । अब हमे एक महत्त्वपूर्ण कार्य करना है । छोटे-छोटे कार्य करते बहुत दिन बीत गये है । अब एक बडे कार्य मे हाथ डालना होगा ।

इस प्रकार अपने साथियों को सावधान करके मघा राजकचहरी के आगे जा बैठा । उसने अपने शिष्यो से फिर कहा—'हम लोगो को पकडने के लिए हथियारो से लैस सेना आ रही है । अब तुम क्या करोगे ?'

शिष्यो ने कहा—'आप गुरु हैं । हम आपके शिष्य है । जहाँ गुरु-शिष्य का पवित्र नाता होता है, वहाँ तर्क-वितर्क को स्थान ही नही रहता । तर्क-वितर्क करना पडितो का काम है, हमारा नही । आप में हमारी सम्पूर्ण निष्ठा है । अतएव आप जो-कुछ करने को कहे, वही हम करने को तैयार है ।'

मघा— 'तुम सबने मिलकर तो अकेले मुझ पर ही सारी जिम्मेदारी डाल दी है । तो मुझे यही कहना है कि अब हमे एक महान् काय करना है । अतएव मैं जो करूँ वही तुम सब भी करते चलना । ऐसा करने मे न तो तुम डरना और न पीछे पैर रखना। मैं तुम सबसे आगे रहूंगा। बस, यह दृढ प्रतिज्ञा करो कि तुम सब मेरा ही अनुसरण करोगे, मैं जो कुछ करूँगा वही तुम भी करोगे ।'

शिष्य—'हम लोग तो सब-कुछ अपने सिर ओढ लेना चाहते थे और आपको सब प्रकार के सकटो मे बचा लेना चाहते थे, पर जब आप हमारे आगे रहने वाले हैं तो हम आपके पीछे चलने मे क्यो आनाकानी करने लगे ?'

जैसे युद्ध मे सच्चा सेनापति आगे रहता है, उसी प्रकार

कष्ट सहन करने में सच्चा सेवक सदा आगे रहता है। इस विषय में महाकवि भर्तृहरि कहते है :—

सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः।

सेवा-धर्म इतना कठोर है कि योगियों के लिये भी वह अगम्य है। वास्तव में सेवाधर्म की साधना के लिए वीरता की आवश्यकता होती है। बातो से यह साधना साध्य नही है।

मघा के बत्तीसो शिष्य सच्चे सेवक थे और मघा ने उन्हे सेवा की शिक्षा देकर अपने समान ही सेवक बना लिया था।

मघा अपने शिष्यों के साथ न्यायालय के सामने बैठा ही था कि सेना आ पहुँची। राजकर्मचारियो ने सेना-नायक से कहा—'देखिये, सब बदमाश इकट्ठे होकर वहाँ बैठे हुए हैं। वे इतने लापरवाह हैं कि सेना से भी नही डरते। वे बहुत बहादुर और निडर हैं, अतएव उन्हे पकड़ते समय सावधानी रखने की आवश्यकता है।'

सेना-नायक ने कहा—'यह बहुत अच्छा हुआ, जो उन्हे खोजने के लिए हमें भटकना नही पडा।'

राजकर्मचारी बोले—'हमें भय है, ये लोग कही आपके ऊपर हमला न कर बैठें।'

सेना-नायक ने उत्तर दिया—'हम लोग इतने कायर नहीं कि उनके हमले से भाग खड़े हो। हम लोग शूरवीर है। इसके अतिरिक्त महाराज ने हमे अधिकार दे रखा है कि हमला होने की हालत मे हम गोली चला सकते हैं।'

एक ओर जहाँ ऐसी शूरवीरता बघारी जा रही थी, वहाँ दूसरी ओर मघा अपने शिष्यो को समझा रहा था—

'तुम्हे पूर्ण शान्ति रखनी चाहिए। जरा भी शान्ति भग न होने देना और जैसा मैं कहूं, वैसा ही करना।'

सैनिक मघा और उसके साथियो के सन्निकट आ पहुँचे। उन्हें देखते ही सैनिक आपस मे कहने लगे—'ये तो विद्रोही से नही जँचते। इनकी मुख-मुद्रा पर विद्रोह की रेखा तक दिखाई नही देती। जो कुछ हो, हमें आज्ञा-पालन करना है। इनके विद्रोही होने न-होने का उत्तरदायित्व हम पर नही है। यह उत्तरदायित्व तो इन राजकर्मचारियो पर है।'

सेना-नायक ने मघा और उसके शिष्यो से कहा—'तुम लोगों ने गाँव मे वडा जुल्म ढाया है। अव विलव किये विना फौरन ही हथकडी-वेडी पहन लो और हमारे साथ चलो। महाराज ने तुम्हे गिरफ्तार कर लाने का आदेश दिया है।'

सेना-नायक की वात सुनते ही मघा और उसके साथियो ने अपने-अपने हाथ लवे कर दिये। सैनिको ने उन्हे हथकड़ी पहना दी। इसके वाद वेडी पहनने को कहा गया तो सव ने पैर लवे कर दिये। उनके पैर वेडियो से जकड दिये गये। हथकडियाँ और वेडियाँ पहना कर सैनिक ऐसे प्रसन्न हुए मानो वड़ा जंग जीत लिया हो। इधर मघा और उसके शिष्य सत्य के आभूषण पाकर प्रसन्न हुए। चोरी, अत्याचार या अन्याय करके हथकडी-वेड़ी पहनना वुरी वात है, पर चोरी, अत्याचार या अन्याय का प्रतिकार करने के उपलक्ष्य मे हथकडी-वेड़ी पहननी पडे तो सच्चे सेवक को इन्हे 'सेवा के आभूषण' समझकर प्रसन्न होना चाहिये। हथकडी-वेडी ही सच्चे सेवक के सर्वश्रेष्ठ आभूषण है।

सैनिकों ने जब मघा और उसके शिष्यों को गिरफ्तार करके हथकड़ी-बेडी पहनाई, तब तक गाँव-भर के लोग जमा हो गये थे। वे सब मघा की ओर एक इशारे की प्रतीक्षा करते हुए देख रहे थे। मघा एक इशारा करे और सारी फौज को मार के मारे भागने की जगह न मिले! सेना कदाचित् हमे मारने दौड़ेगी तो भी कितनों को मारेगी? मघा ने जनता के भाव समझ लिये। उसने भडकी हुई भीड़ से कहा —'अगर आप लोग हमारा हित चाहते हैं तो जरा भी अशान्ति न होने दें। हम आपसे यही सहायता चाहते हैं कि आप सब लोग एकदम शान्त रहे। अगर आपने शान्ति-भग की, तो इतने दिनो के किये पर पानी फिर जायेगा और हमारे साथ आपका भी अहित होगा। अतएव सब को भलाई के खातिर आप सब लोग पूर्ण रूप से शान्त रहे।'

सैनिक यह अद्भुत और अपूर्व दृश्य देखकर आश्चर्य मे पड गये। यह सब है क्या मामला? सो उनकी समझ मे कुछ न आया। इतने अधिक शान्त मनुष्यो को विद्रोही कैसे करार दिया गया है? खैर! उन्होंने सोचा-हमारा कर्त्तव्य आज्ञापालन है।

राजकर्मचारियो ने सोचा—जितनी जल्दी हो सकें, इन्हे राजधानी मे ले जाना उचित है। कही ऐसा न हो कि सारा गुड गोबर हो जाये।

सेना-नायक ने मघा और उसके साथियो से चलने को कहा। तेतीसो सेवक हथकडी-बेडी खनखनाते हुए धीरे-धीरे रवाना हुए। उनकी बेडियो की आवाज बीकानेरी स्त्रियो के पैरो के गहने की झकार-सी सुनाई पड़ने लगी। लोग

उनकी हथकडी-वेड़ी पहने जाते देख आपस मे कहने लगे—'राज्य-शासन कैसा अत्याचारी और राक्षसी है, जो ऐसे सत्पुरुषो को भी ऐसी असह्य यातनाएँ दे रहा है।' ग्रामवासियो को दुखी होते देख मघा ने कहा—'भाइयो, आप दुखी न हो। हम लोग अकेले नही हैं। हमारे साथ परमात्मा भी है।'

जव सैनिक मघा के दल को लेकर रवाना हुए तो गाव वालो मे से कितनेक रोने लगे, कितनेक चीख मारने लगे और कुछ समझदार लोग दूसरो को समझाने लगे—'हमें घवडाना नही चाहिए। आज रात्रि का अन्धकार है तो कल सत्यरूपी सूर्य का आलोक होगा और आपत्तिरूपी अन्धकार हट जायेगा। सत्य-सूर्य का उदय होने पर सबका कल्याण होगा। अतएव हमें रोना-चीखना नही चाहिए। धीरज रखना उचित है। अगर हम मघा का सचमुच सन्मान करते है, तो हमें मघा ने जिस मार्ग का प्रदर्शन किया है उसी मार्ग पर और अधिक दृढता से अग्रसर होना चाहिए।'

मघा-दल को लेकर सैनिक राजगृह आ पहुँचे। कर्मचारी पहले ही राजा के पास जा पहुँचे थे। उन्हे भय था, कही कोई राजा के कान न भर दे। अतएव राजा के पास आकर वे बोले—'महाराज! आपकी विजय हुई है। विद्रोही सब पकडे गये हैं। भला, आपके प्रवल प्रताप के सामने उनकी क्या चल सकती है? आपकी सेना भी बहुत योग्य है। उसकी बदौलत वे लोग इतनी जल्दी पकड मे आ सके हैं। यो उन्हें काबू में लाना कोई सरल काम न था।'

सघ-बल का इस प्रकार दुरुपयोग भी किया जाता है। पर सघ-बल को ऐसे कुत्सित कार्य मे बर्बाद न कर

किसी सत्कार्य में लगाना चाहिए । किसी कुत्सित कार्य में, फिर भले ही उस ओर कितना ही आकर्षण या बहुमत हो, सम्मिलित नही होना चाहिए । याद रखना—

सत्यमेव जयते, नानृतम् ।

अन्तिम विजय सत्य की ही होती है, असत्य की नही। सत्य की विजय किस प्रकार होती है, यह मघा के सत्यमय जीवन से स्पष्ट ज्ञात हो जायेगा । मघा और उसके साथी मिलकर तेतीस ही थे। पर वे तेतीस, तेतीस करोड के बराबर थे, यह कहना क्या अनुचित है ? तेतीस की सख्या का बहुत महत्व है। शास्त्र में इन्द्र के गुरु.स्थानीय देवता तेतीस कहे गये है । लोकोक्ति के अनुसार देवता भी तेतीस करोड माने जाते हैं । किस प्रकार इन तेतीस पुरुषो को विजय-प्राप्ति होती है, यह फिर देखेंगे ।



जन-सेवा

(४)

प्रार्थना

श्री मुनिसुव्रत साहवा, दीनदयाल देवा तणा देव के।
तरण तारण प्रभु मो भणी, उज्जवल चित समरू नित्यमेव के ॥
श्री मुनिसुव्रत साहवा ।

श्री मुनिसुव्रत भगवान् की यह प्रार्थना है। परमात्मा की प्रार्थना करने का सार है अपनी लघुता का भान हो जाना। परमात्मा की प्रार्थना करने के लिए अपने वडप्पन को, अपने अभिमान को और अपने अहंकार को छोड देना चाहिए। ऐसा करने पर ही प्रार्थना करने की योग्यता प्रगट होती है।

इस प्रार्थना में परमात्मा को 'दीनदयालु' कहा गया है। परमात्मा जब दीनदयाल है तो प्रार्थना करने वाले को 'दीन' बनना चाहिए। दीन बनकर जब प्रार्थना की जाती है, तभी प्रार्थना मे वास्तविकता आती है। मगर दीन दो प्रकार से बना जा सकता है—सच्चे हृदय मे दीन बनना और दीनता का अनुभव न करते हुए भी दीन बनने का ढोंग करना।

अपने भीतर किस प्रकार की दीनता है, यह बताने के लिए मैं अपनी निजी अपूर्णता परमात्मा के समक्ष उपस्थित करता हूं। इस कसौटी पर तुम भी अपनी अपूर्णता को परखो और तब इस बात का निर्णय करो कि तुम सचमुच प्रभु के प्रति दीन बने हो या दीन बनने का ढोंग कर रहे हो? यह निश्चय मानना कि अगर तुम सच्चे हृदय से दीन नहीं बने हो और दीन बनने का केवल ढोंग करते हो, तो अभी तुम परमात्मा की प्रार्थना के पात्र नहीं बन सके हो। इस प्रार्थना में कहा गया है—

'हुँ अपराधी अनादिनो, जनम-जनम गुना किया भरपूर के।'

हे प्रभो! मैं अनादिकाल का अपराधी हू। मैंने बहुत-बहुत पाप किये है, इत्यादि। इस प्रकार मैं परमात्मा के प्रति विनयपूर्वक प्रार्थना करता हू।

मेरी ऐसी प्रार्थना सुनकर कदाचित् तुम कहोगे कि अनेक पाप करने वाला तो कोई हत्यारा या चोर ही हो सकता है; साधु या श्रावक ऐसा अपराधी नही हो सकता। और जब ऐसा अपराधी नही हो सकता, तो परमात्मा से कहना कि 'मैंने अनेक पाप किये है, मैं घोर अपराधी हू' कहाँ तक उचित है? पर मैं कैसा और कितना अपराधी हू, इस बात पर मैं शास्त्र की दृष्टि से विचार कर सकता हू। अपने सम्बन्ध मे जैसा निश्चयात्मक विचार किया जा सकता है, वैसा दूसरो के सम्बन्ध मे नहीं किया जा सकता। शास्त्र कहते है—बाहर के पापो को समझना सहज है, पर पाप के सूक्ष्म मार्ग को शोध निकालना बहुत कठिन है। बाहर से हिंसा आदि पाप न करना और इसी कारण अपने को विशुद्ध निरपराध मान बैठना भूल है। क्योंकि—

अह पंचहि ठाणेहिं जेहिं सिक्खा न लब्धई ।
थम्भा कोहा पमायेणं, रोगेणालस्सेण य ॥
—उत्तराध्ययन

श्री उत्तराध्ययन सूत्र मे बताया गया है कि गर्व, क्रोध, प्रमाद, रोग और आलस्य, इन पाँच कारणो से परमात्मा की भक्ति और प्रार्थना की शिक्षा नही मिल पाती । इन पांच कारणों को दूर कर परमात्मा की शिक्षा के पात्र बनो । जैसे सिंहनी का दूध सोने के पात्र में ही टिकता है—अन्य पात्र में नही, उसी प्रकार परमात्मा की शिक्षा भी योग्य पात्र मे ही टिक सकती है । वह अयोग्य पात्र या अपात्र में नही ठहर सकती । अतएव परमात्मा की शिक्षा के सुपात्र बनने के लिए क्रोध, प्रमाद आदि दोषो का त्याग कर आत्मा को जागृत बनाना चाहिए । परमात्मा की शिक्षा का पात्र बनने के लिए मैंने तो घर-बार छोडकर दीक्षा धारण की है, इसलिए मुझे पहले शिक्षा का पात्र बनना चाहिए । परमात्मा की शिक्षा का पात्र बनने के लिए पहले यह देखना चाहिए कि आत्मा क्रोध आदि दोषो से मुक्त हुआ है या नही ?

तुमने व्यावहारिक शिक्षा ली है, इसीलिए तुम थोडे मे ही समझ सकोगे । मैं तुमसे यही कहना चाहता हूं कि तुम अपनी शिक्षा का दुरुपयोग न करो । उसे उल्टे मार्ग पर न ले जाओ । आत्म-कल्याण के लिए उसका उपयोग करो ।

परमात्मा की शिक्षा का पात्र बनने के लिए और परमात्मप्रार्थना की योग्यता प्राप्त करने के लिए यह देखना सर्व-

प्रथम आवश्यक है कि अन्त.करण में क्रोध, अभिमान आदि पाप कितनी मात्रा में मौजूद हैं ?

आत्मा भले ही उपर से हिंसा न करता हो, किन्तु अगर उसे यह अभिमान है कि 'मैं हिंसा करता ही नही हू' तो यही अभिमान हिंसा है। इसी प्रकार ऊपर से झूठ न बोलने वाले का झूठ न बोलने का अभिमान भी झूठ है और वह भी हिंसा है। किसी सद्‌गुणी के सद्‌गुण को देखकर प्रमोद पाने के बदले उस पर द्वेष भाव होना और उसे किसी प्रकार नीचा दिखाने का प्रयत्न करना भी हिंसा है। यह सब आत्मा के अपराध है। सूत्र में आठ प्रकार के मदो का वर्णन किया है—जातिमद, कुलमद, वलमद, रूपमद, लाभ-मद, तपमद, सूत्रमद और सत्तामद। इन आठो प्रकार के मदो से पाप की प्रवृत्ति होती है। अतएव परमात्मा की शिक्षा का पात्र बनने के लिए और प्रार्थना का सामर्थ्य-लाभ करने के लिए इन आठों मे से कोई भी मद नही होना चाहिए।

इस दृष्टि से जब मैं अपनी आत्मा के अपराधो की खोज करता हू तो जान पडता है कि अभी मुझ में वहुतेरी त्रुटियाँ मौजूद हैं। इसलिए अगर मैं परमात्मा के प्रति—

'हुँ अपराधी अनादिनो, जनम-जनम गुना किया भरपूर के।'

इस प्रकार प्रार्थना करता हूं—आत्म-निवेदन के रूप मे अपना दैन्य परमात्मा के समक्ष प्रस्तुत करता हू, तो मैं क्या वुरा करता हू ? वडे-वडे विद्वानो ने वहुत-कुछ विचार करके भी यही वात कही है :—

हूं सरूप निज छोड़ी रम्यो पर पुद्‌गले,
झील्यो उलट आणी विषय-तृष्णा जले।

आस्रव वध विभाव करूं रूचि आपणो,
भूल्यो मिथ्या वास दोष हूं परभणी ।
अवगुण ढांकण काज करूं जिनमत-क्रिया,
न तजुं अवगुणनी चाल अनादिने जे प्रिया ।

—श्री देवचद वीसी

इससे हमें यह समझ लेना चाहिए कि—यह आत्मा कहाँ-कहा भूलें करता है ? यह आत्मा, अवगुणो को त्यागने के लिए जो क्रियाएँ करता है, उन क्रियाओं मे वह वास्तव मे अपने अवगुणो को ढँकने की चेष्टा तो नही कर रहा है ? आजकल के अनेक बहिर्दृष्टि लोग दूसरो की दृष्टि मे भले और बड़े बनने के लिए किराये पर कपडे लाकर अपनी तसवीर खिचवाते है, उसी प्रकार, हे आत्मन्, तू दूसरो के आगे भला बनने के उद्देश्य से दुर्गुणो का नाश करने वाली क्रियाओ को, दुर्गुणो को ढँकने के लिए तो नही कर रहा है ? यदि इस चालाकी से तू अपने-आपको ठग रहा हो तो अब बस कर, यह चालाकी छोड दे । पावन क्रियाएँ, दुर्गुणो को छिपाने के लिए नही, वरन् उनका समूल विनाश करने के लिए कर। इसी मे मेरी भलाई है ।

लोग जब बीमार होते हैं तो अपने कर्मों को कोसते है । पर ज्ञानी-जन जानते हैं—कर्म को कोसने से ही रोग नही चला जायेगा । रोग का नाश करने के लिए उसके मूल-पाप से छुटकारा पाना होगा ।

पाप का उदय होने पर सकट आ पडता है और सकट से बचने के लिए लोग फिर पाप का सहारा लेते है । मनुष्य की यह कैसी भयंकर भूल है ! ऐसा करने से तो पापो की परम्परा और बढ़ती चलती है । पूर्वकृत पाप के कारण सकट

शिक्षा और प्रार्थना का पात्र बनता है। आत्मा को निष्पाप बनाने के लिए सदैव एक भावना का चिन्तन करना चाहिए। इस भावना को कवियों ने बहुत सरल रूप से प्रकट किया है। इस भावना को तुम जहाँ ले जाना चाहो वही ले जा सकते हो। जैनदृष्टि से इस भावना मे क्या तत्त्व छिपा हुआ है, यह मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूं। वह भावना कौन-सी है ?

कवियों ने कहा है :—

सुने री मैने निर्बल के बल राम।

पिछली साख भरू संतन की, आड़े सँवारे काम,
जब लग गज बल अपनो बर्त्यो, नेक सर्यो नहिं काम।
निर्बल हो बल-राम पुकारे, आये आधे नाम,
सुने री मैंने निर्बल के बल राम।

आत्मा को राम-बल की अपेक्षा रहती है। अतएव आत्मा को सदा यह भावना बनाये रखना चाहिये कि मुझ मे राम के बल का आविर्भाव हो। राम-बल को आत्म बल भी कहा जा सकता है और परमात्म-बल भी कहा जा सकता है। नाम उसका कुछ भी हो, पर सच्ची आत्म-शक्ति को पाने की भावना निरन्तर बनी रहनी चाहिए।

ज्ञानी-जन दशरथ के पुत्र राम को ही राम नही कहते किन्तु—

रमन्ते योगिनो यस्मिन्निति रामः

अर्थात्—योगी जिसमे रमण करते है वह राम है। इस व्युत्पत्ति-अर्थ द्वारा दशरथ के पुत्र राम का निषेध नही किया गया है। इसमें तो यह बतलाया गया है कि जो राग-

द्वेष से सर्वथा मुक्त है वही सच्चा राम है।

तुम लोग इसी प्रकार का राम-बल प्रगटाओ। पर इस राम-बल को प्रगटाने के लिए तुम्हे आत्मा के विकार दूर करने पड़ेंगे। आत्मा के विकार ज्यों-ज्यों हटते चले जाएँगे त्यों-त्यों तुम्हारी आत्म-शक्ति का आविर्भाव होता चलेगा। तुम्हे अपनी आत्मशक्ति में निश्चल श्रद्धा है तो वह तुम्हारे पास ही है। वास्तव में वह शक्ति तुम्हारी अपनी आत्मा में ही विद्यमान है। इस बात को प्रमाणित करने के लिए दूसरे की साक्षी की आवश्यकता नहीं है। जहाँ संदेह होता है वहाँ साक्षी की आवश्यकता होती है। जहाँ शंका पास नहीं फटकती, वहाँ साक्षी को कौन पूछता है? हाँ, कदाचित् तुम्हें उस शक्ति की अनुभूति न होती हो और उसे प्राप्त करने की इच्छा एवं तैयारी हो, तो दूसरे की साक्षी लेना भी उचित हो सकता है। दावा करना हो तो साक्षी की आवश्यकता है। अगर दावा ही न करना हो, तो साक्षी किस काम की?

सो अगर आत्म-शक्ति प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना हो तो एक क्या हजारों महापुरुषों की साक्षियाँ तुम्हारे सामने प्रस्तुत की जा सकती हैं। विदाई की वेला, मैं तुम्हें अधिक क्या कहूं? मैं यही कहता हूं कि आत्मिक शक्ति को प्रगट करो, तो दूसरी समस्त शक्तियाँ तुम्हारे भीतर आप ही आप प्रगट हो जाएँगी।

अगर तुम यह जानना चाहते हो कि आत्मिकशक्ति तुम्हारे भीतर कहाँ रहती है, तो यह जानने से पहले अपनी आत्मा की खोज करो। यह शरीर आत्मा के सहारे टिका

हुआ है। शरीर मे जो कुछ होता है, वह सब आत्मा की शक्ति की बदौलत ही होता है और तो और, आँख के पलक भी आत्मा की शक्ति से ही गिरते-उठते है। तुम चर्म-चक्षुओ से आत्मा को नही देख सकते। हाँ, इस सम्बन्ध मे अगर गहरा विचार करोगे तो जान पडेगा कि समस्त शारीरिक क्रियाओ का आधार आत्मा ही है। जिस आत्मा की शक्ति से शरीर के सब व्यापार होते है, उस आत्मा को माया-मृषा आदि के द्वारा तुमने अत्यन्त मलीमस बना दिया है। पर यह स्मरण रखना, एक म्यान मे दो तलवारें नही समा सकती। इसी प्रकार जब तक आत्मा मे माया-मृषा की मलीनता घुसी है, तब तक उसमें राम-बल या आत्मिक-सामर्थ्य किस प्रकार प्रकट हो सकता है ? तुम किसी भलेमानुस को अपने घर आने का आमत्रण तो दे दो, परन्तु घर के सब दर्वाजे और खिडकियाँ बद कर लो, तो वह आमन्त्रित व्यक्ति तुम्हारे घर में कैसे घुस सकेगा ? इसी प्रकार तुम राम-बल— परमात्म-बल को चाहते तो हो, पर आत्मा के विकारो को दूर नही करते। ऐसी दशा मे राम-बल कैसे पा सकते हो ? अतएव अगर तुम आत्मा मे से विकार-शक्ति को हटा दो, तो मघा की भाँति तुम्हारे भीतर भी अक्षय राम-बल या आध्यात्मिक सामर्थ्य प्रकट हो सकता है।

मघा का वृत्तान्त

मघा और उसके साथियो को भयकर अपराधियो की भाँति राजा के सामने उपस्थित किया गया। राजा कर्मचारियो की बातो में आ गया और अपराध की जाँच-पडताल किये बिना ही, जोश में आकर कहने लगा— 'प्रजा को त्रास पहुँचाने वाले तुम्हारे जैसे लुटेरे एक क्षण भर भी मेरे

राज्य में नही रह सकते । इन्हें ऐसी सख्त सजा मिलनी चाहिए कि इन्हे देख कर फिर कोई ऐसा अपराध करने की हिम्मत ही न कर सके । इन्हें राजमहल के सामने वाले मैदान में ले जाकर लिटा दो। मैं महल के झरोखे में जाकर बैठता हूं । नागरिक लोगों के सामने इन तेतीसो लुटेरों को हाथियो के पैरो के नीचे दबोच कर कुचलवा डालो ।'

इन लोगो का अपराध क्या है ? इस सम्बन्ध में जरा भी विचार न करके राजा ने सत्ता के मद मे उन्मत्त होकर, कर्मचारियो के कहने मात्र से, तेतीसो जनो को हाथियो के पैरो तले कुचलवा डालने का हुक्म दे दिया ।

राज्य-कर्मचारियो ने राजा की आज्ञा के अनुसार सारी व्यवस्था कर डाली । नगर के नर-नारियो की भीड, राज-महल के मैदान मे, राजा का नया कौतुक देखने के लिए जमा हो गई । मघा और उसके साथी यथासमय मैदान में लाये गये । उनसे कहा गया—'अपने इष्टदेव का अन्तिम समय मे स्मरण कर लो । अब तुम्हे, तुम्हारे कृत्यो का फल मिलने ही वाला है ।'

मघा यह सुन कर बहुत प्रसन्न हुआ । वह विचारने लगा— 'आज हमें, अपने कृत्यो का फल मिलेगा, यह बडी अच्छी बात है ।' फिर उसने अपने शिष्यो से कहा—'तुम लोग मेरे कहने से नही, वरन् अपनी-अपनी इच्छा से मेरे शिष्य बने हो । तुम्हे संकट के समय जरा भी घबराना नही चाहिए । मैं सब के आगे सोऊँगा । हाथी सब से पहिले मुझे ही रौंदेगा । तुम सब मेरे पीछे रहोगे । देखो, घब-राना नही । धीरज रखना । सब ठीक ही होगा ।'

मघा ने अपने शिष्यो को जो उपदेश दिया, इस सबध में, चन्दनबाला की कथा मे कही हुई कविता अगर कही जाये तो अनुचित न होगा। इस कविता का भाव मघा के उपदेश से अत्यन्त साम्य रखता है। अतएव यहाँ भी उसे कहना उचित है। इस कविता की भावना को तुम अपने हृदय मे उतारोगे तो तुम्हारा कल्याण ही होगा।

मघा अपने शिष्यो से कहता है --

शान्ति-समर मे कभी भूल कर, धैर्य नहीं खोना होगा,
वज्र-प्रहार भले सिर पर हो, किन्तु नहीं रोना होगा।
अरि से बदला लेने का मन बीज नहीं बोना होगा,
घर मे कान तूल देकर फिर तुझे नहीं सोना होगा॥
देश-दाग को रुधिर-वारि से हर्षित हो धोना होगा,
देश-काज की भारी गठड़ी, सिर पर रख ढोना होगा।
आँखें लाल, भँवें टेढी कर, क्रोध नहीं करना होगा,
बलि-वेदी पर तुझे हर्ष से, चढ़ कर कट मरना होगा॥
नश्वर है नर-देह मौत से कभी नहीं डरना होगा,
सत्य-मार्ग को छोड़ स्वार्थ-पथ पैर नहीं धरना होगा।
होगी निश्चय जीत धर्म की, यही भाव भरना होगा,
मातृभूमि के लिए हर्ष से, जीना अरु मरना होगा॥

खरी कसौटी के समय ऐसी शिक्षा किस प्रकार समझाई जाती होगी और उसका कैसा असर पडता होगा, यह कौन कह सकता है ? हम लोग तो उस शिक्षा की नकल करते हैं। आत्मा की सम्पूर्ण शक्ति के साथ, अन्त करण-पूर्वक जब यह शिक्षा दी जाती होगी, तब उसके समर्थ प्रभाव के विषय मे कहना ही क्या ?

अगर हम अपने आत्मा को सकट मे पडा हुआ मान-

कर इस प्रकार को उच्च और स्वच्छ भावना भावें तो इसके महत्त्व को कदाचित् समझ सकेंगे। कोई कह सकता है—हमारी आत्मा पर ऐसा कौन-सा सकट आकर पड़ा है, जो हम ऐसी भावना भाते फिरें? उत्तर यह है आत्मा के ऊपर पाप का घोर सकट आ पड़ा है। पाप के सकट—भय से ही साधु या श्रावक बनते हैं। हम भी शान्ति के युद्ध मे जूझने के लिये साधु बने है, खाने-पीने के लिए नही। अतएव प्रत्येक आत्म-कल्याण के अभिलाषी को इस प्रकार की उच्च भावना भानी चाहिए।

मघा ने अपने शिष्यो से कहा—

भावना तश्चित्त प्रसादनम्।

—योगसूत्र

मेरे प्यारे शिष्यो! इस प्रसग पर उच्च भावनाओ द्वारा अपना चित्त खूब प्रसन्न रखना। उच्च भावनाएँ चित्त की प्रसन्नता के लिए अत्यन्त आवश्यक है। 'हमने भलाई का काम किया और हमे ही घोर दड क्यो मिल रहा है'—ऐसा बुरा विचार मन में उदित न होने देना। यह भी मत सोचना कि—'क्या अच्छे कामो का बुरा फल मिलना ही धर्म या ईश्वर की आराधना का फल है? जब हम हाथी के पैरो तले रौंदे जा रहे है, तब भी धर्म अगर आड़े नही आता, तो फिर धर्म कहाँ है?'—ऐसी दुर्भावना मन मे न उगने देना।

ऐसे घोरतर सकट के समय उच्चभावना मे तल्लीन रहना, साधारण व्यक्ति के बल-बूते की बात नही है। पर ऐसे सकटकाल मे उच्चभावना मे तन्मय होने से, कभी ऐसा

अवसर आ जाता है, जब आत्मा चिरतन कल्याण का स्वामी वन जाता है । कहा भी है--

अनेक जन्म ससिद्धिस्ततो याति परांगतिम् ।

—गीता

मघा ने कहा—इस समय कोई भी बुरी भावना को अपने पास न फटकने देना । तुम सामान्य वृक्ष और पृथ्वी से भी हीन सिद्ध न होना । पत्थर मारने वाले को वृक्ष लौट कर पत्थर नही मारता । इसके विपरीत वह उसे मधुर फल देता है । वृक्ष कभी यह नही सोचता कि मैं पत्थर मारने वाले को मधुर फल क्यो दू ?

क्या तुम वृक्ष के समान भी उच्चभावना सेवन करते हो ? तुम वृक्ष के मीठे फल खाते हो, पर उसके वदले मे कटुकता पैदा करो, तो क्या वृक्ष से भी हीन नही हो, ? मान लीजिए, वृक्ष आदि तुमसे कहने लगे--'तुम कौन होते हो मेरे फल खाने वाले ?' तो तुम वृक्ष को निकम्मा समझ-कर उखाड फैंकोगे । पर जव तुम्हारे ऊपर सकट आ पड़ता है, तव तुम कहने लगते हो— 'यह धर्म है किस मर्ज की दवा ? ऐसे धर्म की जरूरत ही क्या है ? यह तुम्हारी दुर्भा-वना नही है ? अतएव चाहे-जैसा संकट का समय आ जाये तो भी 'भावना तश्चित्त प्रसादनम्' इस कथन के अनुसार चित्त को सदा प्रसन्न ही रखो । भावना के विपय मे कहने का समय नही है । अतएव सूत्र रूप मे जो कुछ कहा गया है, उसी को यदि हृदय मे स्थान दोगे तो कल्याण ही होगा ।

मघा ने अपने शिष्यो से कहा—'यह न समझना कि यह अपने कर्त्तव्य-पालन का परिणाम है। यह सकट कर्त्तव्य-

निष्ठा की परीक्षा है, फल नहीं। प्रकृति से मैंने यह सीखा है कि जब आम में बौर आते है तो कोयल 'कुहू-कुहू' कर मधुर स्वर मे कूजने लगती है। कोयल का मधुर स्वर सुन कर कौवे उसे सताने दौडते है। किन्तु कोयल यह कभी नही सोचती कि यह मुसीबत मेरे मधुर स्वर का फल है। कौवे उसे सताते हैं, आक्रमण करते है, फिर भी कोयल अपना मधुर कूँजना नही त्यागती।'

जब कोयल मार खाने पर भी मीठा स्वर सुनाती है, तब विवेक-बुद्धि धारण करने वाले तुम्हारे जैसे मनुष्य, गाली-गलौज का बदला गालियों से चुकाओ, वह कहाँ तक उचित है ? मार के बदले मारना क्या विवेकशीलो को शोभा देता है ?

तुम कह सकते हो—'चुप-चाप' गालियाँ सहन कर लेना और मारने वाले अत्याचारी क सामने भोली-भाली गौ बन जाना, उसका मुकाबिला न करना, एक प्रकार की कायरता है। क्या हमे कायर बन जाना चाहिए ? कायर बन जाने से तो अत्याचारी का हौंसला बढेगा और जगत् मे अत्याचार का नगा नाच होने लगेगा। इस प्रकार परोक्ष रूप से हम चुप्पी साधकर अत्याचार की उत्तेजना में सहायक हो जाएँगे।'

यह कथन वास्तव मे भूल-भरा है। सहिष्णुता, कायरता का चिह्न नही, वरन वीरता का फल है। उत्तेजना का प्रसग उपस्थित होने पर अन्त.करण की निर्बल वृत्तियो पर विजय प्राप्त करके स्वाभाविक शान्ति को सुरक्षित रख सकना साधारण व्यक्ति का काम नही है। अपने ऊपर

सयम का अकुश रखना विजेताओ का धर्म है । बाढ आने पर नदी के प्रवाह मे सभी बह सकते हैं, पर अचल—अटल रहने वाले विरले ही होगे । इसी प्रकार उत्तेजना की आग मे जल मरने वाले ससार मे बहुत है और उस आग पर शान्ति का शीतल नीर छिडकने वाले इनेगिने ही निकलेगे । यह इने-गिने सत्वशाली पुरुष ही जगत् के पथ-प्रदर्शक होते है । इन्ही पुरुषो के सहारे ससार को स्वर्ग बनाने वाले सद्-गुण टिके हैं ।

यह कहना कि चुपचाप अत्याचार सहने मे अत्याचारी को उत्तेजना मिलती है और अत्याचार बढते हैं, सर्वथा विपरीत धारण है । अत्याचार से अत्याचार का सामना करने से अत्याचारों की परम्परा चल पडती है । जैसे रुधिर से रुधिर की शुद्धि नही होती, उसी प्रकार अत्याचार से अत्याचार का शमन नही हो सकता । आग को ईंधन न मिले तो वह जल्दी बुझ जाती है । इसी प्रकार अत्याचार को अत्याचार का ईधन न मिलने से शान्त हो जाता है ।

मघा ने प्रकृति की शिक्षा समझाते हुए कहा—'देखो, कोई कुछ भी करे, पर प्रकृति अपना स्वभाव नही त्यागती । तुम भी अपना स्वभाव छोड कर विभाव के चगुल मे मत पड़ना । वह देखो, मदोन्मत्त हाथी हमे कुचलने के लिए सामने दौड़ा चला आ रहा है । वह हमे कुचल डाले, तो तुम राजा, राजकर्मचारी, हाथी या महावत पर तनिक भी क्रोध या द्वेष मत करना । इन अन्यायियो के नाश होने की भावना अपने अन्त.करण मे न आने देना । इसी में सत्य-धर्म की विजय है । इन अन्याय मे ग्रसे हुए लोगो पर दया-भाव रखना, इनके कल्याण की कामना करना, इनका बुरा

न विचारना। हाँ, कही तुम्हारी भूल हुई हो तो उसे खोजना और दूर करना। अगर तुमने कही भी भूल नही की है तो निश्चय समझना कि तुम्हारा बाल भी बाका नही हो सकता।'

श्री आचारागसूत्र (प्रथम श्रुत स्कन्ध) में एक भावना बताई गई है। उसे जीवन में स्थान देने से पाप का प्रादुर्भाव ही नहीं हो सकता। वहाँ कहा गया है :—

'एस खलु नरीयए, एस खलु मोहे, एस खलु मारे।'

अर्थात्—हिंसा रूप पातक ही नरक है, यही मोह है' और यही मार—मृत्यु है। इस पाप को आत्मा में छिपाये रखना, नरक को आमंत्रण देना है। शास्त्र कहता है—पाप को पाप ही न समझो, वरन् नरक समझो। जब आत्मा में पाप हो, तो आत्मा मे ही नरक मानना चाहिए।

अनाथी मुनि ने कहा है :—

अप्पा नई वेयरणी।

—उत्तरा० २०-३६

अर्थात्—वैतरणी नदी आत्मा मे ही है।

इस प्रकार की उच्चभावना को जीवन मे स्थान देने मे तुम्हारे भीतर पाप को अवकाश ही न मिल सकेगा।

आज धर्म की जो निंदा की जाती है, वह वास्तव मे धर्म की नही, धर्म के पालने वालो की निन्दा है। धर्म के पालने वाले, धर्म का पालन यदि विवेक के साथ करें तो उनके आदर्श धर्ममय जीवन को देख कर धर्म की निंदा करने वालों को भी अपनी मान्यता बदलनी पड़े। श्री आचारांग सूत्र में बताई हुई भावना को आत्मा में स्थान दिया

जाये, तो पापो की गुंजाइश ही न रहे, और आत्मा निष्पाप बन जाये तो दूसरो पर उसका प्रभाव पड़े बिना न रहे।

मघा ने अपने शिष्यों को धर्म की महत्ता समझाते हुए कहा— 'भाइयो! हर्गिज यह न समझना कि इस सकट-काल में हमारा कोई सहायक या रक्षक नही है, अथवा सभी पापरूपी राजा के ही अनुचर हैं। यहाँ पाप का ही राज्य है और उससे डर कर हमारी कोई सहायता नही कर रहा है। विश्वास रखना, हमारा कोई सहायक और सरक्षक है, और वह है—सत्य-धम।'

तुम भी धर्म की महत्ता पर दृढ विश्वास रखो और भलीभाँति धर्माचरण करते जाओ फिर चाहे जितने युवक धर्म का उच्छेद करने को तैयार हो जाएँ, फिर भी वे धर्म का उच्छेद नही कर सकते। गीता मे भी कहा है:—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैन दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः॥

—गीता

आत्मा को शस्त्र छेद नही सकता, अग्नि जला नही सकती, जल बहा नही सकता और हवा सुखा नही सकती। यह आत्मा तेतीस सागरोपम तक नरक की अवस्था भुगत आई है, फिर भी आज उसका अस्तित्त्व बना हुआ है। धम आत्मा का स्वभाव है। जब आत्मा का ऐसा स्वभाव है, तो फिर धर्म का विनाश कैसे हो सकता है?

मघा ने अपने शिष्यो को भावना द्वारा आत्मिकशक्ति का परिचय दिया। मघा के हृदय में तो यह भावना साकार रम रही थी। वह दूसरो को उपदेश देने मे विश्वास नहीं

करता था। वह उपदेश को अपने जीवन में मूर्तरूप देता था। मघा ने जब मन्दोन्मत्त हाथी को सामने दौड़ते आते देखा तो, सबसे पहले मेरे ऊपर पैर रखे—इस विचार से वह सबके आगे लेट गया। उसने शिष्यों से अपने पीछे लेट जाने को कहा। यह हाल देख कर उपस्थित जनता में कोलाहल मच गया। लोग आपस में कहने लगे—'क्या यह चोर-लुटेरे-से जान पड़ते हैं? इनके चेहरे शान्ति से सुशोभित हो रहे हैं—कैसी अनूठी शान्ति और उज्ज्वलता है! पापियों के मुख पर क्या ऐसी अनुपम आभा दृष्टिगोचर हो सकती है? लोगों की सहानुभूति मघा-दल की ओर उत्पन्न हुई और वे उस दल के सत्य के प्रबल प्रभाव से प्रभावित होकर चिल्लाने लगे। उनमें से कितनेक लोग करुणापूर्ण रुदन करने लगे। जान पड़ता था—मघा ने अपनी भव्य भावना से सबका हृदय जीत लिया है।

मदिरा के नशे में उन्मत्त और सत्ता के मद में मस्त राजा अभिमानपूर्वक कहने लगा—'देरी न करो, इन बदमाशों पर हाथी पेल दो और इनका कचरघान कर डालो।'

राजा के आदेश से महावतों ने हाथी छूटा छोड़ दिया। मदमस्त हाथी दौड़ता-दौड़ता मघा-दल के पास आया। उसने मघा को सूंघा। जैसे नाग-दमनी को सूंघते ही भाग जाता है, उसी प्रकार वह मघा को सूंघते ही पीछे लौट पड़ा। यह अद्भुत दृश्य देखकर दर्शकों की प्रसन्नता का पार न रहा। पर मघा के विरोधी कर्मचारी कहने लगे—'अन्न-दाता! देखी आपने इन बदमाशों की बदमाशी! ये लोग तो जादू भी जानते हैं।'

राजा ने कहा—'तुम ठीक कहते हो। सुनते हैं, जादू

में बड़ा प्रभाव होता है। सभव है, इन लोगों के जादू के प्रभाव से ही हाथी वापस लौट आया हो। पर कोई मुजायका नही। दूसरा हाथी लाओ और उससे इनका पतग काट डालो।'

राजा के हुक्म से दूसरा हाथी लाया गया, पर वह भी पहले हाथी की तरह मघा को सूंघ कर वापस भाग गया।

इस प्रकार तीसरा, चौथा, पाँचवा, छठा और अन्त मे सातवाँ हाथी लाया गया। किन्तु तब आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब वे सब पहले हाथी की ही तरह मघा को सूंघ-सूंघ कर वापस लौट भागे।

चकित कर देने वाली यह अभूतपूर्व घटना घटते देख राजा सोच-विचार मे पड गया। उसने मन ही मन कहा—'यह प्रभाव जादू का नही हो सकता। इस घटना का कारण कुछ और ही होना चाहिए।' इस प्रकार विचार कर राजा ने मघा को अपने पास बुलाया।

राजा की आज्ञा पाते ही एक सिपाही मघा के पास गया और उससे कहने लगा— 'उठो, उठो, महाराज तुम्हे बुला रहे है।'

मघा —'हमे बुलाकर महाराज क्या कहना चाहते है? हमे तो यह देखना है कि वास्तव मे हमारे भीतर पाप है या नही? अगर हम पापी है, तो हाथी के पैरो तले कुचल जाना ही योग्य है।'

सिपाही—'तुम्हे जो कहना हो, महाराज से ही कहना।'

मघा—'ठीक, चलिए। तैयार हू।'

मघा उठा, उसने अपने शिष्यों से कहा–'मैं अभी लौट कर आता हूं। तुम लोग इसी प्रकार लेटे रहना, रचमात्र भी डरना नही। यह न समझना कि मै तुम्हे छोड़कर जा रहा हूं। मैं अभी लौट आता हूं।'

मघा राजा के पास आया। राजा ने मघा से पूछा–'तुम कोई मन्त्र जानते हो ?'

मघा–'जी हाँ।'

राजा—'कौन-सा मन्त्र जानते हो ?'

मघा—'जो काम अपने-आपको अच्छा लगता हो, वही काम दूसरो के लिए करना।' यही मेरा मन्त्र है।

राजा–और क्या जानते हो ?

मघा इसके सिवाय तो मन्त्र के साधन जानता हूं।

राजा साधन कौनसे है ? बताओ तो सही।

मघा- किसी की हिंसा न करना, असत्य भाषण न करना, किसी की चोरी न करना, व्यभिचार न करना और मदिरापान न करना। इस मन्त्र के यह साधन है।

राजा क्या केवल यही मन्त्र जानते हो ?

मघा–जी हां, मैं तो यही एक मन्त्र जानता हूं। इसे जान लेने पर किसी अन्य मन्त्र की आवश्यकता ही नही रह जाती।

राजा ने मघा का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा–'मन्त्र तो तुम्हारा बड़ा उत्तम है। क्या तुम इसी मन्त्र का प्रचार करते थे ?'

मघा–'जी हाँ, मैं इसी मन्त्र का प्रचार करता था।'

राजा—'तब तो तुम राज्य की सहायता करते थे। इसमें तुमने बुरा क्या किया है ?'

मघा के साथ बातचीत करके, उसके विरुद्ध शिकायत करने वाले गाँव के कर्मचारियो को बुलवा कर, राजा ने उनसे पूछा—इन लोगों ने क्या अपराध किया था ? इन्होंने गाँव वालो को क्या हानि पहुँचाई थी ?

कर्मचारी लोग राजा का प्रश्न सुनते ही हड़बड़ा गये। उन्हे यही न सूझ पडा कि क्या उत्तर दे ?

इस प्रकार घबराहट में पडा देख राजा ने समझ लिया कि वास्तव मे यह कर्मचारी झूठे है। इन लोगो ने इस पर मिथ्या आरोप लगाया है। गाँव वालो से पूछ कर पता लगाना होगा।

राजा ने गाँव वालो को बुलाया। उनसे पूछा—सच-सच बताना, इन तेतीस अभियुक्तो ने कभी तुम्हें हानि पहुँचाई है ? या दूसरो को हानि पहुँचाते तुमने इन्हे कभी देखा है ?

गाँव वाले एक स्वर से कहने लगे—अन्नदाता ! इन लोगों ने मदिरापान से, वेश्यागमन से, जुआ खेलने से और झगडाटटा करने से रोका है। यह हमारी हानि हो, तो इन्होंने हमें हानि पहुँचाई है। इसके अतिरिक्त और कोई हानि नहीं पहुँचाई।

राजा, ग्राम-वासियो की बात सुनकर चकित रह गया। उसने कर्मचारियो से कहा—'इन लोगो ने क्या अपराध किया है, साफ-साफ बयान करो। ग्राम-वासियो का कथन तुमने

सुना है । मैंने तुम्हारा विश्वास करके बेचारे निर्दोष लोगों को सताया है। इसका उत्तरदायित्व तुम्हारे ऊपर है। भविष्य मे इस प्रकार की झूठी फरियाद करने का साहस कोई कर्मचारी न करे, इसलिए यह आवश्यक है कि तुम लोगो को हाथी के पैरो कुचलवा डाला जाये।'

यह कथन सुनकर मघा ने राजा से निवेदन किया—महाराज ! यह आप क्या गजब कर रहे है ?

राजा—ऐसे अपराधियों को ऐसी ही सख्त सजा मिलनी चाहिए।

मघा—राजन् ! यह लोग अपराधी नही, हमारे महान् उपकारी हैं। जिन लोगों ने आपके साथ मेरा साक्षात्कार कराया है, उन उपकारक पुरुषो को ऐसी सख्त सजा नही मिलनी चाहिए। इसके अतिरिक्त सत्य की प्रभावना में भी ये निमित्त बने है।

राजा—भाई, तुम्हारी नीति अलग है और हमारी राजनीति अलग है। ऐसे अपराधियो को दण्ड न देकर साफ छोड दिया जाये, तो राज्य मे अत्याचारो की धूम मच जायेगी। इसे रोकने के लिए ऐसे शैतानों को दड मिलना ही चाहिए।

मघा—आपका कथन सत्य है। पर नम्रतापूर्वक मैं यह कहना चाहता हू कि अगर ये लोग वास्तव में शैतान ही हैं, तो यह शैतानियत आई कहाँ से ? आपने राज्य के कायदे-कानून बनाये हैं और आपने ही इन्हे कर्मचारी बनाया है। इस दृष्टि से तो सर्व-प्रथम अपराधी आप ही ठहरते हैं।

राजा सच्चा क्षत्रिय था। उसने मघा के वाक्यों को

सच्चाई स्वीकार की और अपने को अपराधी मान लिया। कहा—मैं भी दंड लेने को तैयार हूं और इन सब से पहले मैं हाथी के पैरो से कुचले जाने को तैयार हूं।

मघा—आप किसलिए हाथी के पैर के नीचे रुँदने को तैयार होते हैं ?

राजा - मैंने पाप किया है। उस पाप का प्रायश्चित्त करने के लिये।

मघा—महाराज ! हाथी के पैर के नीचे आकर आत्म-हत्या करने के पाप का प्रायश्चित्त नही होता। पाप के लिए पश्चात्ताप करने से पाप का विनाश होता है। अज्ञान के कारण आपने पाप किया था। अब आपका अज्ञान हट गया है और उसकी जगह ज्ञान प्रगट हो गया है। अगर आप ज्ञान-पूर्वक पश्चात्ताप करेंगे, तो निस्सदेह पाप का नाश हो जायेगा। फिर हाथी के पैर के नीचे कुचल कर प्राण-त्याग करने की क्या आवश्यकता है ?

हमें भी अपने पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए पश्चात्ताप करना चाहिए। हमें परमात्मा से यह प्रार्थना करनी चाहिए कि—

'हुँ अपराधी अनादिनो, जनम-जनम गुना किया भरपूर के।'

इस प्रकार अपने-आपको अपराधी अनुभव करके, अपने पाप को धोने के लिए पश्चात्ताप करोगे, तो तुम भी निष्पाप और पवित्र बन सकोगे।

मघा ने राजा से कहा—अज्ञान के कारण ऐसे-ऐसे अनेक जुल्म बन गये होंगे, पर अब अज्ञान के बदले ज्ञान का प्रकाश

हो गया है। अब तमाम जुल्मों को दूर कर आप स्वयं पवित्र बनिये और फिर दूसरों को भी अपने समान पवित्र बनाइए।

राजा—तुम यथार्थ में सत्पुरुष हो। जान पड़ता है, मानो साक्षात् ईश्वर सामने आ खड़ा हो। जब तुम्हें देखता हूं, तब ऐसा लगता है जैसे ईश्वर को देखता होऊं। सच-मुच तुमने सच्चा आत्मबल पा लिया है।

राजा इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने सिंहा-सन से उठकर मघा का हाथ पकड़ा और कहने लगा—'यह राजसिंहासन तुम्हारे योग्य है। तुम्हारे सामने मुझे तो जमीन पर बैठना चाहिये।'

मघा ने नम्रतापूर्वक कहा—'राज्य का भार मुझ पर न लादिये। राज्य का भार सिर पर लादने से मैं जो सेवा-कार्य कर रहा हूं वह न कर सकूंगा। आप अब निष्पाप बन गये हैं। आप ही सुख से राज्य कीजिए और प्रजा को सुखी बनाइए।'

राजा ने कहा 'हे सत्पुरुष ! आपके दर्शन से मुझे परमात्मा की जैसी प्रतीति हुई है वैसी प्रतीति लाखों पुस्तकें पढ़ने से और लाखों विचार करने से भी नहीं हुई थी। वास्तव में आपके भीतर ईश्वरीयबल है। अब मैं अच्छी तरह समझ रहा हूं कि—

सुने री मैंने निर्बल के बल राम।

आप स्वयं जानबूझकर निर्बल बन गये और किसी के प्रति वैर-भाव न रक्खा तो आप में राम-बल प्रकट हुआ। आपने यह भी न सोचा कि—अमुक मेरा अहित करता है,

तो मैं भी उसका अहित करूँ। आपने अहित करने वाले का भी हित चाहा। अब मैं भी समझ पाया हू कि दूसरे किसी को अहितकारक समझना अज्ञान है। वास्तव में अपना पाप ही अपना अहित करता है। दूसरे मे अहित करने का सामर्थ्य होता, तो आपको सूघ कर हाथी क्यो लौट कर भाग जाता ?'

तुम कह सकते हो—दूसरे भी दूसरे का अहित कर सकते हैं। राजसत्ता तो साँप की तरह दूसरे को डसने मे जरा भी विलब या विचार नही करती। पर यह कथन सही नही है। इस कथन से पहले जरा अपनी पवित्रता-अपवित्रता पर तो एक नजर डाल लो। अगर तुम स्वय पवित्र नही हो, तो दूसरे को दोषी ठहराने का तुम्हे क्या अधिकार है ? सिद्धान्त तो यह है—

सत्यं शिवं सुन्दरम् ।

जो सत्य है वह शिव कल्याणकारी है और जो कल्याणकारी है, वही सुन्दर है। जिसमे विकृति को स्थान नही, वही सुन्दर एवं शिव है। इसलिए दूसरे के छिद्र न देखो। अपने जीवन में सत्य की प्रतिष्ठा करो। जितने अशो मे सत्य की प्रतिष्ठा होगी, उतने अशो में अवश्य कल्याण होगा।

राजा ने मघा से कहा—राज्य-शासन अपने हाथ में लीजिए और मुझे बताइए कि राज्य-शासन किस प्रकार करना चाहिये ?

मघा ने कहा—राज्य-शासन किस प्रकार चलाना चाहिए ?' आप यही जानना चाहते हैं न ? ठीक है। मैं यह बताऊँगा।

मघा के समान सच्चे प्रजा-सेवक कर्मचारी आज खोजने

पर भी नहीं मिलते। आजकल के कर्मचारी सर्वप्रथम अपना बंगला सजाते हैं। यह लोग राज्य की सेवा करते हैं या अपने पेट की सेवा करते हैं, यह कहना कठिन है। पर इतना तो कहना ही चाहिये कि अपने परिश्रम से उपार्जन करके खाने वाले और प्रजा की सेवा करने वाले कर्मचारियों की रीति-नीति कुछ और ही प्रकार की होती है।

ग्रन्थों में ऐसा उल्लेख मिलता है कि राजा ने मघा को अपना प्रधान-मन्त्री बनाया और उसके साथियों को महत्त्व-पूर्ण पदों पर नियुक्त किया।

मघा ने अपने शिष्यों से कहा—देखो, हम लोग निष्पाप थे, इसलिये हाथी भी हमें न कुचल सका। जब हाथी जैसा पशु भी पाप और पुण्य का भेद समझता है, तो हमें कम से कम इतना अवश्य समझना चाहिए कि—परिश्रम किये बिना खाना हराम है और पाप-प्रवृत्ति से सर्वथा बचने के लिए प्रतिज्ञा-बद्ध होना चाहिए।

मघा ने प्रधान का पद स्वीकार कर मगध देश को खूब सुखी और सम्पन्न बना दिया। मगध देश की प्रजा सुख से रहने लगी।

ग्रन्थ के कथनानुसार यह कथा भगवान् महावीर और राजा श्रेणिक के समय से पहले की है। इनसे पहले मघा के शासन-प्रबन्ध से मगध देश इतना धर्म-प्रधान बन गया था कि इन्द्र भी उस प्रदेश को हाथ जोड़ कर अपनी श्रद्धा व्यक्त करता था।

तुम लोग भी अपने हृदय में धर्म को स्थापित करो। इसके साथ ही यह निश्चय करलो कि—'जो बात तुम्हें अच्छी

लगे, वही दूसरे के लिए करनी चाहिए और जो तुम्हे अच्छी न लगे, वह दूसरे के प्रति भी नही करनी चाहिए।' तुम जो दृढ निश्चय करो उसे कठोरता से पालन करना। जिन व्रतो या प्रत्याख्यानो को स्वीकार करो उन्हे आत्मसाक्षी से बराबर पालना। ऐसा करने से तुम्हारा कल्याण होगा।

अन्त मे, मैं अपनी भूलो के लिए तुम सब से क्षमा-याचना करता हू। मेरी हार्दिक भावना है कि तुम सब का कल्याण हो और तुम मेरे शरीर से नही, वरन् मेरे सद् विचारो से प्रेम करो।



खादी और जैनदृष्टि

गांधीजी कहते हैं—'मैं नहीं जानता, मेरी जयंती कब आती है। मुझे तो दो चीजें प्यारी है। भारत, यदि अहिंसा-वादी बना रहना चाहता है, तो मैं भारत के सामने दो विचार प्रस्तुत करता हूं—एक तो यह कि खादी पहनो और दूसरा यह कि चर्खा चलाओ।' यह गांधीजी का कथन है। गांधीजी के इस कथन पर जैनदृष्टि से विचार करना आवश्यक है, अतएव आज इसी विषय पर विचार किया जाता है।

कुछ लोग कहते हैं—हम खादी कैसे पहनें? खादी में जूं पडते हैं और खादी धोने मे पानी अधिक खर्च होता है। अतएव खादी पहनने में हिंसा अधिक होती है। इसके अतिरिक्त जैनधर्म राग-द्वेष करने का निषेध करता है और खादी पहनना तथा विलायती वस्त्र न पहनना, यह क्या राग-द्वेष नहीं है?

'जिसने राग-द्वेष को जीत लिया है वह चाहे तो खादी पहनता है, चाहे तो विलायती वस्त्र पहनता है—उसके मन में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रहता। जैनदृष्टि के अनुसार खादी और विदेशी वस्त्र मे से किसी पर राग और किसी पर द्वेष रखना उचित नहीं है।'—गांधीजी खादी पहनने के सम्बन्ध मे जो कुछ कहते हैं, उसके विरुद्ध जैनदृष्टि

मे यह तर्क किया जा सकता है किया जाता है । हमे गाधीजी के कथन पर और उसके विरुद्ध उपस्थित किये जाने वाले तर्क पर तटस्थ रहकर विचार करना है ।

कहा जाता है कि खादी मे जू पड जाते है और उसे धोने में अधिक पानी काम मे लाना पडता है । परन्तु इस प्रकार आरभ-समारभ देखने बैठेंगे, तब तो अनेक अनीतिमय कार्य करने पडेंगे । उदाहरण के लिए मान लीजिए एक आदमी कहता है– 'मैं ब्रह्मचर्य पाल नही सकता और विवाह करता हू तो आरभ-समारभ होता है। इसके अतिरिक्त विवाह करने से सतान उत्पन्न होगी और झझटें वेहद बढ जाएँगी । अत इस आरभ से बचने के लिए, उत्तम उपाय यह है कि रुपया-दो रुपया देकर, वेश्यागमन करके काम-वासना को तृप्त कर लिया जाये ।' अगर कोई मनुष्य ऐसा कहे तो तुम उसे क्या कहोगे ? निस्सदेह तुम्हे कहना पडेगा कि ऐसा करना महापाप है । इस प्रकार दिखाऊ आरभ को पकड लिया जाये और परोक्ष रूप से महाआरंभ आदि घोर पापो पर नजर न डाली जाये, तो नैतिक जीवन मे हाथ धो लेने पडेगे और जीवन में अनीति का राज्य हो जायेगा । ससार मे जितने भी कृत्य है, उन सब के साथ पाप और पुण्य दोनो लगे रहते हैं । ऐसी अवस्था में हमें पाप-पुण्य की न्यूनता और अधिकता का ही विचार करना चाहिए ।

जिस कृत्य के पाप अधिक होता हो, उसका त्याग पहले करना चाहिए । वेश्यागमन और विवाह के विषय को ही लीजिए । यदि वेश्यागमन भयकर पाप है और नैतिक विवाह करना भयंकर पाप नही है, तो पहले वेश्यागमन का

त्याग करना श्रेयस्कर है। यही बात वस्त्र के विषय मे भी समझनी चाहिए। कपडे के विषय मे यदि गहरा विचार करोगे तो मालूम होगा कि वेश्यागमन से देश को और धर्म को जितनी हानि पहुंची है, उससे कही अधिक हानि चर्बी लगे हुए वस्त्रो के उपयोग मे हुई है। जैसे परम्परा की अपेक्षा वेश्यागमन मे अधिक पाप लगता है, उसी प्रकार परम्परा मे चर्बी के वस्त्रो का उपयोग करने से अधिक पाप होता है। ऐसी स्थिति में आरभ का बहाना करके जैसे विवाह की अपेक्षा वेश्यागमन को अल्पारभी नही माना जा सकता, उसी प्रकार आरभ के बहाने खादी के विरुद्ध भी नही कहा जा सकता।

सभव है चर्बी के वस्त्र धोने मे कम पानी की आवश्यकता होती हो, पर जरा इस बात पर भी तो विचार करो कि परपरा मे उसमे कितना पाप समाया हुआ है! खादी धोने मे अपेक्षा-कृत अधिक पानी का उपयोग करना पडता होगा, पर चर्बी के वस्त्रो की अपेक्षा खादी के पाप का परम्परा से विचार करोगे तो दोनो का भेद साफ मालूम हो जायेगा।

भारतवर्ष पर राग और विलायत पर द्वेष क्यो किया जाये? इसके समाधान मे मैं कहना चाहता हू कि जैनधर्म राग-द्वेष का विधान कदापि नही करता। पर जब तुम सांसारिक उत्तरदायित्व के बोझ से लदे हुए हो, तो नैतिक राग-द्वेष मे बच नही सकते। उदाहरणार्थ-तुम अपने पुत्र को अपना मानते हो, पडौसी के पुत्र को अपना पुत्र नही समझते। पडौसी के पुत्र पर दया और स्नेह तो तुम रखते हो, पर उसे अपना ही पुत्र तो नही मानते! इसी प्रकार

भारत तुम्हारा देश है, तुम भारत मे रहते हो, भारत मे ही तुम्हारा पालन-पोषण हुआ है, अतएव भारत पर अगर तुम्हारा राग है, तो वह स्वाभाविक है ।

भारतवर्ष पर प्रेम रखने का अर्थ यह नही है कि तुम इग्लैड पर द्वेष रखते हो । जहाँ तुम भारत मे प्रेम करते हो वहाँ इग्लैड पर भी तुन्हे दया-भाव रखना चाहिए । आज वह देश भी खराव हो रहा है । तुम उस देश के कपडे का व्यवहार करते हो, इस कारण वह देश दूसरे देश का खून चूसना सीख गया है और विलासी वन गया है । अगर तुम चर्वी लगे वस्त्रो का पहनना छोड दो, तो उस देश में चर्वी के लिए होने वाली हिंसा रुक सकती है । इसके साथ ही उस देश के निवासियो में जो बुराइयाँ घुस गई है वे दूर हो सकती है और उनकी दूसरो का रक्त चूसने की आदत भी मिटाई जा सकती है । इन सब बातो को भली-भाँति समझ लो । फिर करोगे तो वही, जो तुम्हे रुचिकर होगा । अलबत्ता, इस तथ्य को समझ कर प्रवृत्ति करोगे तो महा-आरभ मे बच सकोगे । शास्त्रो मे श्रावक को अल्पारभी, अल्पपरिग्रही कहा है और यह भी कहा है कि श्रावक धर्म-मार्ग के अनुसार अपनी आजीविका चलाता है । श्रावको के वर्णन मे कहा गया है कि, श्रावको ने आरभ का सर्वथा त्याग नही किया था, फिर भी वे महा-आरभ से मुक्त थे । जो महा-आरभ से मुक्त रहे है, उन्हे अल्पारभी होने पर भी शास्त्र 'धर्मी' बतलाते हैं—पापी नही कहते । अतएव चर्वी के वस्त्रो और खादी के वस्त्रो की तुलना करो । देखो—किससे अल्प-आरंभ होता है और किसमे महा-आरभ होता है । फिर विवेक के साथ, जो वस्तु महा-आरभजनक जान

पड़े, उसका त्याग करो।

खादी के कपड़े धोने में अधिक पानी लगता है इसी कारण खादी की निन्दा करना उचित नहीं है। साथ ही चर्बी लगे कपड़ो को धोने मे कम पानी की आवश्यकता होती है, इतने मात्र से उन्हें खादी की अपेक्षा श्रेष्ठतर समझना भी ठीक नहीं है। इनके पीछे कितनी महा-आरंभ की परम्परा विद्यमान है, इस बात का विचार अवश्य करना चाहिए। खादी के उपयोग मे कदाचित् अधिक पानी की हिंसा होती हो, किन्तु चर्बी लगे कपड़ों से तो मनुष्य तक की हिंसा होती है!

मैं यह नहीं कहता कि तुम खादी पहनो, मैं तो यह कहना चाहता हूं कि महा-आरंभ और अल्प-आरंभ को समझो और महा-आरंभ से बचो। अल्पारंभ से भी छूटने की भावना रखो। कदाचित् अल्प-आरंभ से न बच सको, तो महा-आरंभ से तो अवश्य ही बचो। कपड़ो का तुम सर्वथा त्याग करके नग्न रह सको तब तो ठीक है; अगर ऐसा न कर सको और कपड़ा पहनना अनिवार्य समझो तो महा-आरंभ का तो त्याग करो। जिस कपड़े मे चर्बी लगी हो, वह आरंभ की दृष्टि मे त्याज्य है।

खादी पहनने का विधान करना जैन साधु की भाषा की दृष्टि से उचित नहीं है। जैन साधु प्रवृत्ति का उपदेश नहीं देते। उनका उपदेश निवृत्ति रूप होता है। साधारण मनुष्य कह सकता है कि - 'पानी छान कर पीओ।' पर हम ऐसा नहीं कह सकते। हम तो यही कह सकते हैं कि- अनछाना पानी मत पीओ। हम साधुओं को भाषा का विवेक

रखना भी चाहिए। लड़की का वर कहो या दामाद (जमाई) कहो, दोनो का अर्थ एक ही है। किन्तु एक कथन विवेक-युक्त है, जबकि दूसरा अविवेकपूर्ण है। इस प्रकार तात्पर्य एक-सा होने पर भी भाषा की दृष्टि से उसमे अन्तर हो जाता है। अतएव मैं यह कहता हूं कि चर्बी वाला कपडा त्याज्य है।

गाधीजी कहते हैं खादी पहनो और चर्खा चलाओ। उनके कथन का आशय यह है कि—जब मैं खादी पहनने को कहता हूं, तब खादी आसमान से तो टपक पडेगी नही। खादी उत्पन्न करने के लिए रचनात्मक कार्य करना पड़ता है। तभी खादी तैयार होती है। चर्खा चलाने से खादी बनती है और कपडे के निमित्त देश का जो पैसा परदेश मे जा रहा है, वह भी बच सकता है। इस प्रकार चर्बी लगे कपडे के लिए होने वाली हिंसा से भी बच जाओगे और साथ ही विदेश में जाने वाला पैसा—जो पाप के कामो मे सहायक होता है— देश मे रहेगा और उससे गरीबों का पालन होगा। चर्खा के विषय में गाँधीजी का यह कथन है। इस कथन को जरा जैनदृष्टि से देखिए।

कहा जाता है कि गाधीजी ने जैनो के महाव्रत धारण नही किये हैं। गाधीजी स्वयं भी नही कहते कि वे महा-व्रतधारी हैं। पर मेरे विषय में यह कहा जा सकता है कि—'आप महाव्रतधारी हैं, अतः जैनदृष्टि से आपको चर्खे का निषेध करना चाहिए। क्योंकि चर्खा गुंजार करता हुआ घूमता है और उससे जीवहिंसा होती है। अतएव आपको चर्खा न कातने का ही उपदेश देना चाहिए।'

अगर तुम लोग बिलकुल कपड़े पहनते न होते, तो यह

उपदेश देकर मैं अपने-आपको धन्य मानता। मगर तुम कपड़ों का व्यवहार करना नहीं छोड़ सकते। ऐसी दशा में चर्खा न चलाने का उपदेश देना, तुम्हें एक महान् पातक में पटकना होगा। मान लीजिए एक बाई चक्की चलाकर, आटा पीस कर खाती है। मैं उसे चक्की न चलाने का उपदेश देकर उसे चक्की चलाने से रोक देता हूं। पर उस बाई को खुराक के लिए आटे की आवश्यकता पड़ती है। ऐसी अवस्था में वह मशीन से चलने वाली चक्की का सहारा लेगी और मेरे उपदेश के कारण अल्प-आरभ के बदले महा-आरंभ के पाप में पड़ जायेगी। इसके बदले यदि मैं यह उपदेश दूँ कि तुम मशीन का पिसा आटा खाना छोड दो, तो वह कह सकती है कि इस अवस्था मे मुझे हाथो चक्की चलानी पड़ेगी। पर क्या चक्की चलाने का पाप मुझे लगेगा ? नहीं। जब मुझे मशीन के आटे के त्याग का उपदेश देना पड़ेगा, तो मुझे यह बताना पडेगा कि मशीन और चक्की से होने वाले पाप में कितना अन्तर है ? मुझे यह भी कहना पड़ेगा कि मशीन से पिसे और चक्की से पीसे आटे में नैतिक दृष्टि से इतना ही अन्तर है जितना अन्तर मक्खन निकाले दूध मे और बिना मक्खन निकले दूध मे है। दीखने मे तो दोनों प्रकार के दूध एक-से रंग के दिखाई देते हैं परन्तु वास्तव में दोनो मे बहुत भेद है। इसी प्रकार मशीन-चक्की और हाथ-चक्की मे होने वाले आरभ में भी महान् और अल्प का अन्तर है। मशीन-चक्की मे महा-आरभ है और हाथ-चक्की में अल्प-आरभ है। इस प्रकार नैतिक और परमार्थिक दृष्टि से मशीन-चक्की का आटा खाना त्याज्य है। चर्बी से बना हुआ घी और बाजारू दूध-दही आदि त्याग दोगे तो अहिंसा की अपूर्व ज्योति से तुम्हारा हृदय जगमगा

जायेगा । इस प्रकार जब महा-आरंभ से बचना होता है (और सम्पूर्ण-आरभ का त्याग करना शक्य नही होता) तब अल्प-आरभ के अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग ही नही रहता। आरभ मात्र से तो उसी अवस्था मे बचा जा सकता है जब आरभ-जनक कृत्यो को और उसके फल को सर्वथा त्याग दिया जाये । इसलिए गाधीजी कहते हैं— अगर खादी पहनना है तो चर्खा चलाने के सिवाय और कोई रास्ता नही है। चर्खा नही चलाओगे तो मील का आसरा खोजना पडेगा । अतएव यह विचारना आवश्यक है कि अधिक आरभ मील मे होता है या चर्खे में ? मील मे अधिक आरभ होता है, इस सत्य को कौन अस्वीकार कर सकता है ? वह मील, जिसमे घोर आरभ होता है, चर्खा चलाये विना बद नही हो सकती, और मील बद हुए विना महा-आरंभ रुक नहीं सकता ।

गाधीजी वैश्य है, व्यापारी जाति मे जन्मे है। वे ऐसी बात बताते हैं, जिसमें खर्च थोड़ा हो और लाभ अधिक हो । इसी कारण वे तुमसे महा-आरभ से बचने के लिए कहते है । तुम व्यापार कैसा पसद करते हो ? जिसमें खर्च थोड़ा और लाभ अधिक हो, या जिसमे लाभ थोडा हो और खर्च अधिक हो ? हाँ, तुम व्यापार मात्र को त्याग दो, तो बात दूसरी है । पर तुम गृहस्थ हो और आजीविका के साधन का त्याग नही कर सकते और हम भी तुम्हे भीख माँगकर खाने को नही कह सकते । यदि कोई साधु ऐसा आदेश देने लगे तो वह अविवेकी ही कहा जायेगा । इस प्रकार जब भीख माँग कर खाना इष्ट नही है, तो व्यापार के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या है ? कृषि, व्यापार आदि नीतिपूर्ण उपायो

से ही जीवन-निर्वाह हो सकता है। अतएव इन सबको छोड़-छाड़ कर भीख माँगने का उपदेश तुम्हे नही देता; पर मैं यह अवश्य कह सकता हू कि पन्द्रह कर्मादानो का त्याग करो। इस प्रकार गाधीजी के कथनानुसार चर्खे का आश्रय लेने से, मील द्वारा होने वाले पाप से छुटकारा मिल सकता है। महा-आरभ से बचकर, अल्प-आरभ से आजीविका उपार्जन करने या जीवन-निर्वाह करने मे बुराई क्या है? जैन-दृष्टि से ऐसे कृत्य को किस प्रकार बुरा कहा जा सकता है?

यह आशका की जा सकती है कि शास्त्रो मे क्या कोई ऐसा उदाहरण मिलता है, जिससे यह जाना जाये कि पहले भी किसी ने चर्खा चलाया था? इस सम्बन्ध मे यही कहना है कि खोज करोगे तो शास्त्रों मे ऐसे उदाहरण मिल सकेंगे।

शाकरभाष्य मे जो कुछ कहा गया है, उस दृष्टि को सन्मुख रखते हुए जैन शास्त्रो पर दृष्टि-निपात करोगे तो जैन शास्त्रो का महत्व समझ सकोगे। शाकरभाष्य में अर्थवाद के तीन भेद बताये गये हैं (१) अनुवाद, (२) गुणवाद और (३) सद्भूत अर्थवाद। किसी दूसरे प्रमाण से सिद्ध वस्तु के गुण-दोष कहना अनुवाद है। जैसे—अग्नि शीतलता मिटाती है, पानी प्यास बुझाता है, इत्यादि कथन अनुवाद हैं, क्योकि यह दोनो बातें अनादिकाल से प्रसिद्ध हैं और प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध है। दूसरा भेद गुणवाद है। जैसे अमुक स्त्री चन्द्रमुखी है। यद्यपि स्त्री का मुख चन्द्रमा नही होता, परन्तु उसके मुख पर शीतलता और सौम्यपन होने के कारण जो चन्द्रमा के विशेष धर्म हैं— उसे चन्द्रमुखी कहा जाता है। अतएव ऐसा कथन गुणानुवाद है। तीसरा भेद सद्भूत अर्थवाद है। जैसे—स्वर्ग और नरक नहीं

हैं, इस प्रकार कहना। ऐसा कहने वाले से अगर कोई पूछे कि—तुम्हारा कथन किस प्रमाण से सिद्ध है? तो वह कहेगा—क्या किसी ने स्वर्ग-नरक को देखा है? इसके उत्तर मे कोई यह कहे कि—क्या तुम यह देख आये हो कि स्वर्ग-नरक नही हैं? अगर तुम देख नही आये तो निषेध कैसे करते हो? इस प्रश्न के उत्तर मे पूछने वाला कहेगा कि—स्वर्ग-नरक का अस्तित्व सिद्ध करने वाला सद्भूत प्रमाण है। किसी भी अन्य प्रमाण के विषय मे सन्देह हो सकता है, परन्तु शास्त्र के विषय मे किसी भी प्रकार का सदेह नही हो सकता और जब तुम, स्वर्ग-नरक नही है, ऐसा देख नही आये हो, तो तुम किस प्रमाण से उनका खडन करते हो? जो वीत-राग-प्रणीत शास्त्र है वह सद्भूत प्रमाण है। इस प्रकार जिस बात के बिना, दूसरे प्रमाण का खडन नही किया जा सकता, उसका प्रतिपादन वीतराग-भाषित शास्त्रो में है, यह बात सद्भूत अर्थवाद है। इस प्रकार देखना चाहिए कि शास्त्र मे कही चर्खा चलाने का प्रमाण मिलता है या नही?

गाधीजी चर्खा चलाने को कहते है, इसलिए मैं उस कार्य को आरम्भ-हीन नही कहता। किन्तु जो बात जिस स्वरूप मे है, उसे उसी प्रकार कहना चाहिए। पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज जब काठियावाड में विराजते थे, तब नानालाल कवि और हरिशकर पड्या उनसे मिले। उन्होने गांधीजी के विचार पूज्य-श्री को बतलाये। इससे पहले पूज्य-श्री ने गाधीजी के विचार नही सुने थे। जब उन्होने गांधी जी के विचार सुने तो कहा—'यह विचार तो मेरे हृदय के विचार हैं। गांधीजी बुरा क्या कहते हैं?' इस प्रकार जो बात सगत थी, पूज्य-श्री ने भी वह स्वीकार की थी। इस

प्रकार जो सत्य होगा उसे मैं सत्य ही कहूंगा, जो असत्य होगा उसे असत्य कहूंगा, और ऐसा कहने से मैं रुक नही सकता ।

सूयकडांग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कंध के उपोद्‌घातकार के निर्युक्तिकार ने जो वर्णन किया है और उसके टीकाकार ने जो स्पष्टीकरण किया है, उसमें आर्द्रकुमार की कथा आती है । उस कथा मे बतलाया गया है—आर्द्रकुमार मुनि हो गये थे और किसी स्थान पर ध्यान-मग्न खडे थे । वही पास में कुछ बालाएं क्रीडा कर रही थी । वे बालाएं दौड-दौड कर खंभा पकडती थी और जिस खंभे को पकडती थी उसी को अपना पति कह देती थी । श्रीमती को यह न मालूम पडा कि यह मनुष्य है । आर्द्रकुमार अँधेरे मे खडे थे । श्रीमती ने दौड़कर, आर्द्रकुमार को खभा समझ कर पकड लिया और कहने लगी– 'यह मेरा पति है ।' उसकी सखियो ने कहा– 'अरी तू धोखा खा रही है, वह खभा नही—पुरुष है ।' कथा मे यह भी लिखा है कि श्रीमती आर्द्रकुमार की पूर्वभव में पत्नी थी । पूर्वभव के सस्कार वर्तमानभव में भी प्राय: विद्यमान रहते हैं, इस कारण श्रीमती हठ पकडकर वही बैठ रही । श्रीमती के पिता को जब यह वृत्तान्त विदित हुआ तो वह उसे समझाने के लिए वहाँ आया और उसने समझाने का भरसक प्रयत्न किया । कहा 'यह मुनि तेरे योग्य पति नही हैं । यह मेरे घर के योग्य जमाई भी नही हैं ।' पर श्रीमती अपने हठ से टस से मस न हुई । लाचार हो पिता ने सोचा—'जब श्रीमती विवाह करेगी ही, तो मैं क्यो वृथा हठ करू ? मैं उसे क्यो रोकू ?' इस प्रकार सोचकर और अनेक तरह से श्रीमती की परीक्षा करके उसने श्रीमती

को उसकी इच्छानुसार चलने की स्वतन्त्रता दे दी। उस समय वहाँ सुवर्ण-मोहरो की वृष्टि हुई। वहाँ का राजा सुवर्ण-मोहरे देखकर ललचाया और उन्हे लेने को उतारू हो गया, परन्तु दैवीकोप के कारण उसे अपना विचार बदलना पडा। यह सब विचित्र घटना देखकर आर्द्रकुमार सोचने लगे—'देवता जिसकी सहायता करते हैं और जो मुझे हृदय से चाहती है, उसे किस प्रकार अस्वीकार किया जाये ?' इस प्रकार विचार कर आर्द्रकुमार ने श्रीमती से कहा—'अप्सराओ में भी मुझे मोहित करने की शक्ति नही है, पर तुम्हारी सरलता और प्रेम ने मुझे मुग्ध कर लिया है। तुम्हारे निश्चल निश्चय ने मुझे चचल बना दिया है। पर पहले एक वात तुम्हें स्पष्ट बतलानी होगी। यह बताओ-तुम्हारे साथ मुझे कितने दिन रहना होगा ? मेरे हृदय में वैराग्य है और विषय-वासना उसे दवा नही सकती। फिर भी तुम्हारे स्नेह की खातिर ही मै तुम्हारा साथ देना चाहता हूं।' श्रीमती ने वारह वर्ष तक आर्द्रकुमार के साथ रहने की प्रार्थना की। आर्द्रकुमार वचन-बद्ध होकर श्रीमती के साथ रहने लगे। आर्द्रकुमार से श्रीमती को पुत्र की प्राप्ति हुई। श्रीमती अपने पति के विछुड़ने के दिन गिनती रहती थी। जब उसके जाने का दिन सन्निकट आया, तो उसे चिंता होने लगी, वह सोचती—'पति तो मुझे छोडकर चले जाएँगे पर उनके जाने के बाद मै अपना जीवन कैसे व्यतीत करूगी ?' देवो ने सुवर्ण-वृष्टि द्वारा वारह करोड मोहरे श्रीमती को दी थी और उसके धनवान पिता ने भी धन दिया होगा। पर वह विचारती थी—'यह सव धन और वैभव मेरे आमोद-प्रमोद के लिए नही है। अगर मैं इस धन के आधार पर ही रही तो मेरा शील सुरक्षित न रह सकेगा। इस सारे धन पर पुत्र का अधि-

कार है। फिर भी जीवन-निर्वाह के लिए कोई न कोई आधार तो चाहिए। मगर किसका आधार लूं—किस सहारे जीऊं? पुत्र अभी बालक है, अन्यथा संयम धारण करना श्रेयस्कर था। तब जीवन-निर्वाह के लिए चर्खा चलाना ही एक-मात्र उत्तम उपाय है। यद्यपि पति के वियोग से मैं अनाथ बन रही हूं, मगर चर्खा मुझे सनाथ बनाये रखेगा।'

मुनि आर्द्रकुमार यद्यपि गृहस्थ हो गये थे, फिर भी उनके हृदय-पटल से धर्म के संस्कार धुल नहीं गये थे। ऐसा होता तो वह दोबारा मुनि न बनते। चर्खा चलाने में आरम्भ-समारंभ होता है, यह बात आर्द्रकुमार की पत्नी नहीं जानती थी, ऐसी कल्पना करना असंगत है। फिर भी वह चर्खा चलाती और सोचती थी—"जब पति मुझे त्यागकर चले जाएँगे, तो मैं अपना धर्म किस प्रकार निभा सकूंगी? मेरे पास धन है, पर उसका आश्रय लेने से मैं विकार का शिकार बन जाऊंगी। अत. चर्खा कातना और उसकी सहायता से जीवन बिताना ही मेरे लिए कल्याणकर है। चर्खे की सहायता लेने से मेरे शील की भी रक्षा होगी और मेरा धर्म भी बचा रहेगा। इसके अतिरिक्त इससे मेरी आजीविका भी चल जायेगी। जब दूसरे काम में अधिक फँस जाऊंगी, तब चर्खा कम चला सकूंगी और इससे खाने को भी कम मिलेगा। अगर मैं अधिक खाना चाहूंगी, तो मुझे अधिक समय तक चर्खा चलाना पड़ेगा। इससे लाभ यह होगा कि मैं अपना समय व्यर्थ बर्बाद न कर सकूंगी और निठल्लेपन से आने वाले विकारों से भी बच पाऊंगी।"

मैं जो शब्द बोल रहा हूं, कथा में लिखे नहीं हैं। जिस प्रकार बीज से वृक्ष का विस्तार होता है उसी प्रकार

मूल वस्तु का यह विस्तार है । श्रीमती ने विकारो से बचने के लिए चर्खे का आश्रय लिया था । आज विधवा स्त्रियाँ चाहे जितना खाएँगी, पीएँगी, पर कोई उनकी ओर उँगली नही उठाएगा । पर अगर वह चर्खा चलाना आरम्भ करेगी तो निन्दा का बाजार गर्म हो उठेगा । तात्पर्य यह है कि श्रीमती ने सादगी से जीवन-यापन करने के लिए चर्खे का सहारा लिया था । आज गाधीजी भी सादा जीवन विताने के लिए चर्खा चलाने की बात कहते हैं। इस कथन में जैन-दृष्टि से बाधा क्या है ? जिससे अहिंसा का पालन होता हो और महा-आरम्भ से छुटकारा मिलता हो, उस वस्तु को स्वीकार करना जैनदृष्टि से विरुद्ध नही है और कदाचित् कोई अहिंसा के विरुद्ध कुछ कहे तो उसे अस्वीकार कर देना चाहिए । कहने वाला चाहे कोई भी क्यो न हो, उसकी बात अगर अनुचित है तो उसका विरोध किया जाना चाहिए । वास्तविक बातो को मान्य करना चाहिए और अवास्तविक बातों का विरोध करना चाहिए ।

खादी पहनने और चर्खा कातने का उपदेश देने वाले 'गांधीजी से अब तक मेरी मुलाकात नही हुई है । जौहरीजी ने दिल्ली में मुलाकात का प्रबन्ध किया था, परन्तु अचानक उन्हे कोई विशेष कार्य आ पडा और उनके सरक्षक पुरुषो ने कहा – गांधीजी की महाराज से मिलने की तीव्र इच्छा है पर इस समय अगर वे मिलने आते हैं तो दूसरे कार्य रुक जाते हैं । ऐसी दशा मे आप जो कहे, किया जाये ?' जौहरी को कहना पडा–'देश के कार्य को हम क्षति पहुँचाना नही चाहते ।' इस प्रकार गांधीजी से मैं साक्षात् नही मिल सका । परन्तु उनके सिद्धान्त मैंने देखे है – समझे

है। भगवान् महावीर को भी साक्षात् न देखने पर भी उनके सिद्धान्तो को हम देखते और मानते हैं। वास्तव में जो पुरुष अपना सर्वस्व उत्सर्ग कर अहिंसा के प्रचार मे लग जाता है, वही महापुरुष के रूप में पहचाना जाता है।

गांधीजी ने अपने सासारिक सुख को छोड़ दिया जबर्दस्त कमाई वाला वैरिस्टरी का धन्धा भी छोड़ दिया और अहिंसा के प्रचार मे तथा प्रजा के कल्याण मे अपना संपूर्ण जीवन लगा दिया है। ऐसा पुरुष कोई अनुचित बात कहता है, यह कैसे कहा जा सकता है ? उसके कथन का विरोध किस प्रकार किया जा सकता है ? आज गांधीजी को संसार महापुरुष मानता है। अमेरिका के उच्च पादरी ने भी कहा है कि इस समय ससार मे सबसे महान् पुरुष मोहनदास कर्मचन्द गाधी है।

अमेरिका-निवासी जनता ईसाई धर्म का पालन करती है फिर भी वह गाधीजी को महापुरुष मानती है। फिर भारत मे तो उन्होने अहिंसा का प्रचार किया है और काठियावाड मे उनका जन्म हुआ है, अतएव भारतवर्ष और काठियावाड में उन्हें विशेष रूप से माननीय माना जाये तो इसमें अस्वाभाविक क्या है ? भारतवर्ष और विशेषत काठियावाड के लिए तो यह गौरव की बात है कि तुम्हारे यहाँ जन्मा हुआ एक पुरुष भारतवर्ष को उन्नति की ओर अग्रसर कर रहा है और समस्त ससार मे एक नया प्रकाश फैला रहा है।

जिसमे जो गुण हो, हमे उस गुण को ग्रहण करना चाहिए। जो लोग नाम से बड़े हैं, पर दुर्गुणो का प्रचार करने में ही अपने बडप्पन का प्रयोग करते हैं, उनके साथ हमारा कोई लेन-देन नही है।

सोचते-सोचते मुझे एक चौभंगी याद आती है।

संसार में चार प्रकार के आदमी होते हैं—(१) पहले प्रकार के लोग गुण ही देखते हैं, रूप नही देखते। (२) दूसरे प्रकार के रूप ही देखते हैं, गुण नही देखते। (३) तीसरे प्रकार के लोग रूप देखते हैं और गुण भी देखते हैं और (४) चौथे प्रकार के वे लोग हैं जो न गुण देखते हैं, न रूप ही देखते है। इस चौभंगी के आधार से जो लोग गांधीजी को देखने गये थे, वे यह निर्णय कर सकते है कि उनका उद्देश्य क्या देखना था?

'हम गांधीजी के आगे भले दिखलाई पड़ें'—इस विचार से कुछ लोग खादी पहन कर भी गांधीजी को देखने गये होगे। इस प्रकार जिन्होने भले दिखलाई पड़ने की गरज से ही खादी पहनी होगी, उनके संबंध मे यह कहा जा सकता है कि उन्होंने रूप ही देखा है, गुण नही देखा। कुछ लोग ऐसे भी होंगे जो सोचते हैं—गांधीजी के भौतिक शरीर को देख कर क्या करना है? उन्होंने जो कर्त्तव्य बताया है उसी का पालन करना चाहिए। अहिंसा और सत्य के पथ पर चलने के लिए उन्होने मांस, मदिरा और चरबी लगे कपड़ो का त्याग बतलाया है, अतएव हमें तो उनके द्वारा प्रदर्शित कर्त्तव्य को ही अपनाना चाहिये। इस प्रकार कहने और सोचने वालो ने रूप नही वरन् गुण देखा है, यह कहा जा सकता है।

मैंने गांधीजी की आत्म-कथा मे पढा है कि जब वे पहली बार विलायत जा रहे थे तब उन्होंने अपनी सम्प्रदाय के मुनि श्री बेचरजी स्वामी के समक्ष मांस, मदिरा और परस्त्री-सेवन का त्याग किया था। इसी प्रतीज्ञा की बदौलत गांधीजी आज गांधीजी बन पाये हैं। नही तो कौन जाने

वे क्या होते ? बेचरजी स्वामी को मैंने देखा नही, केवल उनका नाम सुना है। परन्तु तुम में से कोई ऐसा होगा जिसने उनकी सेवा की होगी। इस महात्मा ने इस त्याग से खरी वस्तु ऐसी सुदृढ तिजोरी मे सुरक्षित कर दी कि उस त्याग से वे जगत्प्रसिद्ध हो गये। इस प्रकार त्याग कर के वे विलायत गये। वहाँ जाने पर अनेक ऐसे प्रसग आये जिन पर किये हुए त्याग से च्युत होना सभव था, पर गाधीजी ने दृढता से यही कहा--जिन महात्मा के समक्ष मैंने त्याग किया है, उन महात्मा को और जिनकी प्रेरणा से मैंने त्याग किया है उन अपनी माता को मैं हर्गिज धोखा नही दे सकता। इस प्रकार गाधीजी ने मास-मदिरा और पर-स्त्री-सेवन का त्याग किया; और इसी त्याग के प्रताप से ही आज गाधीजी जगद्वद्य बन सके हैं और जनता उन्हे देखने के लिए टूटी पड़ती है।

जो मनुष्य गाधीजी को देखने जाता है, पर गाधीजी ने जिन मास, मदिरा और पर-स्त्री-सेवन रूप दुर्गुणो का त्याग किया था, उन दुर्गुणो का त्याग नही करता, वह भी क्या गाधीजी को समझ सका है ? वह क्या उन्हें सम्यक् प्रकार से देख सका है ?

कहने का तात्पर्य यह है कि एक ऐसे प्रकार के लोग होते हैं जो रूप देखते हैं -गुण नही देखते। दूसरे प्रकार के लोग रूप देखने की उत्कठा नही रखते, सिर्फ उनके बताये मार्ग पर चलते है। वे उनके गुण देखते हैं और उन गुणों को ग्रहण करते हैं। तीसरे प्रकार के लोग ऐसे होते हैं, जो शरीर को भी देखते हैं और कार्य का भी अनुसरण करते हैं। वे सोचते है – जिस कार्य से देश, जाति और आत्मा

का कल्याण होता है और अहिंसा का पालन होता है, ऐसी वस्तु गाधीजी से हमें मिली है; अतएव गाधीजी के दर्शन करना चाहिए और उनके कार्यों को अपनाना चाहिए। यही हमारे लिए कल्याणकर है। तीन प्रकार के लोग तो ऐसे होते हैं। चौथे प्रकार के लोग इन सबसे निराले है। वे न तो गाधीजी के शरीर को देखते है और न उनके कार्यों का का अनुसरण करते है। यही नही, वे गांधीजी की निन्दा करते हैं और छाती ठोक कर यह कहने मे भी नही हिचकते कि--गाधीजी ने ही हमारा अहित किया है।

ससार में चार प्रकार के मनुष्य होते है, यह तो भगवान् ही बता गये हैं, परन्तु तुम उनमें से किस श्रेणी मे रहना चाहते हो ?--अपने अन्तकरण मे इसका विचार करो।

जिनके समक्ष त्याग करने मात्र से गार्धीजी मास-मदिरा, पर-स्त्री-सेवन से बच सके और इस कारण गाधीजी सदैव उन के प्रति कृतज्ञ रहे, तुम उन्ही महात्मा के शिष्य हो ! फिर भी अगर तुम केवल रूप को ही देखो और गुण को न देखो, तो इससे क्या होना-जाना है ? तुम जिन्हे अपना गुरु मानते हो, उनके समक्ष त्याग धारण करके गाधीजी अपनी रक्षा कर सके और एक बार धारण किये त्याग को दृढता-पूर्वक पालन कर सके; और तुम केवल उपदेश सुनकर बैठे रहो और उसे कार्य रूप में परिणत न करो, तो यही कहना पड़ेगा कि तुम रूप-दर्शी हो, गुण-दर्शी नही हो। स्वय गाधीजी जिन महात्मा का उपकार स्वीकार करते हैं, उन महात्मा के शिष्य होते हुए भी अगर तुम अहिंसा की वृद्धि करने वाली बातो को जीवन में न अपनाओ, तो तुम्हे क्या कहना चाहिए ? तुम दिन और रात उपदेश सुनते हो, उपदेश सुनने

के लिए दूर देश से आते हो, फिर भी तुम्हारे हृदय मे अहिसा-वर्द्धक बाते नही उतरती, इसका कारण क्या है ? इसके विपरीत गाधीजी ने एक ही बार के उपदेश को सदा के लिए हृदय में स्थान दिया और नाजुक से नाजुक मौको पर भी उस उपदेश और त्याग के विरुद्ध कार्य नही किया, इसका क्या कारण है ? इसके कारण पर अगर गहरा विचार करोगे तो ज्ञात होगा कि उनके हृदय में सच्ची साधुता के प्रति सच्ची श्रद्धा और प्रगाढ प्रेम है। वे कल यहाँ आये थे और कहते थे---'यद्यपि मेरे पास समय न था, पर जब मैं यहाँ आया हू तो आपसे मिले बिना जा भी कैसे सकता हू !' उनके इस कथन से मालूम होता है कि सच्चे साधु-सन्तों के लिए उनके हृदय मे कसा और कितना स्थान है ? तुम्हारे हृदय मे श्रद्धा की कमी है। यही कारण है कि तुम्हारे हृदय मे अहिसा को स्थान नही मिलता और जिन्हे तुम अपना गुरु मानते हो उनका अहिमा-विषयक उपदेश प्रायः निरर्थक जाता है।

साधु-सन्तो की यह विशेष जिम्मेवारी है कि वे तुमसे चर्वी के वस्त्रो का त्याग करावे। साधु-सन्त अपनी जिम्मेवारी को समझें, तो अहिसा पालन हो सकता है और तुमसे चर्बी के वस्त्रो का त्याग भी कराया जा सकता है। किन्तु जब तक वे स्वय चर्वी के वस्त्रो का त्याग नही करते, तब तक दूसरो से कैसे त्याग करा सकते हैं ! अगर त्याग कराने का उपदेश भी दें, तो उसका प्रभाव ही क्या पड सकता है ? गाधीजी स्वय तो चर्बी के वस्त्र पहने और दूसरो से त्याग करने को कहे तो उनके कथन का जनता पर असर पडेगा ? नही। इसी प्रकार साधु-वर्ग जब तक स्वय चर्बी

के वस्त्रों का त्याग नही करता, तब तक उसके उपदेश का रंचमात्र भी प्रभाव नही पड़ सकता।

कोई यह कहता है कि—साधु, गृहस्थ के घर से वस्त्र लाते हैं। इस अवस्था में उन्हे जैसे मिल जाते है वैसे ही पहनने पडते हैं। पर इस कथन में कोई जान नही है। जब चर्बी के वस्त्र उन्हे मिल जाते है, तो तलाश करने पर क्या बिना चर्बी के—खादी के—वस्त्र नही मिल सकते? अतएव सर्वप्रथम साधुओं को चर्बी के वस्त्रो का त्याग करना चाहिए और बाद में दूसरों को उनके त्याग का उपदेश देना चाहिए। जिन चर्बी के वस्त्रों के लिए घोर हिंसा की जाती है, उन वस्त्रों का त्याग करना ही तुम्हारे लिए उचित है। अगर तुमने अहिंसा को समझा है, अगर तुम भगवान् महावीर को समझ पाये हो तो चर्बी के वस्त्रो का त्याग करना ही चाहिए। चर्बी के वस्त्रों का त्याग करने से स्वार्थ के साथ परमार्थ भी सधता है। इससे जीवन में सादगी आती है और अहिंसा की आराधना होती है। चर्बी के वस्त्रो के लिए कैसे-कैसे भयकर हत्याकाड होते हैं, यह सब जानते-बूझते हुए भी उन वस्त्रो का उपयोग करना, अहिंसा की अवहेलना करना है।

कुछ लोग कहा करते हैं—हमारे पास पहले खरीदे हुए मील के कपडे पड़े हैं, उन्हे पहन डालें तो क्या हानि है? पर मैं कहता हूं—अहिंसा की आराधना के लिए क्या वस्त्रो का त्याग करना भी मँहगा है? इस पवित्र आराधना के खातिर क्या वस्त्रो का त्याग भी बडी चीज है? अगर सभी ऐसा कहने लगें कि पहले के कपडे पहन फाड़ें, फिर खादी की सोचेंगे, तो बहुतो के पास तो कपड़ो का इतना संग्रह

होता है कि उनकी सारी जिंदगी के लिए वह पर्याप्य हो सकता है। ऐसी अवस्था में वे लोग इन कपड़ो के निमित्त होने वाली हिंसा से जीवन-पर्यन्त मुक्त ही न हो सकेंगे। अतएव अहिंसा की रक्षा के लिए हिंसाजनक चर्बी के वस्त्रों का त्याग करना चाहिए। अहिंसा की रक्षा के लिए जैसे चर्बी के वस्त्र त्याज्य हैं, उसी प्रकार रेशमी वस्त्र भी त्याज्य हैं।

सुना है, एक गज रेशमी कपड़े के लिए हजारों जीवित कीडे उकलते हुए पानी में उबालकर मार दिये जाते हैं। तुम भगवान् महावीर के शिष्य हो। अहिंसा के उपासक हो। ऐसी पापमय वस्तुओं के त्याग में ही तुम्हारा कल्याण है और इसी में भगवान् महावीर की उपासना और अहिंसा की आराधना है।



प्रवचन

[सरदार पटेल के आगमन पर]

ऐसी मति हो जाय दयामय, ऐसी मति हो जाय।
त्रिभुवन की कल्याण-कामना, दिन-दिन बढती जाय॥दया०॥
दूजो के सुख को सुख समझूं, सुख का करूं उपाय।
अपने सारे दुःख सहूँ पर, पर-दु.ख सहा न जाय॥दया०॥

आज व्याख्यान देने का कोई खास विषय नही है। पटेल साहब आये है, अतएव कुछ शब्द कहने है। तुम लोग यहाँ आये हो, पर क्या चीज लेने के लिए ? मेरे पास धरा ही क्या है ? अब जब तुम आये हो, तो इस बात का ध्यान रखना कि तुम्हारा आना खाली न जाये। अगर तुम पटेल साहब की खातिर आये हो तो, ध्यान रखना कि पटेल साहब का साथ देने के लिए आने वालो का क्या कर्त्तव्य हो जाता है ? मैंने सुना है, कल गाधी-जयन्ती का सदेश सुनाते हुए पटेल साहब ने कहा था—'राजकोट को जो गौरव प्राप्त है उसे देखकर मुझे आनन्द होता है। पर राजकोट की दशा देखकर मुझे खेद भी होता है।' इसी राजकोट में गाधीजी ने अपना बाल्यकाल बिताया है। आज भी उसका स्मारक विद्यमान है। इस राजकोट मे बाल्य-काल बिताने वाले गांधीजी

आज कैसा सादा जीवन बिता रहे हैं ? उन्होंने अपने जीवन की सादगी से यह बता दिया है कि ससार आडम्बर का भूखा नही है। उसे सादगी और सदाचार की आवश्यकता है। सदाचार का पालन करते हुए सादगी धारण करके जगत् के समक्ष खडा रहना सबसे उत्तम बात है। ऐसी उन्नत-वृत्ति वाला पुरुष बोले तो ठीक ही है; कदाचित् न बोले तो भी उसके द्वारा जगत् का कल्याण होता है। गाधीजी जैसे जगत्प्रसिद्ध पुरुष के जो राजकोट में बाल्यावस्था में रहे और जो आज उच्चतर सदाचार का पालन कर रहे हैं, कथन का प्रभाव अगर राजकोट-निवासियो पर नही होता तो, पटेल साहब के कथनानुसार, वास्तव मे यह खेद की बात है। नारायणदास भाई कहते थे— 'आप आरम्भ-समारम्भ का विचार करके खादी और मील के वस्त्रों का अन्तर बतलाते हैं, उसे सुनकर सब लोग वाह-वाह करने लगते हैं, पर उसका क्रियात्मक प्रभाव कुछ नजर नही आता। खादी की अच्छाई स्वीकार कर लेने मात्र से क्या लाभ हो सकता है ?' सच-मुच कोरी वाहवाही से क्या लाभ हो सकता है ? लोगो ने अपने बचाव के लिए 'वाह-वाह' शब्द गढ लिया है। खादी और मील के कपडो का अन्तर जानकर खादी की प्रशसा के पुल बाँध देने और वाह-वाह कह देने से गरीबो का क्या लाभ हो सकता है ? जिसके त्याग से पैसे की बचत होती है और गरीबो का पालन होता है, साथ ही अहिसा का भी पालन होता है, उस मील के कपडे को अगर तुम छोड नही सकते और एक भी शरीर के ऊपर वह कपडा रहता है तो, सच्ची गाधी-जयन्ती नही मनाई जा सकती, वरन् उसकी अवगणना होती है। एक आदमी बोझ का मारा हैरान—परेशान हो रहा है। उसे देखकर तुम वाह-वाह, धन्य-धन्य चिल्लाते

हो, पर उसका बोझ हल्का करने में जरा भी सहायता नहीं पहुँचाते। यह कैसी प्रशंसा है! यह तो एक प्रकार की विडम्बना है! राजकोट के निवासियों पर अगर गांधीजी के जीवन का प्रभाव पड़ा हो और गांधीजी की बदौलत उन्होंने राजकोट को पावन माना हो तो उनके द्वारा गांधीजी के महान् आदर्श की क्या इस प्रकार अवगणना होनी चाहिए?

मासिक पत्र 'कल्याण' मे एक चित्र आया है। चित्र देखना किसे नही सुहाता? पर चित्र क्या चीज है? वह किसी कुशल कारीगर के कौशल का प्रतिबिम्ब है। उसने अपनी कल्पना से चित्र अंकित किया है। वास्तव मे चित्रकार ने न सूरदास को देखा है, न श्री कृष्ण को देखा है। उसने तो केवल कल्पना की है। इसी प्रकार कोई कलाकार एक ऐसा चित्र बनाये, जिसमें एक ओर गांधीजी अंकित हों और दूसरी ओर उनका कार्य चित्रित हो। एक ओर गांधीजी का वृद्ध और दुर्बल शरीर हो और दूसरी ओर उनका महान् कार्य हो। इन दोनो मे से तुम किसे पसंद करोगे? 'कल्याण' मासिक में सूरदास और कृष्ण का चित्र है। तुम उस चित्र को देखकर मुग्ध होओगे या जिसका चित्र है उसके कार्य का स्मरण करके मुग्ध बनोगे? कदाचित् तुमने किसी व्यक्ति का शरीर या उसका चित्र देखा हो और उस पर मुग्ध होकर उसके कार्य की प्रशंसा करने लगो, मगर उसके कार्य को अपनाओ नही, तो क्या तुम उस पुरुष की अवगणना नही करते?

गांधीजी के लिए वाह-वाह कर देने से भारत का कल्याण नही हो सकता। देश-हित के कार्यों का जितना भार वे उठाते हैं, उसमे हिस्सा बँटाने से ही भारत का हित हो सकता

है । सुना है, कल पटेल साहब ने कहा था—'वर्षा ऋतु में अनगिनते मेंढक उत्पन्न होकर टर्र-टर्र करने लगते हैं, परन्तु जब ताप पड़ने लगता है, तब वे अदृश्य हो जाते है । इसी प्रकार जब आन्दोलन का दौरदौरा होता है, तो बहुतेरे मनुष्य अपने को देश-भक्त कहने लगते हैं परन्तु जब रचनात्मक कार्य करने का समय आता है, तब वे देश-भक्त न जाने कहा विलीन हो जाते हैं ! उस समय वे नजर नही आते ।'

इस प्रकार गाधीजी की वाह्-वाह् करने के लिये तो बहुत लोग हो जाते है, परन्तु उनके उपदेश के अनुसार काम करने के लिए बहुत थोडे लोग तैयार होते है । राजकोट-निवासियो से मै कहता हूं कि तुम अगर कोरी वाह्-वाह करने में रह गये तो तुम्हारे लिए और साथ हो मेरे लिए भी शर्म की वात होगी, क्योकि मैं भी भारत मे ही जन्मा हू । मैं नही जानता था कि कभी मुझे राजकोट आना होगा और पटेल साहव से मेरी मुलाकात होगी । पर कौन जाने प्रकृति की लीला को ? इस समय मैं भी राजकोट मे हू और इसलिए मेरे लिए भी यह लज्जाजनक बात होती । अगर तुम चर्बी लगे मील के वस्त्रो का त्याग करो तो तुम्हारी क्या हानि होगी ? ऐसा करने में सरकारी रुकावट है ? सरकार की ओर से ऐसी कोई रोक टोक नही है, फिर भी अगर कोई सरकार के डर से चर्बी के कपडे नही छोडता, तो वह देवादिक का उपसर्ग उपस्थित होने पर किस प्रकार निर्भय और निश्चल बना रह सकेगा । राजा अगर सच्चा राजा है तो चर्बी के कपडे त्याग कर खादी पहनने के कारण तुमसे कदापि अप्रसन्न न होगा । कदाचित् कोई राजा नाराज हो भी जाये, तो अन्त मे उसे ठिकाने पर आना ही पड़ेगा ।

तुम खादी पहनने से डरते क्यो हो ? अगर तमाम स्त्रियाँ और पुरुष खादी पहनने का निश्चय कर ले तो क्या हानि होने की सभावना है ? ऐसा करने से तुम्हारा कौन-सा कार्य रुक जाता है ? अगर यह बात तुम्हारी समझ मे आगई हो तो मिल के वस्त्रों का त्याग करने की प्रतिज्ञा कर सकते हो । पर त्याग केवल देखादेखी नही होना चाहिए । तत्त्व को भलीभाँति समझ-बूझकर त्याग करना चाहिए । तुम जिस देश मे जन्मे हो, जहाँ के अन्न, जल और वायु से तुम्हारे शरीर का पोषण हुआ है, उसी देश में उत्पन्न होने वाली वस्तुओ के अतिरिक्त दूसरी वस्तुओ का तुम्हे त्याग करना चाहिए । उस वस्तु से तुम्हारा जीवन-निर्वाह सरलता से हो सकेगा और साथ ही तुम महा-आरभ से भी बच जाओगे । अल्पारंभ से ही तुम्हारा कार्य चल जायगा ।

यह सभा आस्तिकों की है। यहाँ बैठे हुए सभी लोग यह स्वीकार करते हैं कि— 'हम परलोक से आये है और परलोक मे जाने वाले हैं ।' ऐसा मानते तो हो, पर साथ ही यह भी विचार करो कि— तुम्हारा कर्त्तव्य क्या है ? और इस ससार में आकर तुमने क्या किया है ? जब तुम परलोक से आगमन और परलोक-गमन मानते हो, तो तुम्हे जितना हो सके उतना महा-आरंभ से बचना चाहिए । इसी में तुम्हारा कल्याण है ।



सरदार वल्लभ भाई पटेल का भाषण

आप सब के दर्शन करके मुझे बडी प्रसन्नता हुई है। साधु-सन्तो के सामने खडे होकर उपदेश देने की मुझे आदत नही है और अधिकार भी नही है। मैं ससार मे रहने वाला हू और ससार पाप से भरा हुआ है। भारत में एक महा-पुरुष जन्मा है। मैं उसका सिपाही हूं और उसका सदेश पहुँचाने के लिए गाँव-गाँव फिरता हू। इस समय तो मैं तीर्थ-स्थान मे आया हू। यह राजकोट शहर उसका निवास-स्थान है। मुझे नही मालूम था कि मुझे यहाँ आना होगा और सतो के मुख से उपदेश सुनने का सुअवसर मिलेगा। पर आपका उपदेश-श्रवण ऐसा नही होना चाहिए कि—'कथा सुनकर फूटे कान, तब भी न आया हिये मे ज्ञान।' इस प्रकार का उपदेश आप प्रतिदिन सुनते हैं पर 'मुख मे राम, बगल में छुरी' इस कहावत के अनुसार अगर बर्त्ताव नही है, तो इन तमाम बहनो के शरीर पर विदेशी वस्त्र क्यों दिखाई देते हैं? पापो को धोने के लिए गगा-स्नान करना या केसरियानाथजी की यात्रा कर आना, भारत की पद्धति है। इतना करके पापो का धुल जाना मान-बैठना भ्रमपूर्ण है। जो कर्म किये जायेंगे उन्हे भोगना ही पडेगा। अतएव केवल उपदेश सुनकर ही सतोष न मानो, पर इस बात का भी विचार करो कि इस उपदेश का आपके ऊपर क्या प्रभाव

पडा है ?

आप सब अहिंसा को मानने वाले और पालने वाले हैं। आपकी रग-रग मे अहिंसा भरी है। पर आप अपग बन गये हैं और आप में अहिसा पालने की शक्ति नही रही है। एक तपस्वी जन्मा है, जो बडे से बडा जैन है। जिसने आत्मा को पहचाना, वही जैन है। मैंने उस तपस्वी सरीखा दूसरा जैन नही देखा है। अहिसा-पालन और दूसरो की रक्षा करना जैनों का कर्त्तव्य है। वह तपस्वी ऐसा करता है और न केवल भारत मे ही, वरन् विदेशो मे भी उसने अहिसा का प्रचार किया है। कूप-मण्डूक, कूप के सिवाय और कुछ नही जानता; परन्तु समुद्र मे रहने वाला जानता है कि मगरमच्छ, जहाज, आगबोट आदि कैसे होते हैं ? इसी प्रकार दूसरो को तो पता नही है, पर वर्त्तमानकालीन इतिहास जानने वाले लोग जानते है कि यूरोप मे कैसी यादवस्थली चल रही है ? कुशल समझे जाने वाले लोगो न ऐसे उपाय खोज निकाले है जिनसे अधिक से अधिक मनुष्यो की हिंसा हो। परन्तु भारत के सच्चे जैन तपस्वी ने अहिसा की रक्षा के लिये, अधिक से अधिक मनुष्यो की रक्षा के उपाय खोज निकाले हैं। नर-सहार का उपाय ढूँढने वालों ने बम, गोला आदि का आविष्कार किया; परन्तु इस महापुरुष ने चर्खे को ईजाद किया है, जिससे गरीब और विधवाएँ भी प्रतिदिन चार पैसे कमा सकती हैं और राबड़ी बनाकर, उसे पीकर जीवन-निर्वाह कर सकती है। आप लोग अहिसा के पालक है, इसलिए गाय, कुत्ता और पक्षी के लिए खुराक का थोडा भाग निकाल देते है और मान लेते है कि अहिसा का पालन हो गया। परन्तु जहाँ करोडों मनुष्य भूखे मरते

हैं, वहाँ गाय आदि के नाम से थोडा-बहुत निकाल देने मात्र से अहिंसा का पालन कैसे हो सकता है ? ऐसी दशा मे आप अहिंसा के पालक कैसे रह सकते हैं ? सच्चे अहिंसक मनुष्यों ने चर्खे को जीवित करके ऐसा प्रबन्ध किया है जिससे भूखों मरने वाले बहुत-से लोगो को रोटी मिल सके ।

जिस देश मे यादवस्थलो चल रही है, उस देश के लोग भारत के इस तपस्वी के लिए कहते है—वह कैसा शूरवीर है कि बिना तलवार-बदूक के ही सल्तनत को कँपा रहा है । वह ससार से प्रेम करने की शिक्षा देता है और कहता है कि ऐसा किये बिना कल्याण नही । वे लोग यह भी मानते हैं कि नर-सहार को रोकने के लिए भारत में एक ही महापुरुष है और जब तक हम उसके बताये मार्ग पर नही चलेंगे, तब तक हमारा कल्याण नही हो सकता । अहिंसा का पालन करने के लिए शास्त्र हमे अनेक आदर्श-बतलाता है, परन्तु वे प्रत्यक्ष नही हैं । अहिंसा का ऐसा प्रत्यक्ष आदर्श जो तुम्हारे सामने रखता है, उसकी बात नहीं मानोगे, तो किस प्रकार तुम्हारा कल्याण होगा ?—यह बात तुम समझ नही सके हो । सिर्फ एक या दो आदमियों ने खादी पहनने की प्रतिज्ञा की, तो स्पष्ट है कि तुम्हे सतो के प्रति और धर्म के प्रति श्रद्धा नही है या तुममे अशक्ति है । तुम्हारे भीतर अगर इतनी अशक्ति है तो तुम धर्म को—जो सिर का बलिदान देकर पाला जाता है-कैसे पाल सकोगे ? तुम जो उपदेश सुनते हो, उसे पालने का अभ्यास करोगे तो ही उपदेश सुनना सार्थक होगा । इस प्रकार साधु-सतो का आगमन और उपदेश देना तभी सफल हो सकता है जब तुम उस उपदेश का पालन करो । इसलिए उपदेश के पालन का

अभ्यास करो ।

भारत की रक्षा सदा स्त्रियो ने ही की है । अगर स्त्रियाँ अव भारत की रक्षा नही करेगी, तो कौन करेगा ? पर आज स्त्रियाँ ऐसे मोह मे फँस गई हैं कि अपने कर्त्तव्य को भी नही देखती । पुरुषो को अपेक्षा स्त्रियो पर अधिक उत्तरदायित्व है, अतएव स्त्रियो को विचारना चाहिए कि-'अगर हम खादी पहनेंगे तो खादी मे खर्चा हुआ पैसा गरीबो को मिलेगा और उससे उनका पेट पलेगा ।' खादी न पहनने से थोड़े-से व्यक्ति करोडपति हो जाएँगे, करोडपति होकर मोटर खरीदेंगे और ऐसा कार्य करेगे जिनसे महान पाप होते हैं । हजारो मेढ़ो मे दो-चार सिंहों के बसने के समान सामान्य वर्ग की प्रजा मे दो-चार करोडपतियो को बनना होगा । हजारो मेढो में रहने वाले दो-चार सिहो की क्या शोभा है ? बहादुरी तो तब है जब हजारो वीरों के बीच सिह का वास हो । मेढो के समूह मे रहना बहादुरी नही है । साथ ही मेढो को भी उससे कुछ लाभ नही है । यही नही, बल्कि हजारो मेढो के बीच रहने वाला सिह प्रतिदिन दो-चार मेढो का शिकार करेगा ! इस प्रकार करोड़ो भुखमरो मे दो-चार करोड़पतियो के होने से कुछ भी लाभ नही है ।

जैन-धर्म किसी एक जाति का नही है । सभी मनुष्यो को जैन होने का अधिकार है । उसमें स्पृश्य-अस्पृश्य का भेद नही है । जो आत्मा को पहचानता है, वही जैन है । इसी कारण इस धर्म के निकट राजा-रंक, छोटे-मोटे सभी समान हैं । इसमे जाति-पाँति का भी कोई बखेडा नही है । पर आज तो जैन-मंदिरो या जैन-उपाश्रयों में अछूत को आने का अधिकार ही नही है ! हिन्दू-धर्म की इस कुरूढ़ि को

जैन-धर्म ने भी स्वीकार कर लिया है। आपको यह कुरूढि निकाल फेंकना चाहिए। किसी भी मनुष्य को अस्पृश्य कहना, उसका तिरस्कार करना है। इस तिरस्कार से उन्हे, तलवार के झटके से भी अधिक दुःख होता है। यह तिरस्कार शरीर का नही, शरीर मे रहे हुए आत्मा का है। शरीर में से जब आत्मा चला जाता है, तो सभी अस्पृश्य बन जाते हैं। तब आत्मा होते हुए किसी का अपमान करना ईश्वरीय अंश का अपमान करना है।

हम सब लोग संसार में रहते हैं। इस समय तो मैं ऐसे तीर्थ-स्थान में आया हूं, जहाँ वह महान् जैन उत्पन्न हुआ है, जो जैन न होते हुए भी मन-वचन-काय से जैन-धर्म का पालन कर रहा है। इस महापुरुष के जीवन का अनुकरण करके आपको कुछ न कुछ प्रतिज्ञा करनी चाहिए। ऐसा करने से आपका साधुदर्शन और उपदेश-श्रवण सफल होगा। इतना कहने के पश्चात् मैं इस भावना के साथ अपना स्थान ग्रहण करता हूं कि— 'आपको और मुझे ऐसी दृढता प्राप्त हो।'



गांधी-जयन्ती

प्रार्थना

श्री सुबुधि जिनेश्वर वन्दिये रे ।
त्यागी प्रभुता राजनी हो, लीधो संयम भार ।
निज आतम अनुभव थी हो, प्रभु पाम्या पद अविकार ।।श्री०।।

भगवान् सुबुद्धिनाथ की यह प्रार्थना है। इस प्रार्थना मे यह बताया गया है कि सुबुद्धिनाथ, भगवान् सुबुद्धिनाथ किस प्रकार बने ! भगवान् सुबुद्धिनाथ को परमात्मपद पाने में जो विघ्न या अंतराय बाधक हो रहे थे, उन पर उन्होंने विजय-लाभ किया था। इस विजय के महान् व्यापार में भगवान् सुबुद्धिनाथ का आत्म-धर्म प्रकट हुआ था। प्रार्थना मे कही हुई बात को सुनकर यह विचार उद्भूत होता है कि—हे प्रभो ! आपके और मेरे बीच जरा-सा अन्तर है—थोडी-सी दूरी है। आपने अपने विघ्नो को हटा दिया है और मैं उन्हे अब तक हटा नही सका हू। बस यही मुझमें और आप में फासला है—यही पर्दा है। इसी पर्दे के कारण मैं आपसे दूर पडा हू ।

आप यह तो जान चुके कि हम मे और भगवान् में केवल विघ्नो का पर्दा है और इतना-सा ही अंतर है। मगर प्रश्न तो यह है कि यह जान लेने के पश्चात् हमारा कर्त्तव्य क्या है ?

इसका सीधा-सादा समाधान है और वह यह कि उस पर्दे को हटा देना चाहिए। जब तक विघ्न-रूप पर्दे को हटाया नही जायेगा, तब तक परमात्मा से भेट नही हो सकती। अगर आप इस पर्दे को नही हटाना चाहते तो यही कहा जायेगा कि आप परमात्मा से भेंट नहीं करना चाहते।

सारा संसार एक भ्रम मे पडा हुआ है। परमात्मपद की प्राप्ति मे जो पदार्थ विघ्न-रूप है, उन्ही को वह कल्याण-कारी मान रहा है। आत्मा स्वय परमात्मा बनना चाहता है, पर ठीक विपरीत दिशा में प्रयाण करता है। फल यह होता है कि समीपता के बदले दूरी बढती जाती है। अतएव इस बात की सावधानी रखनो चाहिए कि परमात्मा की प्राप्ति के उद्देश्य से हमारा प्रत्येक कदम अनुकूल ही पडे प्रतिकूल नही। जिन वस्तुओं का ससर्ग इस ध्येय में बाधक हो, उनका परित्याग करना चाहिए। इस प्रकार करने से परमात्मा के साथ भेंट हो सकती है।

भगवान् सुबुद्धिनाथ का 'सुबुद्धिनाथ' नाम केवली-पद प्राप्त करने से पहले का है। केवल-पद पाने के बाद तो उनके अनन्त नाम हो गये हैं। भगवान् सद्बुद्धि के स्वामी थे और हम लोग सुबुद्धि की परवाह न कर कुमति के फँदे मे फँसे हैं। हम लोग बुद्धि से तक-वितर्क करते हैं और तर्क-वितर्क द्वारा भगवत्प्राप्ति के मार्ग मे काटे बिखेर लेते हैं। जिस समय हम भगवान् सबुद्धिनाथ के पावन चरणो में सम्पूर्ण श्रद्धा के साथ बुद्धि को समर्पित कर देंगे, तभी श्रद्धा के साहचर्य से बुद्धि सन्मार्गगामिनी बनेगी और वह दुर्बुद्धि मिट कर सद्बुद्धि हो जायेगी। अतएव भव्य जीवो! बुद्धि का भरोसा छोडकर श्रद्धा का शरण ग्रहण करो। श्रद्धा का

शरण ग्रहण करने से तुम बुद्धि के दास न रहकर सद्बुद्धि के नाथ बन सकोगे ।

कोई यह आशका कर सकता है कि संसार का प्रत्येक मनुष्य यही चाहता है कि हमारी दुर्बुद्धि का विनाश हो और सद्बुद्धि का प्रकाश हो । पर ऐसा होता क्यो नही है ?—इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि जैसे आकाश से बरसने वाला पानी समान होता है लेकिन भिन्न-भिन्न पात्र उसे विभिन्न रूपो में ग्रहण करते हैं, इसी प्रकार भगवान् सुबुद्धिनाथ अपन-सब में मूलत· समान बुद्धि देखते है, फिर भी विभिन्न व्यक्तियो के औपाधिक सबध के कारण उसमे विचित्रता हो रही है । इसी वैचित्र्य को विनष्ट करने के लिए भगवान् सुबुद्धिनाथ के शरण मे जाने की आवश्यकता है । बुद्धि मे विचित्रता किस प्रकार आ रही है, इसके लिए एक प्रमाण लीजिए :—

'परस्परविवदमानानां धर्मशास्त्राणामहिंसा परमो धर्म इत्यत्र एकवाक्यता ।'

अर्थात् धर्म-शास्त्रो में अन्यान्य बातो सबधी मतभेद भले ही हो, पर अहिसा को परम धर्म मानने मे किसी का मतभेद नही है । अहिसा धर्म सभी को मान्य है । ऐसा होते हुए भी धर्म के नाम पर कितनी खून-खराबी हुई है ? जहाँ धर्म के नाम पर इतनी खून-खराबी हो, वहाँ यही समझना चाहिए कि धर्म के नाम पर ढोग प्रचलित है । सच्चा धर्म अहिसा और सत्य आदि है । अहिसा के कारण कही खून-खच्चर नही होता । इसके पालन में भी कही किसी का मतभेद नही है । सच तो यह है कि लोगो के हृदय विकार

से भरे हुए हैं और जब उन्हें कोई दूसरा आधार नही मिलता, तव वे धर्म के नाम पर सिर-फुटौवल मचाने लगते हैं। वास्तव में कोई भी धर्म परस्पर लडने-झगडने या दूसरे को दुःख देने की आज्ञा नही देता। ऐसा होते हुए भी दूसरो को दुःख देना धर्म-सम्बन्धी अज्ञानता को प्रगट करना है। इस प्रकार वुद्धि में विचित्रता आ रही है। इस विचित्रता को मिटाने के लिए परमात्मा की शरण मे जाओ। भगवान् सुबुद्धिनाथ की शरण मे जाने पर वुद्धि की यह विचित्रता नष्ट हो जायेगी।

मैं अहिंसा-धर्म का प्रचारक समझा जाता हूं, पर मैं अपनी दृष्टि मे तो अहिसा-धर्म का क्षुद्र सेवक हूं। आप चाहे जो समझे पर मैं अहिसा-धर्म के प्रचार की योग्यता अपने मे अभी नही पाता। दूसरे मेरी निर्वलता को न जाने, मेरे विचारो से परिचित न हो, लेकिन आत्म-निरीक्षण द्वारा मैं यह जानता हू कि मुझ मे अनेक निवलताएँ हैं और मैं विकारो पर सम्पूर्ण विजय नही प्राप्त कर सका हू।

आप कह सकते हैं- अगर मुझ में विकारो का अस्तित्व है, तो मैं अहिसा-धर्म का उपदेश क्यो करता हू? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि ऐसा करने मे भी मैं अपने आत्मा का कल्याण देखता हू। इतने आदमियो के सामने मैं जो कुछ कहता हूं, उसका स्वय पालन करने की प्रेरणा मेरे अन्तःकरण मे स्वतः उत्पन्न हो जाती है। मेरे उपदेश का दूसरे अनुसरण करे या न करे, पर स्वय मुझे अनुसरण करने की दृढता प्राप्त होती है। दूसरे के समक्ष मैं अहिसा आदि के संबंध में जो आदर्श वाचनिक रूप मे व्यक्त करता हू, यदि क्रिया-रूप मे मैं स्वय उनका अनुसरण न करूँ तो यह

विपरीत मार्ग पर चलना होगा । अतएव मै भगवान् की शरण मे जाकर भगवान् से प्रार्थना करता हू कि मेरी बुद्धि के सम्पूर्ण विकार नष्ट हो और दूसरो के सामने मैं जैसा बोलता हू उसी के अनुसार अपना व्यवहार बना सकू ।

जब कोई व्यक्ति अपनी बुद्धि की निरन्तर चौकसी करता रहता है—उसमें विकारो का लेशमात्र भी प्रवेश नहीं होने देता वरन् भगवान् सुबुद्धिनाथ की शरण ग्रहण करके अपनी बुद्धि को निर्मल बनाये रखता है, तभी वह कल्याण का भाजन बनता है । ऐसा करने मे कितने ही सकट क्यो न आ पडें, अपने पथ से विचलित नही होना चाहिए । प्राचीन-काल के अनेक उदाहरण ऐसे मौजूद हैं जिनसे पता चलता है कि प्राचीनकाल के धर्मात्माओ ने मारणान्तिक कष्ट उपस्थित होने पर भी अपनी बुद्धि मे विकारो का प्रवेश नही होने दिया था । उन उदाहरणो को सुनकर यह सदेह हो सकता है कि यह कल्पनामात्र है या घटित घटना है ? मगर जब वर्तमान में भी किसी को ऐसा करते देखा जाता है तो प्राचीन कथानकों की प्रामाणिकता मुक्तकठ से स्वीकार करनी पड़ती है । हमे यह विश्वास हो जाता है कि पूर्ववर्त्ती पुरुषो के सम्बन्ध में जो कुछ कहा जाता है वह सर्वांश मे सत्य है । उदाहरणार्थ—अहिंसा, क्षमा आदि के सम्बन्ध मे जो अतीत वृत्तान्त उपस्थित किये जाते हैं, उन्हे सत्य मानने के लिए आज गाधीजी प्रमाण रूप हो जाते है ।

गाधीजी का जन्म पोरबदर मे हुआ था । मैंने पोर-बदर देखा है और वहाँ के महाराज मेरा उपदेश सुनने भी आये हैं । पोरबदर-महाराज के परिचय मे आने से यह स्पष्ट मालूम होता है कि उन पर गाधीजी के विचारो का प्रभाव

पडा है। वे गाधीजी के विचारो के अनुसार सुधार करने को उत्सुक रहते है। देश का हित करने वाले विचारो का प्रचार करने वालो को वहाँ अवसर दिया जाता है। जब मैं पोरबदर मे था, तभी वहाँ डाक्टर पट्टाभी सीतारामैया भी आये थे। वह मेरे व्याख्यान में आये और उन्होने अपने कुछ राष्ट्रीय विचार भी प्रगट किये। उन्हे दूसरी रियासतो में, सभा मे अपने विचार प्रगट करने मे किसी प्रकार की कठिनाई हुई होगी, किन्तु पोरबदर मे कोई कठिनाई नही हुई। वे पोरबदर मे अग्रेजो और देशी नरेशो की राजनीति के विरुद्ध खूब खुलकर बोले, फिर भी राज्य की ओर से किसी प्रकार की रोक-टोक नही की गई। इस प्रकार गांधीजी के जन्मस्थान में उनके विचारो का प्रभाव देखकर प्रसन्नता होती है। सारे काठियावाड के लिए तो कह नही सकता, पर जहाँ तक पोरबदर का सबध है, यह कहा जा सकता है कि गाधीजी के विचारो ने वहाँ अच्छा स्थान बना लिया है।

आज इन्ही गाधीजी की जन्म-तिथि है। हम साधु लोग तो किसी की जन्म-तिथि नही मनाते, किन्तु गाधीजी ने अहिसा का जो प्रभाव प्रकट किया है उसके सम्बन्ध में मुझे कहना होगा। पजाबकेसरी लाला लाजपतराय जैन- परिवार मे जन्मे थे। उनके दादा ने साधु-मार्गी जैन-समाज में दीक्षा ली थी। लेकिन लालाजी का दृष्टिकोण बदल गया। उन्हे जैन धर्म की वास्तविकता समझाने वाला कोई योग्य विद्वान नही मिला। वे जैन धर्म के अनुयायी न रह कर आर्यसमाजी बन गये। पर आर्यसमाज मे भी उन्हे शान्ति नही मिली। वे कहने लगे—तलवार का प्रयोग किये बिना देश का कल्याण नही हो सकता। जैनो और बौद्धो की अहिसा

ने देश को कायर बना दिया है। जब तक इस कायरता का अन्त नही हो जाता तब तक भारत की भलाई नही हो सकती।

लाला लाजपतराय इस प्रकार अहिसा के विरोधी बन गये। गाधीजी जब राष्ट्रीय रगमच पर आये और अहिसा के पक्ष मे उन्होने अपने विचार प्रकट किये, तो लालाजी ने इन्हे लिखा— 'देश पहले से ही कायर है। तिस पर आप उसे अहिसा का उपदेश देकर गजब ढा रहे है! सौभाग्य से अभी-अभी देश मे कुछ जागृति आई है सो आप अहिसा का प्रचार कर उसे दबा देना चाहते हैं।'

गाधीजी ने लालाजी को यथेष्ट उत्तर दिया। कहा जाता है, बीस वर्ष तक गाधी-लाला पत्र-व्यवहार होता रहा। अन्त मे गाधीजी के विचारो से लालाजी सतुष्ट और प्रभावित हुए। उन्होने बबई मे गाधीजी और डाक्टर एनीबीसेन्ट आदि के सामने हृदय खोलकर कहा कि इतने लबे समय के पत्र-व्यवहार के पश्चात् मैं स्वीकार करता हू कि सत्य और अहिसा की शक्ति महान् है, अजेय है और मैं उस शक्ति के सामने अपना मस्तक झुकाता हू।

लाला लाजपतराय बहुत विचारशील पुरुष थे। किसी जमाने मे भारत के लाल, बाल और पाल की त्रिपुटी प्रसिद्ध थी। ऐसे विचारशील व्यक्ति को हिसा से विमुख कर अहिसा का भक्त बना लेना गाधीजी का काम था। वास्तव मे अहिसा का परिणाम तत्काल अनुभव नहीं किया जा सकता और हिसा का परिणाम तत्काल ही देखा जाता है। इस कारण राजनीति मे हिसा का ही बोल-बाला है। मगर गाधीजी ने अहिसा की परिधि बढाकर उसे राजनीति में भी

स्थान दिया है और एक प्रकार से एक नये युग की सृष्टि की है। यही गाधीजी की महत्ता और महापुरुषता है।

बगाल के श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर कवि-सम्राट कहलाते हैं। ससार-प्रसिद्ध नोवेल पुरस्कार उन्हे गीताजलि काव्य पर मिला है। उन्होनें भगवान् महावीर के विषय मे जो उद्‌गार प्रकट किये हैं, उनके सबध मे यहाँ कुछ नही कहना है। यहाँ तो मैं एक और ही बात कहना चाहता हूं। रवीन्द्रनाथ और गाधीजी में कुछ विचार-विभिन्नता है। फिर भी वे गाधीजी के अहिंसा के गुण को मस्तक झुकाते है। इससे आपको यह शिक्षा लेनी चाहिए कि आप मे अगर किसी विषय को लेकर मतभेद हो जाये तो भी अहिंसा के सबध में कोई मतभेद नही होना चाहिए।

रवीन्द्रनाथ एक बार अमेरिका गये। अमेरिका-वासियों ने उनसे कहा—भारत के गाधीजी की हम बहुत प्रशसा सुनते है। आपके साथ उनका सन्निकट परिचय होगा। कृपया गाधीजी के सबध में आप अपने विचार प्रकट कीजिए। रवीन्द्रनाथ ने कहा—गाधीजी को मैंने देखा क्यो नही है? मेरा उनके साथ घनिष्ट परिचय भी है। पर कठिनाई यह है कि जिस रूप मे मैंने गाधीजी को देखा है, उसका वर्णन नही किया जा सकता। गाधीजी की महत्ता उनके शरीर के कारण नही है। शारीरिक दृष्टि से वे बहुत ह्रस्व हैं, फिर भी वे महान् हैं। भूतवादियो के मत से सारी करामात भूतो की है। इस दृष्टि से जिसका भारी-भरकम शरीर हो वही महान् होना चाहिए और जिसका शरीर दुर्बल हो वह तुच्छ होना चाहिए। मगर गाधीजी इस भूतवाद के सशरीर साक्षात् खंडन हैं। शरीर से दुवले-पतले होने पर

भी उनमे तीन बाते ऐसी हैं, जिनके कारण उनकी महत्ता है। पहली बात उनमे निभयता है। मैं कविसम्राट कहलाता हूं। पर कोई छुरा लेकर मुझे मारने आये तो अपने बचाव के लिए मैं प्रयत्न करूँगा और भाग जाऊँगा। मेरा हृदय भय से काँप उठेगा। मगर गाँधीजी को मारने के लिए अगर कोई छुरा लेकर जायेगा तो उसे देखकर वे लेशमात्र भी भयभीत न होगे। यही नही, वरन् हँसेंगे, मुस्कराएंगे और पहले से भी अधिक प्रसन्न होगे। उनकी दूसरी महत्ता है—सत्य के प्रति दृढ़ता। अगर सम्पूर्ण अमेरिका का विपुल वैभव उनके चरणो पर चढा दिया जाये और बदले मे सत्य का परित्याग कर असत्य आचरण करने के लिए कहा जाये तो वे उस वैभव को लात मार देंगे। वे सत्य का त्याग नही करेंगे।

गाधीजी अमेरिका की अतुल धनराशि को सत्य के लिए ठुकरा सकते है, पर आप लोगो मे कोई ऐसा तो नही है जो आठ आने के लिए साठ बार असत्य का आचरण कर सकता हो? अगर कोई ऐसा है तो उसे अपने इस पतन के लिए पश्चात्ताप नही होना चाहिए? पश्चात्ताप की ज्वाला मे उसे अपने पापो को भस्म करके भविष्य को निष्कलंक बनाना चाहिए। भीलो के विषय मे कहा जाता है कि शपथ दिलाने पर वे मरने से बचने के लिए भी झूठ नही बोलते। फिर आप कुलीन और धर्मात्मा कहला कर भी अगर तुच्छ बात के लिए असत्य का आचरण करे, तो कितना अनुचित है? सत्य के प्रति गांधीजी की दृढता से यह जाना जा सकता है कि जब आज भी इस प्रकार का सत्यनिष्ठ व्यक्ति हो सकता है तो अर्हन्तो के समय मे पूर्ण

सत्य की प्रतिष्ठा हो तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है ? कामदेव श्रावक को गजब का भय दिखाया गया पर उसने सत्य का परित्याग नही किया । सीता अनेक प्रलोभनो के आगे भी सत्य का ही आराधन करती रही ! इन सब प्राचीन आख्यानो को गाधीजी की सत्यनिष्ठा देखते हुए कपोल-कल्पना या मिथ्या कैसे कहा जा सकता है ? गाधीजी की स यनिष्ठा को देखते हुए सहज ही यह विचार आता है कि इस गये-गुजरे जमाने में भी अगर सत्य के प्रति ऐसी दृढता दिखाने वाले पुरुष मौजूद हैं तो प्राचीनकाल मे ऐसे सत्य-निष्ठ पुरुष क्यो न रहे होगे ?

कविसम्राट ने आगे कहा – गाधीजी मे प्रामाणिकता की भी प्रचुरता है । उनके जीवन-व्यवहार मे कही अप्रामाणिकता का प्रवेश नही देखा जाता । आप चाहे जितनी सम्पत्ति उन्हे दीजिए । जिस कार्य के लिए आप देंगे उसी मे वे उसे व्यय करेंगे । एक पाई भी वे उसमे से अपने लिए व्यय न होने देंगे ।

एक ओर इस समय भी गांधीजी इस प्रकार की प्रामाणिकता रखते हैं । दूसरी ओर आजकल अप्रामाणिकता की पराकाष्ठा देखी जाती है । कई लोग अपने यहाँ जमा धर्मादा खाते की रकम मे से थोडा-बहुत देकर नाम कमाते हैं और कुछ तो धर्मादे की सारी रकम ही हडप जाते हैं । ऐसे लोगो को गाधीजी की प्रामाणिकता से शिक्षा लेनी चाहिए ।

गाधीजी की इन विशेषताओ को सुनकर अमेरिका के बडे-बडे पादरियो तक ने उन्हे ससार का सर्वश्रेष्ठ पुरुष स्वीकार किया । गाधीजी मे उल्लिखित विशेषताओ के अति-

रिक्त और भी अनेक असाधारण गुण विद्यमान है। उन गुणो के सबध में वही व्यक्ति ठीक-ठीक बतला सकता है जो गांधीजी के निकट परिचय मे रहता है। फिर भी उनके सार्वजनिक जीवन के फलित होने वाले कुछ गुणों का परिचय मिलता है। उन अनुकरणीय गुणों मे से एक है—सेवा-धर्म। गाधीजी के सेवा-धर्म के विषय में श्रीयुत् श्रीनिवास शास्त्री ने कहा है। शास्त्रीजी राजनीति मे नरम दली माने जाते है। गाधीजी से उनका राजनैतिक मतभेद भी रहता है। शास्त्रीजी ने सन् १९१४ मे यूरोप मे देखा कि गाधीजी भयकर कोढी या इसी प्रकार के अन्य रोगियो के शरीर पर भी अपने हाथों से पट्टी बाँधते है। सहानुभूति से उनका हृदय द्रवित हो रहा है। प्रेम की प्राजल ज्योति उनकी आँखो मे चमक रही है। यह सब देखकर श्रीनिवासजी शास्त्री का हृदय गाधीजी के विषय में सहसा पलट गया। मन ही मन गांधीजी जैसे सच्चे मानव-सेवक की अवज्ञा करने के अपराध के लिए उन्होने पश्चात्ताप किया।

गाधीजी की विशेषता को जान लेना मात्र ही आपके लिए पर्याप्त नही है। उनके जीवन की अपने जीवन के साथ तुलना भी कर देखो। गाधीजी अज्ञात-अपरिचित रोगियो की आत्मीय भाव से सेवा करते हैं, तब आप अपने घर के या सहधर्मी की भी सेवा करते हैं या नही ? किसी दीन-दुःखी को देखकर आप लापरवाही से यह तो नही सोचते या कहते कि हम क्या करे, इसने जैसा किया है वैसा भोगेगा ! इसके कर्म-फल-भोग में हम हस्तक्षेप क्यो करें ? अगर आपके मुख से ऐसे शब्द निकलते है तो आप अपनी वाणी का दुरुपयोग ही नही करते बल्कि मानवता के प्रति घोर अपराध

करते हैं। अगर हाथी के भव में मेघकुमार ने यही सोचा होता कि यह खरगोश अपने किये का फल भोग रहा है, तो क्या हाथी मेघकुमार का जीवन पा सकता था ? भगवन् क्या यह कहते कि—मेघकुमार ! तुम हाथी के भव में शशक पर अनुकम्पा करने के कारण मेघकुमार बने हो ? वास्तव मे दुखी को देखकर जिसके दिल में दया का स्रोत बहने लगता है, उसके दुःख उसी स्रोत मे वह जाते है। जिसका अन्तःकरण करुणा की कल्लोलमाला से सकुल है उसने अपना जीवन सार्थक बनाया है। सेवा, मानव-जीवन का बहुमूल्य लाभ है। सेवा की सीमा नही है। वहाँ स्व-पर का भेद नही है। अपनी सतान के समान ही प्रेमपूर्वक दूसरे की सतान की सेवा करना मनुष्य का पवित्र कर्त्तव्य है। शास्त्र सेवा-भावना की शिक्षा देता है। शास्त्र की इस शिक्षा के होते हुए भी सेवा में आपको कठिनाई प्रतीत होती है। गाधीजी जैसी महिमा यदि आपको मिले तो आप बड़ी प्रसन्नता के साथ उसे अपना लेने को तत्पर हो जाएँगे, पर गाधीजी जैसी सेवा करने का कार्य किसी और को सौंप देने का प्रयत्न करेंगे! गाधीजी की सेवा-भावना ने उनके विरोधियो को भी अपना प्रशसक बना लिया है। आज उनके विरोधी भी मुक्तकठ से उनकी प्रशसा करते हैं।

जैन शास्त्र में क्षमा की बड़ी प्रशसा की गई है। साधु के दस धर्मों में क्षमा को पहला स्थान दिया गया है। साथ ही क्षमा का असली रूप क्या है और उसकी सीमा क्या है, यह बताने के लिए गजसुकुमार मुनि का आदर्श दृष्टान्त भी शास्त्रो में लिखा है। गजसुकुमार की क्षमा चरम सीमा की क्षमा है। उसके विषय मे कोई कह सकता है कि—

हमें तो बिच्छू का डक भी सह्य नही होता तो सिर पर पाल बाँधकर जलाई हुई अँगीठी की घोरतर वेदना गजसुकुमार मुनि कैसे सहन कर सके होंगे ? इसका उत्तर यह है कि अपनी दुर्बलता को जगत् की दुर्बलता का माप-दण्ड नही बनाना चाहिए । जगत् में इस समय भी हमसे अधिक सहनशील क्षमावान् व्यक्ति देखे-सुने जाते हैं। इससे प्राचीन महापुरुषो की क्षमा और सहिष्णुता के प्रति सदेह नही रखा जा सकता । प्राचीनकाल के महाप्राण महापुरुषो ने अगर हमे आश्चर्य में डाल देने वाली क्षमा का सेवन किया है तो वह अविश्वसनीय नही हो सकता ।

गांधीजी की क्षमा के विषय मे एक बात सुनी जाती है । दक्षिण अफ्रिका मे गांधीजी ने सत्याग्रह-सग्राम छेड़ा था । उस समय एक पठान को न मालूम क्यो यह सदेह हो गया कि उन्होने हमे तो सत्याग्रह मे झौंक रखा है और आप स्वय सरकार से मिल गये है। पठान इस सदेह के कारण गाधीजी पर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उन्हे मार डालने तक के लिए सकल्प कर बैठा ।

एक दिन पठान को गाधीजी मिल गये । पठान मौका देख ही रहा था, उसने उन्हे उठाकर गटर मे पटक दिया । गाधीजी चोट खाकर बेहोश हो गये । उनके मित्रो ने पता लगाकर उन्हे अस्पताल पहुँचाया । गाधीजी होश मे आये । उनके मित्रो नें कहा—आपको उस दुष्ट पठान ने बहुत कष्ट पहुँचाया है । आपके ठीक होते ही उस पर मुकद्मा चलाया जायेगा । गांधीजी की महत्ता उस समय देखने योग्य थी । उन्होंने कहा—अपने भाई पर मुकदमा मैं नही चला सकता । उसे मुझ पर सदेह हुआ और इसी कारण उसनें मेरे साथ

यह व्यवहार किया है। ऐसे प्रसग तो मेरी क्षमा की कसौटी हैं। मुझमे कितनी क्षमा है, यह अब मालूम हो सकेगा। गन्ना खेत में भी मीठा रहता है, घानी में पेला जाता है तब भी मीठा रहता है, भट्ठी पर चढाने पर भी मीठा रहता है। वह अपनी मिठास कभी नही त्यागता है। मैं क्या गन्ने से भी बदतर हूं, जो अपनी प्रकृति का परित्याग कर अपने ही एक भाई पर दावा दायर करूँ ! चलो, उसके पास चलें और इस तरह कसौटी करने के कारण उसका आभार मानें।

गाधीजी उसके यहाँ गये। गाधीजी की बाते सुनकर उसका हृदय पलट गया। वह अपने कृत्य के लिए पश्चात्ताप करने लगा कि मैंने लोगो के कहने-सुनने से व्यर्थ ही एक सत्पुरुष को पीडा पहुँचाई। पठान ने अन्त मे गाँधीजी के पैरो पडकर क्षमा-याचना की। गाधीजी ने अगर पठान पर मुकदमा दायर किया होता, तो वे उसे कारागार में भले ही भिजवा देते, पर उस पर विजय नही प्राप्त कर सकते थे। उस अवस्था में दोनों को वह रस कैसे मिलता !

गाधीजी ने गटर में फेंक देने वाले पठान पर मुकदमा नही चलाया। फिर क्या आप अपने सगे भाई पर मुकदमा चलाएंगे ? नही, तो भाई पर मुकदमा चलाने का नियमानुसार त्याग क्यो नही कर लेते ? जिन हाकिमो के सामने भाई-भाई के मुकदमे आते हैं वे इस प्रकार की घटना से और भी उपदेश ले सकते हैं। उन्हे मालूम हो सकता है कि ससार मे स्वार्थ की कैसी भीषण आग घधक रही है ! भाई, भाई का अधिकार हडपना चाहता है ! इस प्रकार की घटनाएँ वास्तव में प्रत्यक्ष उपदेश हैं !

गाधीजी की क्षमा-भावना पर विचार करने से यह

भी प्रतीत होता है कि ऐसी उत्तम क्षमा धारण करने वाले पुरुष आज भी मौजूद हैं, तो भगवान् नेमिनाथ के समय गजसुकुमार जैसे क्षमाशील श्रमण हों, इसमें आश्चर्य क्या है ?

गाधीजी के दया के विषय मे भी एक घटना सुनी जाती है। जगत् के दूसरे लोग जिसे दुतकारते हैं, सच्चा दयालु उसे अपनी दया का प्रथम पात्र समझता है। आज ससार मे बहुतेरे लोग हैं जो मुँह से दया-दया चिल्लाते हैं पर दया के लिये करते कुछ भी नही हैं। मगर गाधीजी ने दया के लिये क्या किया है, यह ध्यान देने योग्य है। गाधीजी गन्तूर गये थे। वहाँ वेश्याओ की एक सभा थी। वेश्याओ ने गाधीजी से मिलने का विचार किया। गाधीजी ने कहा— वे मेरी बहिनें हैं, प्रसन्नता के साथ मुझसे मिल सकती हैं। आखिर वे गाधीजी से मिली। गाधीजी ने उनके वस्त्र देख कर कहा—बहिनो ! तुम इस प्रकार के गदे वस्त्र न पहना करो। तब वेश्याओ ने कहा—आप इन वस्त्रो को गदा कहते हैं, पर हमारे पास दूसरे वस्त्र ही नही हैं।

वेश्याओ का यह कथन सुनकर गांधीजी ने कहा नीच धधा करने पर भी अगर इन्हे पूरे और साफ-सुथरे वस्त्र नसीब नही होते तो मेरे दूसरे गरीब भाइयो की क्या स्थिति होगी ? यह सोचकर उन्होने अपने सब कपडे त्याग दिये। वे चादर और लगोटी लगाकर रहने लगे।

दया का यह कैसा आदर्श उदाहरण है। आप तो दया की खातिर चर्बी के भी वस्त्र नही त्याग सकते ! अगर आप सच्चे अहिंसा-धर्म का पालन करें तो आपका भी कल्याण हो और दूसरों का भी। चर्बी लगे हुये वस्त्र की अपेक्षा

खादी में अधिक पैसे लगते जान पड़ेंगे, लेकिन यह देखना चाहिए कि खादी मे खर्च हुआ प्रत्येक पैसा हमारे देश के गरीब भाइयो के पास पहुँचता है और मैनचेस्टर की मलमल में व्यय हुआ रुपया विदेश चला जाता है। अंग्रेज लोग अपने देश का कितना खयाल रखते हैं ? कहते हैं, बबई में एक अंग्रेज ने अपने नौकर से बूट की जोड़ी मँगवाई। नौकर बाजार गया। उसने देखा—देशी बूट और विलायती बूट बनावट और मजबूती में समान हैं। फिर भी देशी बूट कीमत मे सस्ते और विलायती महँगे हैं। यह सोच कर वह देशी बूट ले आया। अंग्रेज ने कहा—अरे यह इडियन बूट तू क्यों ले आया है ? नौकर ने जब देशी बूट लाने का कारण उसे समझाया, तब वह अंग्रेज कहने लगा—विलायती बूट महँगा है तो भी मुझे वही खरीदना है। वह पैसा मेरे देश में रहेगा। अगर हम लोग इस प्रकार दूसरे देश को अपना पैसा देने लगेंगे, तो हम अपनी मातृभूमि के द्रोही हो जाएँगे।

इसी प्रकार खादी में अगर आपके कुछ अधिक पैसे लगेंगे तो भी वे सब पैसे गरीब स्वदेशवासियों के काम में आयेंगे और इससे देश का कल्याण होगा। इसके विपरीत चर्बी लगे हुए मिल के वस्त्र खरीदने पर पैसे प्राय. विदेशी पूँजीपतियो की तिजोरियो में जाएँगे।

मालूम हुआ है कि मद्रास के श्री राजगोपालाचार्य ने खादी के प्रयोग का एक कारखाना खोला है। उस कारखाने के जरिये १५८ गावो के लोगो का दुर्भिक्ष के समय गुजारा चला। छोटे-छोटे कामो से भी गरीबो को कितनी सहायता की जा सकती है, इसका विचार करो और साथ

जमीकन्द आदि के त्याग का उपदेश देना मेरे लिए आनन्द की बात है। परन्तु उसके लिए पात्र भी तो चाहिए ! आज मानव-समाज में बहुत बडे-बडे पाप फूट निकले हैं। ऐसे बडे-बड़े पाप पहले नही थे। तब, छोटे पापो का त्याग कराने से पहले बडे पापो का त्याग कराना आवश्यक है या नही ? जब बड़े पापो की प्रचुरता न थी, तब छोटे पापो का त्याग कराना उचित था और जब बड़े पापो का प्राचुर्य हो गया है तो पहले उन्ही का त्याग कराना उचित है। इस समय जमीकन्द और रात्रि-भोजन के त्याग के उपदेश को प्रधानता दी जाये या पचेन्द्रिय जीवो की घोर हिंसा करके प्राप्त की जाने वाली चर्बी लगे हुए वस्त्रो के त्याग के उपदेश को प्रधानता दी जाये ? मै जिन पापो का उल्लेख अपने उपदेश में करता हूं, उन्हे आप लोग आज ही त्याग दीजिए। फिर छोटे पापों के त्याग का उपदेश देने में मुझे असीम प्रसन्नता होगी। बडे-बडे पापो की ओर ध्यान न देकर अपेक्षा-कृत छोटे पापो को पहले दूर करने के लिए कैसे कहा जाये ?

लाखाजीराज पेरिस से बनकर आये हुए सदूक में मान-पत्र देने लगे। उस समय गाधीजी ने कहा—हमारे लाखो भाई रोटी के लिए तरस रहे हैं। इस अवस्था में मुझे ऐसे सदूक मे मानपत्र देना क्या मेरा उपहास नही है ? ऐसा कीमती सदूक रखने की जगह भी मेरे घर मे नही है। गांधीजी मे यह कैसा अपुरस्कार भाव है !

गाधीजी मे अनेक उत्तमोत्तम सद्‌गुण हैं। उनकी प्रामाणिकता की प्रशसा उनके विरोधी भी करते हैं। उनकी सादगी सराहनीय है। हृदय में सच्ची दया तभी अकुरित होती है,

जब श्रीमन्ताई का ढोंग त्यागकर सादगी अपनाई जाती है। इसीलिये उन्होंने श्रीमन्ताई त्याग कर फकीरी बाना धारण किया है। वे अगर चाहते तो श्रीमान् बन कर ससार के सभी भोग-विलास भोग सकते थे। कहते हैं– गाधीजी के लडके ने उन्हे पत्र लिखा था कि–'अब आप बड़े आदमी गिने जाते हैं, आप बैरिस्टर भी हैं और बुद्धिमान भी है। इस-लिए अब आप ऐसा कोई व्यवसाय सोचिये जिससे हम लोग श्रीमान् बन सके।' उसका अत्यन्त भावमय और मार्मिक उत्तर गाधीजी ने दिया था। उन्होंने लिखा था—मैं सुदामा और नरसी मेहता मे भी ज्यादा गरीब बनने की भावना रखता हू। तुम बहुत धनवान बनना चाहते हो और मैं बहुत गरीब बनना चाहता हू। ऐसी दशा मे तुम्हारा और मेरा मेल कैसे बैठेगा ?

आजकल बहुत-से लोग श्रीमताई के ढोंग में पड़ कर गरीबों की ओर से आँखे बद कर लेते हैं। उनके दिल में दीन-दुखियो की सेवा-सहायता करने का विचार तक नही आता है। मगर उन्हे यह ध्यान रखना चाहिए कि समाज की यह विषमता एक दिन असह्य हो जायेगी और तब भय-कर क्राति होगी। उस क्राति में गरीब-अमीर का भेद-भाव विनष्ट हो जायेगा और एक नई सामाजिक व्यवस्था का निर्माण होगा। बनेडा (मेवाड) मे पूज्य श्रीलालजी महा-राज ने कहा था कि गरीबो पर दया करो। उनकी उपेक्षा न करो। नही तो बोलशेविज्म आ जायेगा! उस समय आप श्रीमत लोगो को कष्ट मे पडना पडेगा। उस समय गरीब लोग अमीरो से कहेगे—'बताओ, तुम्हारे पास यह धन कहाँ से आया है ? हम गरीबो की रोटियो को पैसे के रूप

में जमा करके हमे तुमने भूखो मारा है। अब तुम अमीर और हम गरीब नही रह सकते। तुम्हे भी हमारे समान बनना पड़ेगा। हमारे समान परिश्रम करके खाना होगा। अब दूसरे के परिश्रम पर चैन की गुड्डी नही उडा सकते। बिना पर्याप्त परिश्रम किये किसी को भर-पेट खाने का क्या अधिकार है ?' इस प्रकार जिन गरीबो की आज उपेक्षा की जाती है वही गरीब आपकी श्रीमताई नष्ट कर डालेंगे। अगर आप चाहते हैं कि बोलशेविज्म न आये--क्योकि वह सिद्धात भी अनेक दोषो और त्रुटियो से भरा हुआ है- तो आपको गरीबो की सुधि लेनी चाहिए। अगर आप गरीबो की रक्षा करेंगे, तो गरीब आपकी रक्षा मे अपने प्राण तक निछावर कर देंगे। अतएव गरीबो की सहायता के लिए और अपनी रक्षा के लिए खादी को अपनाओ। गरीबो की रक्षा किये बिना आपकी रक्षा होना कठिन है। चर्बी के वस्त्र त्यागने पर आपको आत्मा को शाति मिलेगी, गरीबो की सहायता होगी और आप पाप से बचे रहेगे। इससे मुझे भी प्रसन्नता होगी। मेरी यह प्रबल कामना है कि आपको सुबुद्धि प्राप्त हो और इसके लिए आप परमात्मा की शरण ग्रहण करें, जिससे आपकी आत्मा का कल्याण हो।



जन्माष्टमी

यं शैवा समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो,
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्त्तेति नैयायिकाः ।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरता कर्मेति मीमांसकाः,
सोऽयं नो विदधातु वांछितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः ॥

यह परमात्मा की प्रार्थना है। सभी सम्प्रदायों मे परमात्मा की प्रार्थना करने की परिपाटी है। ससार का प्रत्येक आस्तिक सम्प्रदाय किसी न किसी रूप मे परमात्मा की प्रार्थना करता है, पर साम्प्रदायिकता के मोह मे पडकर प्रत्येक यही माने बैठा है कि परमात्मा हमारा, केवल हमारा ही है।

इसके विरुद्ध, जिन्होंने परमात्मा के स्वरूप को भलीभाँति समझ लिया है, वे ज्ञानीपुरुष यह मानते हैं कि परमात्मा सभी का है सभी के लिए है। परमात्मा किसी एक का नही है और जो किसी एक का है वह परमात्मा नहीं है। सूर्य किसका है ? सूर्य क्या किसी एक का होकर रहता है ? वह सब को समान प्रकाश देता है। जो सबको समान रूप से प्रकाश नही देता, वह सूर्य ही नही है।

परमात्मा की प्रार्थना करनें वाले भक्त अगर यह मानते हैं कि परमात्मा त्रिलोकीनाथ है और वह अपने गुणों

के द्वारा सर्वव्यापक है तो उन्हे यह भी मानना चाहिए कि वह सबका है। पुरातन महात्माओ ने अपनी गहरी अनुभूति के आधार पर 'परमात्मा सबका है', इस प्रकार की भावना व्यक्त की है।

जिन्होने ज्ञान का मर्म नही पाया है और जिनका अन्त करण राग-द्वेष से मलिन है, उनमे अहकार और ममत्व की प्रबलता होती है। वह अहकार या ममकार लौकिक वस्तुओ तक सीमित नही रहता। जब उसकी अत्यधिक प्रबलता होती है तब परमात्मा जैसी सार्वजनिक वस्तु भी अहकार की परिधि मे आ जाती है और लोग अभिमान के साथ कहते है—परमात्मा हमारा है, वह किसी और का नही है। पर किसी का कोई भी प्रयत्न जैसे आकाश को सार्वजनिक होने से नही रोक सकता, उसी प्रकार वह ईश्वर को भी साम्प्रदायिकता के तग दायरे मे बद नही कर सकता। अतएव हमे यह स्वीकार करना चाहिए कि परमात्मा सब का है अर्थात् उसकी भक्ति से सब अपना कल्याण कर सकते हैं। परमात्मा के विषय मे भेदभाव को कोई स्थान नही है।

प्राचीनकाल के महात्माओ की कृतियो मे, यदि उन्हे बारीक दृष्टि से देखा जाये तो, स्पष्ट प्रतीत होगा कि वे इस बात का पूर्ण ध्यान रखते थे कि धर्म क्लेश-कलह का कारण न होने पाए। धर्म, मगलकारक ही नही है, साक्षात् मगल है और जो स्वय मगल है वह क्लेश-कलह रूप अमगल का जनक कैसे हो सकता है? ऊपर कहे गये श्लोक मे यही उज्ज्वल भावना दृष्टिगोचर होती है। आज धार्मिक उदारता का वायु बहने लगा है, इसलिए मैं परमात्मा की एकता का प्रतिपादन नही करता, वरन् प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों

से यह पता चलता है कि अनेक पूर्ववर्ती महात्माओ ने अभेद-दशा का अनुभव किया था और परमात्मा की अभेद-रूप मे प्रार्थना की थी ।

अनुभूति-शून्य लोग परमात्मा को तो पाते नही, परमात्मा का नाम मात्र पाते है । परमात्मा, परम प्रकर्ष को प्राप्त अनत गुणो का अखड समूह है । वह एक भावमय सत्ता है, पर बहिर्दृष्टि लोग उसे शब्दमय मान बैठते हैं, । अनत गुणमय होने के कारण परमात्मा के अनत नाम हैं । उन सब नामो के वाच्य रूप मे जो एकता है, उसे न समझ पाने के कारण लोग परमात्मा के खड-खड करने पर उतारू हो जाते हैं । उनके लिए परमात्मा से बढकर परमात्मा का नाम है । अतएव वे नाम को पकड बैठते हैं । नाम के आवरण मे छिपी हुई विराट और व्यापक सत्ता को वे नही पहचानते । जिन्हे अन्तर्दृष्टि का लाभ हो गया है और जो शब्दो के व्यूह को चीर कर भीतरी मर्म तक पहुँचने का सामर्थ्य रखते है, वे नाम को गौण और वस्तु को प्रधान मानने लगते हैं । अतएव हमारे भीतर यह दिव्य भावना आनी चाहिए कि परमात्मा सबका है । उसे क्लेश-कदाग्रह का आधार बनाकर आपस मे लड-मरना नही चाहिए ।

एक प्राचीन महात्मा कहते हैं— शैव जिसे शिव कह कर पूजते हैं, बौद्ध जिसे बुद्ध कहते है, वेदान्ती जिसे ब्रह्म कहते हैं, नैयायिक जिसे कर्त्ता कहते हैं, जैन जिसे अर्हन् कहते हैं और मीमासक जिसे कर्म कह कर अपनी भावना व्यक्त करते है, वह—जो भी कोई परम मगल मूर्ति है—हमे सिद्धि प्रदान करे । कौन समस्त प्रयोजनो को सिद्ध करे, इस सबध मे कहा गया है—

त्रलोक्यनाथो हरिः ।

'हरि' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की गई है—

हरति पापानि इति हरिः ।

'हर' शब्द की भी ऐसी ही व्युत्पत्ति है । अर्थात् जो पापो का हरण, विनाश करता है, वह हरि या हर कहलाता है । शिव किसे कहते हैं, इस सबध मे कहा गया है– 'सत्य शिव सुन्दरम्' अर्थात् जो सत्य है, शिव यानि कल्याणमय है और सुन्दर है, वह हर या शिव है । त्रिलोकीनाथ हरि से पापहरण करने की प्रार्थना की गई है और पापो को हरने मे हरि और हर समान अर्थ रखते हैं । फिर इन दो नामो के अर्थ मे—जिसके यह दो नाम है उस परमात्मा मे—अन्तर क्या है ?–जिससे नाम की आड लेकर सिर-फुटौवल किया जाये ? बौद्ध लोग भले ही परमात्मा को 'बुद्ध' नाम देकर उसकी प्रार्थना करते है, पर वस्तु तो वही है । उनकी प्रार्थना भी पाप का नाश करने के लिए ही है । फिर हरि, हर या बुद्ध में भेद क्या रहा ? मीमासक उस परमतत्त्व को कर्म-रूप मानते हैं । पर वे कर्म, पापनाश करने के लिए करते है या पाप बढाना उनका उद्देश्य है ? जैन लोग परमात्मा को अर्हन् कहते हैं । लेकिन अर्हन् कह कर पाप बढाने के लिए परमात्मा की प्रार्थना करते हैं या पाप नष्ट करने के लिए ? जब पापो का नाश करने के लिए ही इन सब नामो से परमात्मा की प्रार्थना की जाती है, तो क्लेश और कलह का कारण क्या है ? जल, सलिल और पानी, जब एक ही वस्तु के अलग-अलग नाम हैं तो क्या जल से ही प्यास बुझेगी ? पानी से नही बुझेगी ? तात्पर्य यह है कि प्यास शात करने के लिए चाहे जल पिया

जाये, चाहे सलिल पिया जाये और चाहे पानी पिया जाये, सब एक ही बात है। इसी प्रकार पाप नाश करने के लिए चाहे किसी भी नाम से परमात्मा की प्रार्थना की जायें, उसमें भेद नही है। क्योकि नाम-भेद से वस्तु मे भेद नही होता। वस्तु की विभिन्नता गुण-मूलक है। अतएव परमात्मा की प्रार्थना करने मे उदारभाव से काम लेना चाहिए। जैन स्तोत्रो में जैनाचार्यों ने इसी प्रकार की उदार भावना से काम लिया है। जैन स्तोत्रों मे 'भक्तामर स्तोत्र' अत्यन्त प्रसिद्ध और प्रिय है। उसमे श्वेताम्वर, दिगम्वर आदि किसी भी सम्प्रदाय का भेद नही है। उसमे कहा है :—

त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्य,
ब्राह्मणमीश्वरमनन्तमनङ्गकेतुम्।
योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं,
ज्ञानस्वरूपममल प्रवदन्ति संतः।
बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधात्,
त्वं शङ्करोऽसि भुवनत्रयशङ्करत्वात्।
धाताऽसि धीर शिवमार्ग विधेर्विधानात्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन्! पुरुषोत्तमोऽसि॥

इन श्लोको मे परमात्मा की प्रार्थना ब्रह्मा, विष्णु, शिव और पुरुषोत्तम आदि नामो से की गई है। यहाँ इन सब में किसी प्रकार का भेद-भाव नही रखा गया है। आचार्य हेमचन्द्र ने कहा है—

तत्र यत्र समये यथा तथा, योऽसि सोऽस्यभिधया यया तया।
वीतदोषकलुषः स चेद्भवान्, एक एव भगवन्! नमोऽस्तुते॥

अर्थात् चाहे जिस सम्प्रदाय मे, चाहे जिस रूप मे,

चाहे जिस नाम से, आप चाहे जो हो, समस्त दोषों से रहित आप एक ही है । ऐसे हे एक-रूप भगवन् ! आपको नमस्कार हो ।

इस श्लोक मे स्पष्ट रूप से परमात्मा के विभिन्न नामो मे एकता का प्रतिपादन किया गया है। वास्तव में प्रार्थना करने से पहले हमे प्रार्थना के उद्देश्य का निश्चय कर लेना चाहिए । हम पाप बढाने के लिए प्रार्थना करते हैं या पाप नष्ट करने के लिए ? यदि प्रार्थना का उद्देश्य पाप नष्ट करना है तो परस्पर की भिन्नता और द्वेष-भावना से पाप-नष्ट नही होते । पाप नष्ट करने का उपाय क्या है, यह मैं आपको बतलाना चाहता हूं । आप ध्यान लगाकर सुने और उदारता के साथ उस पर विचार करे ।

आज जिस महापुरुष का जन्म-दिन है, उस महापुरुष ने भारत मे जिस शान्ति की प्रतिष्ठा की थी और जिस उदारता का आदर्श उपस्थित किया था और इसके लिए उसने जो महान् कार्य किये थे, उन्हे भूलकर हम अपना भी अकल्याण करते हैं और देश का भी अकल्याण करते हैं । आज की जनता उस महापुरुष के कार्य को भूल कर दु खी हो रही है । जन्माष्टमी का यह दिन भारत के कोने-कोने मे मनाया जाता है । यद्यपि साम्प्रदायिक या प्रातीय भेद के कारण आज के दिन को कोई श्रावण वदी ८ कहते है, कोई भादो वदी ८ कहते हैं, लेकिन इस दिन को जन्माष्टमी सभी कहते हैं । श्रीकृष्ण के उज्ज्वल चरित्र के कारण सभी लोग उन्हें मानते है । सभी के हृदय मे उनके प्रति आदर और श्रद्धा का भाव है । केवल सम्प्रदाय-भेद के कारण उन्हे भिन्न-भिन्न रूप में माना जाता है ।

कोई यह कह सकता है कि यदि कृष्ण एक ही थे, तो इस प्रकार की साम्प्रदायिक भिन्नता का कारण क्या है ? इसका उत्तर यह है कि दृष्टि-भेद के कारण एक ही वस्तु भिन्न-भिन्न रूप मे दिखाई देती है । उदाहरण के लिए रामायण को लीजिए। वाल्मीकीय रामायण, तुलसीदास की रामायण और गिरिधर की रामायण, इन सब मे एक ही राम-चरित्र का वर्णन किया गया है, फिर भी तीनो में, राम के चरित्र में बहुत अन्तर पाया जाता है। रामचन्द्र तो एक ही थे, पर उनका वर्णन करने वालो की दृष्टि भिन्न-भिन्न थी । यथा दृष्टितथा मृष्टि । इसी प्रकार कृष्ण का चरित महाभारत, गीता, भागवत और गीतगोविन्द से अलग-अलग प्रतिबिम्बित होता है। यह तो प्राचीनकाल की बात है, मगर वर्तमान मे भी ऐसा ही देखा जाता है। लोकमान्य तिलक और गाधीजी से कौन अपरिचित है? यह दोनो ही भारत-वर्ष से विख्यात पुरुष हैं और दोनो ने ही गीता के विषय मे अपना-अपना मन्तव्य प्रकट किया है । मगर तुलनात्मक अध्ययन करने वाले को यह स्पष्ट जान पडेगा कि तिलक के कृष्ण और गाधीजी के कृष्ण मे पर्याप्त अन्तर है । इस प्रकार दृष्टि-भेद से एक ही वस्तु भिन्न-भिन्न रूप मे दिखाई पडती है और प्रत्येक सम्प्रदाय ने अपनी मूल दृष्टि के अनुसार ही कृष्ण को चित्रित किया है । जैन-साहित्य ने भी कृष्ण को अगर अपनी मूल परम्परा के अनुकूल अपनाया है तो यह स्वाभाविक ही है । प्रत्येक महापुरुष का जीवन सम्प्रदाय की सीमा से आगे वढ जाता है। वह धर्म के उस विशाल और वृहद् क्षेत्र मे विस्तीर्ण हो जाता है, जहाँ सम्प्रदाय अस्त हो जाते है या सब सम्प्रदाय मिलकर एकमेक वन जाते है । ऐसे पुरुष का जीवन-व्यवहार किसी भी सम्प्र-

दाय के मुख्य आचार से विरोधी नहीं रह जाता। अतः सभी सम्प्रदाय उसे सन्मान की दृष्टि से देखते हैं और अपने सम्प्रदाय से अभिन्नता पाकर उसे अपने सम्प्रदाय के रंग में रंग देते हैं। ऐसा होना सर्वथा स्वाभाविक है। कोई परमात्मा या महापुरुष को किसी भी दृष्टि से अपनावे, तत्त्व सब का एक होना चाहिए। ध्येय मे भिन्नता नही होनी चाहिए। चाहे कचहरी हो, स्कूल हो या दुकान हो-सभी जगह पाँच और पाँच दस गिने जाते हैं। यद्यपि सब का कार्य भिन्न है, फिर भी पाच-पाँच को दस मानने में कोई अन्तर नही है। इसी प्रकार महापुरुष को चाहे जिस रूप मे ग्रहण किया जाये पर लक्ष्य सब का एक ही होना चाहिए। यह विचारकर उदारता से काम लेना चाहिए कि महापुरुष सभी के है और उनसे सभी को प्रेरणा प्राप्त हो सकती है। दृष्टि-भिन्नता के कारण किसी महापुरुष या परमात्मा के नाम पर आपस मे द्वेष उत्पन्न करना या ध्येय से विपरीत आचरण करना उचित नही है।

यह सभी जानते हैं कि कृष्ण का जन्म कस के कारागार में हुआ था। ऐसा होने पर भी कृष्ण का महत्व प्राचीनकाल से अब तक बना हुआ है कि सभी लोग उनका जन्मदिन मनाकर लाभ उठाते हैं। कृष्ण जैसे सत्वशाली महापुरुष का जन्म कारावास मे क्यो हुआ था, यह प्रश्न ही इस वात ही सूचना देता है कि माया का चश्मा उतार देने पर और उदारता से काम लेने पर कृष्ण के जीवन से वहुत कुछ लाभप्रद शिक्षा ली जा सकती है।

कृष्ण का जन्म आज की काली निशा में, अर्ध-रात्रि के समय कस के काले कैदखाने में हुआ था। मगर कैद-

खाने मे जन्मे हुए कृष्ण हमारा कल्याण नही कर सकते; हमारा कल्याण हमारे हृदय मे जन्मे हुए कृष्ण ही कर सकेंगे। अगर आप कृष्ण को आदर्श पुरुष मानते है, अगर आपके हृदय मे कृष्ण के प्रति श्रद्धा का भाव है, तो कृष्ण को अपने अंत.करण मे जन्माओ। कृष्ण के जीवन का अनुकरण करने के लिए उनके जीवन से फूट पडने वाली सादगी को अपनाओ। ऐसा करने से कृष्ण-जन्माष्टमी का मनाना वास्तविक कहा जा सकता है। भूतकाल मे, आपके इस जीवन में अनेको जन्माष्टमियाँ आई और चली गई हैं। उनके द्वारा आपका क्या कल्याण हुआ है ? इसी भाँति यह जन्माष्टमी भी अगर आपने मना ली और हृदय की कालिमा को नष्ट करने के लिए कृष्ण को हृदय में न जन्माया तो आपका कल्याण न होगा। अतएव यह न समझो कि कृष्ण का जन्म हजारो वर्ष पूर्व हुआ था, बल्कि यह मानो कि कृष्ण अभी-अभी हमारे हृदय में जन्मे हैं। ऐसा अनुभव करोगे तो आपका कल्याण होगा। जो हजारो वर्ष पहले कृष्ण का जन्म लेना मानता है, वह कृष्ण को ठीक तरह नही समझा है। कृष्ण के स्थूल शरीर को कृष्ण नही कहा जा सकता। कृष्ण का अर्थ है—सादगी, कृष्ण का अर्थ है सत्य, कृष्ण का अर्थ है निरभिमानता और कृष्ण का अर्थ है सरलता। जिसने कृष्ण का यह भावमय अर्थ समझा, उसी ने कृष्ण को समझा है और वही कृष्ण के सहारे आत्म-कल्याण कर सकता है।

अगर आप हजारो वर्ष पूर्व कृष्ण का जन्म मानेंगे, तो आपको ऐसा जान पडेगा कि कृष्ण आज अतीत के उदर में समा चुके हैं। अब उनकी कोई सत्ता नही है और जिसकी

सत्ता नही है, वह हमारे कल्याण मे निमित्त कैसे हो सकता है ? अतएव ऐसा सोचकर आप कृष्ण से कोई लाभ न उठा सकेंगे। आपको उनका विरह प्रतीत होगा और विरह मे तादात्म्य की अनुभूति नही हो सकेगी। अतएव कृष्ण को आप सत्य, सरलता, निरहकारता आदि गुणो के रूप मे मौजूद समझे, अपने साथ उनके तादात्म्य का अनुभव करें और इस अनुभव के द्वारा आत्मा का कल्याण करे।

यह बात कृष्ण के लिये कही गई है। लेकिन पहले कहा जा चुका है कि वास्तव मे परमात्मा के नाम ही जुदे-जुदे हैं, परमात्मा नही। अतएव जो बात कृष्ण के विषय मे कही जाये, वह उन सबके लिए समझनी चाहिए जिनका नाम लेकर परमात्मा की प्रार्थना की जाती है।

कृष्ण पुराने है या नये ? इस प्रश्न का उत्तर मैं यह दूँगा कि कृष्ण नवीन हैं, पुराने नही। सूर्य अनादि से प्रतिदिन उदित होता है, फिर जब सूर्य प्रभात मे उदित होता है, तब कमल विकसित होते है या नही ? कमल यह नही सोचते कि सूर्य पुराना है तो हम क्यो प्रफुल्लित हों ? हाँ, जो कमल मर गये हैं—जिनकी जड उखड गई है, वे सूर्य से सूखते हैं। जीवित कमल तो सूर्य का उदय होने पर विकसित होते ही है। इसी प्रकार अगर आपके अन्दर जीवन है—जागृति है, तो आप कृष्ण को नूतन ही मानेंगे और नूतन मानकर अपने हृदय को विकसित करेंगे। अगर आपने कृष्ण को भूत माना—पुराना समझा और उनके चरित से आपके हृदय मे परिवर्तन नही हुआ, तो फिर आपको यही मानना चाहिए कि हमारा हृदय मरा हुआ है अर्थात् उसमे की भावना मर गई है।

प्रभात की वेला होने पर पक्षी अपने घोंसलो मे सोये नही पडे रहते। उनमे मानो नव-जीवन का सचार हो जाता है। वे अपने कलरव द्वारा सूर्य का आह्वान करते है या नवीन आलोक-पुज पाकर अपने हृदय में न समा सकने वाले हर्ष को बाहर उंडेलते हैं। वे सूर्य को पुरानी चीज समझकर उसकी ओर उपेक्षा नही करते और न प्रमाद का ही सेवन करते हैं। जिस पक्षी में जीवन नही है वह भले ही नही बोलता। हर्ष भी वह प्रकट नही करता। परन्तु जीवित पक्षी बिना हर्ष की अनुभूति किये नही रह सकता। जब पक्षी जैसा प्राणी ऐसा करता है तब विवेकशाली मनुष्य को क्या करना चाहिए ? जो मनुष्य सूर्योदय होने पर भी टाँगे पसारे पडा रहता है, वह आगे क्या कर सकता है ? साथ ही यह कैसे कहा जा सकता है कि उसका हृदय जीवित है। जिसका हृदय जीवित नही है वह कैसे समझेगा कि सूर्य या कृष्ण पुराने नही वरन् प्रतिक्षण नूतन है। साधु के लिए कहा गया है कि अगर कोई साधु सूर्योदय होने पर भी पड़ा रहता है तो वह गृहस्थो के टुकडे खाकर पृथ्वी का बोझा बनता है। मगर आप गृहस्थ क्या करते हैं ? आप पहर भर दिन चढे तक तो नही सोते पडे रहते ?

सूर्य निकलने पर भी जो लोग सुस्त पडे रहते है, जिनमे जागृति का कोई चिन्ह नजर नही आता, उनके लिए जिस प्रकार सूर्य का निकलना और न निकलना वरावर है, उसी प्रकार सूर्य से भी अधिक तेजस्वी महापुरुप का जन्म-दिन होने पर भी जो सुस्त और निरुत्साह वना हुआ है, उसके लिए महापुरुप का जन्म होना निरर्थक है।

आप यह कह सकते हैं कि हम अत्यन्त उल्लास के

साथ आज कृष्ण का जन्म-दिवस मनाएँगे। फिर हमारे लिए कृष्ण-जन्म निरर्थक क्यो है ? मगर मैं पूछता हू—जन्म-दिन मनाने का आपका तरीका क्या है ? अच्छा खाना-पीना और पहनना-ओढना ही क्या जन्माष्टमी मनाना है ? ऐसा करना एक प्रकार की विडबना है—ढोग है। जब कृष्ण स्वय ढोग से परे थे, तब उनके जन्म-दिन के नाम पर ढोग रचने वाले क्या जन्माष्टमी के उपासक कहला सकते हैं ? अगर आप सचमुच जन्माष्टमी मनाना चाहते हैं तो सर्व-प्रथम हृदय को जागृत करो, हृदय मे कृष्ण को जन्माओ और कृष्ण के जीवन-व्यवहार का गहरा विचार कर सत्य एव शील को अपनाओ। ऐसा करोगे तभी सच्ची जन्माष्टमी मनाई जा सकेगी।

अब, सक्षेप मे, मै यह बताऊँगा कि कृष्ण कैसी परि-स्थिति मे जन्मे थे और उनके जन्म-काल मे भारतवर्ष की क्या दशा थी ?

जब कृष्ण का जन्म हुआ था, तब भारत धर्म से शून्य-सा हो रहा था। चहु ओर अधर्म का प्रचड प्रताप फैला हुआ था। उस समय राजा पापी थे, यह कहना पर्याप्त नही है, क्योकि पाप कोई स्थूल वस्तु नही है। वह किसी के हृदय में ही जन्मता है और जिसके हृदय मे जन्मता है उसके द्वारा जगत् मे त्राहि-त्राहि मच जाती है। जब कृष्ण जन्मे थे, तब भी ऐसा ही हो रहा था। अधर्म और अत्याचार के कारण सर्वत्र हाहाकार मच रहा था। एक ओर कस कहता था—मैं राजा हू, राजा—परमात्मा का प्रतिनिधि ! मेरा वाक्य परमात्मा का अमिट आदेश है। मेरी कृति परमात्मा की कृति है। दूसरी ओर मदाँध जरासघ हुँकारता था और तीसरी ओर दिल्लीपति दुर्योधन गरजता था। वह कहता

था---मैं ईश्वर का अंश हूं, विश्व के ऐश्वर्य पर मेरा एकाधिपत्य है। ऐश्वर्य मेरे लिये है। जगत् की मूल्यवान् वस्तुएँ मेरे लिए हैं। संसार की समस्त सम्पत्ति मेरे उपयोग के लिए है! इसी प्रकार शिशुपाल, रुक्मकुमार, कालीकुमार और कालीनाग भी अहंकार के पुतले बने बैठे थे। उनके उच्छृंखल अत्याचारों का पृथ्वी पर नंगा नाच हो रहा था। संसार में धर्म भी कोई चीज है, न्याय की भी यहाँ सत्ता है, यह बात उन्हें समझ ही नहीं पडती थी। अगर कोई धर्म का नाम उनके सामने लेता था तो कहते थे– 'धर्म क्या है? हम जो कहते हैं, जो करते हैं, वही धर्म है, क्योंकि हम ईश्वर के अंश हैं! धर्म निर्बलों का सहारा है, अनाथों का नाथ है। हम न निर्बल हैं, न अनाथ है। हम से और धर्म से क्या वास्ता? हमारे राजदंड को देखते ही धर्म और न्याय नौ-दो-ग्यारह हो जाते हैं। अतएवं यहाँ न धर्म की दुहाई कारगार हो सकती है और न नीति की।' उस समय के नीतिज्ञ विद्वानों ने इन अभिमानी राजाओं को समझाने का प्रयत्न किया था, परन्तु सबको यही उत्तर मिलता था कि हम धर्म के गुलाम नहीं हैं---शास्त्र के दास नहीं हैं। हमें जो रुचिकर है, वही शास्त्र है। हमें केवल अर्थशास्त्र से जानकारी है और वह भी इस रूप में कि किस प्रकार पराया धन अपना बना लिया जाये? हम धनोपार्जन के लिए कहाँ जाएँ? दुनिया कमावे और हम उसका उपभोग करें, बस यही अर्थशास्त्र का मर्म है।

उस समय ऐसा अन्याय फैला हुआ था। न्याय बेचारा मारा-मारा फिरता था। धर्म का नाम लेना मानो मुसीबत को निमंत्रण देना था। जैसे घोर अन्धकार में डूबा हुआ

मनुष्य सूर्य के उदय की व्याकुलतापूर्वक प्रतीक्षा करता है, उसी प्रकार उस समय के लोग किसी महापुरुष की प्रतीक्षा कर रहे थे, जो भूतल पर प्रकट होकर पाप का नाश करे और धर्म-नीति की प्रतिष्ठा करे।

महापुरुष का जन्म इसलिए कल्याणकारी माना जाता है कि वे पापों का सहार करते हैं। हम लोग भी इसी कारण महापुरुष की पूजा करते हैं। मगर यह देखना चाहिए कि अमुक महापुरुष ने जिस पाप को निर्मूल किया था, वह पाप हमारे हृदय मे घुसा तो नही है? अगर घुसा हुआ है तो उसे निर्मूल करने के लिए कोई न जन्मेगा? परमात्मा की प्रार्थना करते हुए यही कहा जाता है—'हे प्रभो! अधर्म नष्ट करो।' कृष्ण के लिए भी यही कहा जाता है। अधर्म के बदले धर्म को नष्ट करने की प्रार्थना कोई नही करता। जब आप अधर्म का नाश करने के लिए बुलाते हैं, तब वह क्या आपके हृदय में अधर्म होने पर आपको छोड़ देगा? क्या आप सोचते हैं कि वह किसी प्रकार का पक्षपात या भेद करेगा? उसे अधर्म नष्ट करना है, अतएव जहाँ अधर्म होगा, वहाँ उसे वह नष्ट करेगा ही। अतएव अगर आप परमात्मा की प्रार्थना करते है, तो अपने हृदय मे से अधर्म को दूर कर दो। ऊपर से कृष्ण-कृष्ण चिल्लाने और भीतर-भीतर कस का समर्थन करने से काम न चलेगा। ऐसा हुआ तो याद रखना— कृष्ण, कस का ध्वस करने के लिए ही जन्मे थे! 'मुँह मे राम बगल मे छुरी' का पाखड वहाँ नही चल सकता।

श्रीकृष्ण के जन्मकाल की परिस्थिति का दिग्दर्शन कराने के लिये सबके अत्याचारो का वणन न करके केवल कस के

अत्याचारो का ही उल्लेख करूँगा। कस एक प्रबल अत्याचारी था। उसके अत्याचारो का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि वह अपने पिता को कारागार के सीखचो में बद करके स्वय राजा बन बैठा था। कस के इस कार्य से प्रसन्न होकर और उसे वीर समझकर जरासघ ने अपनी कन्या उसे व्याह दी। जरासघ का दामाद बन जाने के कारण उसका साहस और अधिक बढ गया। अब वह समझने लगा कि जगत् मे मैं ही हू—मेरा मुकाबला करने वाला ससार मे और कोई नही है।

जैन-शास्त्र कहता है—कस का अन्याय देखकर उसके भाई अतिमुक्त ने यह निश्चय किया—'जो अपने पूजनीय पिता को कैद करके आप राजा बना है और प्रजा पर घोर से घोर अत्याचार कर रहा है, उसके आश्रय मे रहना और उसके अन्याय के विष से विषैले टुकडे खाना आत्मा का हनन करना है। जगल मे रहना और निरवद्य एव नीरस आहार पर निर्वाह करना बेहतर और श्रेयस्कर है। कस के पास रहकर अन्याय का प्रसाद लेना मेरे लिए उचित नही है।' ऐसा विचार कर अतिमुक्त ने दीक्षा धारण की और वे मुनि बन गये। एक बार अतिमुक्त मुनि भिक्षा के लिए या कस की राजचर्या जानने के लिए कस के महल मे गये। वहाँ कस की रानी जीवयशा मदान्ध होकर मुनि का उपहास करने लगी। उपहास के साथ वह मुनि के प्रति कटुक शब्दों का भी प्रयोग करने लगी। वह बोली—'वाह-वाह! यह देखो राजघराने मे पैदा हुए हैं! कुल को कलक लगाते हुए इन्हे लाज नही आती! हाथ से कमाकर नही खाया जाता, इसलिए भीख माँगने के लिए दर-दर भटकते फिरते हैं। इन्हे लज्जित होना चाहिए सो तो होते नही, उल्टे हमे लाजो

मरना पडता है ।'

जीवयशा की कठोर वाणी सुनकर मुनि ने उत्तर दिया-'मेरी भर्त्सना करने के बदले अगर तुमने अपने पापो को देखा होता तो तुम्हारा कल्याण होता । जीवयशा ! अपने दोष देखने की निर्मल दृष्टि विरले ही पाते है और जिन्हे यह दृष्टि प्राप्त है, वे निस्सदेह भाग्यशाली हैं । दूसरो के दोपो को देखने और गुणो को दोष समझ लेने से अन्त करण मलीन बनता है, पर स्वदोप-दर्शन से निर्मलता आती है । फिर भी अगर तुम्हे दूसरे के दोष ही देखने है, तो अपने पति को क्यों नही देखती, जो पिता को कारागार में बद करके राजा बन बैठा है और जिसने अपनी सतान के सामने एक सुन्दर आदर्श उपस्थित कर दिया है ! इस दुराचार का विचार आते ही लज्जा से मस्तक झुक जाना चाहिए । मैं तो केवल पेट को भाडा देने के लिए ही खाता हूं और इसीलिए भिक्षा माँगता हू। मेरी भिक्षा सर्वसम्प कारी भिक्षा है । मैं धर्म की आराधना के लिए ही आहार करता हू । पर तुम भी तो सोचो कि तुम किसलिए खाती हो ? तुम खा-पीकर जो शक्ति प्राप्त करती हो, वह शक्ति अन्याय मे व्यय होती है और जिस अन्याय मे आज तुम और तुम्हारे स्वामी आनन्द मान रहे हैं । वही अन्याय तुम्हारे विनाश का कारण होगा । तुम अपनी जिस ननँद देवकी का सिर गूथ रही हो उसके पुत्र द्वारा ही तुम्हारा पति मारा जायेगा और तुम्हे वैधव्य की व्यथा भोगनी पड़ेगी । अन्याय का फल उसी समय तुम्हारी समझ में आयेगा ।'

अतिमुक्त मुनि की खरी बात सुनकर जीवयशा घबराई और सोचने लगी-'मैंने वृथा ही इस मुनि को छेडा ।'

देवकी के पुत्र द्वारा अपने पति का हनन होगा, यह सुनकर उसके रोंगटे खड़े हो गये। चेहरे पर उदासी छा गई। जीवयशा अपना मुँह लटकाए उदास बैठी थी कि उसी समय अहकार मे चूर कस भी उसके समीप उसी महल में आ पहुँचा। रानी को उदास देखकर कस ने कहा—'प्रिये! इस असामयिक उदासी का कारण क्या है? सदा प्रफुल्लित रहने वाले तुम्हारे चेहरे पर उदासीनता क्यो झलक रही है? जब तुम उदासीन रहोगी तो ससार में प्रसन्नता किसके हिस्से आयेगी? बताओ, उदासी का क्या कारण है?'

जीवयशा ने कहा नाथ मेरी उदासीनता का गहरा कारण है। यह कारण इतना भयकर है कि मुँह से कहते भी नही बनता।

कस आखिर कहे बिना कैसे चलेगा। उसका प्रतिकार करना होगा। बिना कहे कैसे प्रतिकार होगा?

जीवयशा —आज आपके भाई अतिमुक्त अनगार यहाँ आये थे। मैंने उनका उपहास किया और कुछ कठोर वचन भी मुँह से निकल गये। उन मुनि ने मुझे कुछ शिक्षा देने के साथ अत्यन्त अनिष्टसूचक भविष्यवाणी की है। उसका स्मरण आते ही कलेजा मुँह को आता है। उन्होंने कहा है 'देवकी का पुत्र तेरे पति का नाश करेगा।' यह सुनकर मेरी चिन्ता का पार नही है।

जीवयशा का कथन सुनकर कस ने अट्टहास किया, मानो होनहार को वह अपने अट्टहास से उड़ा देना चाहता हो। उसने जीवयशा से कहा—'बस, इसी बात से इतनी चिन्ता हो गई! भला इन बाबा-जोगियो की बात का क्या ठिकाना? वे तो इसी तरह की ऊल-जलूल बाते गढ कर

दूसरों के मन में भ्रम घुसेड़ देते हैं। बेचारे देवकी के लडके की क्या मजाल कि वह मुझे मार सके। कदाचित् मारने का प्रयत्न भी करता, तो यह और भी अच्छा हुआ कि हमे पहिले से मालूम हो गया। यह तो उदासी के बदले प्रसन्नता की बात है। देवकी का पुत्र मुझे नष्ट करे, उससे पहले मैं देवकी का ही काम तमाम कर देता हू। न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी। इसमे चिन्ता की बात ही क्या है!'

जीवयशा को सान्त्वना देकर कंस राजसभा मे आया। उस समय राजसभा मे एक विद्वान् आये थे। कंस के पूछने पर उन्होंने बतलाया—मैं ज्योतिष-शास्त्र मे पारगत हू। कंस ने कहा—मुझे ज्योतिष-शास्त्र पर विश्वास नही है। पर ज्योतिषी ने कहा—'किसी शास्त्र की प्रामाणिकता, किसी के विश्वास पर अवलम्बित नही है। ज्योतिष-शास्त्र अगर प्रमाण है, तो आपके अविश्वास के कारण उसकी प्रामाणिकता नष्ट नही हो सकती।' कंस ज्योतिर्विद की निखालिसता से कुछ आकृष्ट-सा हुआ। उसने कहा—'अगर आप ज्योतिष-शास्त्र को प्रमाण मानते हैं तो यह बताइए कि मेरी मृत्यु किसके हाथ से होगी?'

आज ज्योतिष-शास्त्र के सम्बन्ध मे अनेक प्रकार की भ्रांतियाँ फैली है। मेरे खयाल से इसके दो कारण हैं—प्रथम तो ज्योतिष का अविकल ज्ञान नही रहा है और दूसरे ज्योतिषी लोग लोभ के चगुल मे पडे हुए हैं। साठ वर्ष के बूढे के साथ बारह वर्ष की लडकी का लगन जोड़ने वाला कोई ज्योतिषी ही तो होगा! इस प्रकार लोभ ने इस विद्या को नष्ट-भ्रष्ट-सा कर डाला है। आर्थिक लोभ से प्रेरित होकर किसी भी शास्त्र का दुरुपयोग करना उसका अपमान करने

के समान है । गणित विद्या सच्ची है, यह शास्त्र भी मानता है और जो लोग निस्पृह हैं उनका गणित आज भी सही उतरता है । लेकिन लोभी लोगो ने गणित को बदनाम कर दिया है ।

कस की सभा मे आया हुआ ज्योतिपी लोभी नही था । लोभी मे निर्भयता नही होती । निर्लोभ व्यक्ति सत्य कहने से भय नही खाता । अतएव ज्योतिषी ने कस से साफ-साफ कह दिया– 'आपके घर में एक ऐसा महापुरुष जन्मेगा, जो आपको नष्ट करेगा ।'

कस– 'उसका लक्षण क्या होगा ?'

ज्योतिपी–'वह गोकुल में रह कर बडा होगा । गायों से प्रेम करेगा और जगल मे जाकर गायें चराएगा । वह अपने हाथ मे वासुरी रखकर जनता को उसकी मधुर ध्वनि से मोहित कर लेगा । तुम उसे मार डालने का प्रयत्न भी करोगे, पर ज्यों-ज्यों तुम प्रयत्न करोगे, त्यो-त्यो उसका वल वढता जायेगा । उसे नष्ट करने मे कोई समर्थ न हो सकेगा और वह तुम्हारा नाश करने मे समर्थ होगा ।'

ज्योतिषी और मुनि की मिलती हुई भविष्य-वाणी सुनकर कस का कलेजा एक वार काँप उठा । उसके सामने मृत्यु नाचने-सी लगी । पर दूसरे ही क्षण उसकी नास्तिकता ने उसके विचारो को ढँक लिया । अविश्वास का त्राण उसे प्राप्त हो गया । वह सोचने लगा—'ये लोग वडे ठग और धूर्त हैं । मेरा लडका ही क्या मुझे मार सकता है ?'

भविष्यवाणी सुनकर कस को सावधान हो जाना चाहिए था । उसे अन्याय और अधर्म के मार्ग से विमुख होकर न्याय

और धर्म के प्रशस्त पथ की ओर उन्मुख होना चाहिए था। पर कहा है—'विनाशकाले विपरीत बुद्धिः।' कस के सबध में यह उक्ति पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है। अन्त मे कस ने ज्योतिषी से कहा—तुम्हारी धूर्तता की यहाँ दाल न गलेगी। मैं तुम्हे कैद करता हू। मेरा काल जन्मेगा और मुझे मार डालेगा, तब वही तुम्हे कारागार से मुक्त कर देगा। अन्यथा मैं तो तुम्हारा काल होता ही हू।

राजा लोग कारागार को अपनी रक्षा का सफल साधन समझते हैं। उन्हे न्याय-अन्याय की परवाह नहीं होती। जिस पर उनका कोप हुआ, उसी को जेल के सीखचो में बद कर देते हैं और अपने-आपको सुरक्षित मान बैठते हैं। मगर सत्ता का यह दुरुपयोग कब तक उनकी रक्षा कर सकता है?

कस का कथन सुनकर ज्योतिषी ने कहा—'आपके निर्णय में मीन-मेख हो ही कैसे सकती है? मुझे अपनी विद्या पर पूर्ण श्रद्धा है। अगर मेरी विद्या सच्ची ठहरे तो ही मुझे जीवित रहना चाहिए; नही तो जेल मे सड़कर मर जाना ही अच्छा है।'

कस ने उस ज्योतिषि को जेल के हवाले कर दिया।

भागवत के अनुसार नारद ने कस को समझाया था और देवकी के पुत्र द्वारा उसकी मृत्यु बतलाई थी। नारद ने कहा था—'तुम जल्दी सँभल जाओ, अन्याय को त्यागो और नीति तथा धर्म के अनुसार अपने कर्त्तव्य का पालन करो। ऐसा करते हुए अगर मृत्यु भी आ जाएगी, तो शान्ति से मर सकोगे।'

कस ने नारद से कहा- 'महाराज! यह मेरा सद्-

भाग्य है कि मेरी मृत्यु की सूचना मुझे अभी से मिल गई है। भावी अनिष्ट की सूचना पहले ही मिल जाना निस्सदेह सौभाग्य ही समझना चाहिए। ऐसा होने से, पहले ही उसके निवारण की व्यवस्था की जा सकती है। इस बात से जरा भी भयभीत नही हूं कि देवकी का पुत्र मुझे मारेगा। मै शूरवीर क्षत्रिय हू। मौत मेरे लिए खेल है। दूसरे के प्राण ले लेना मेरे बाएं हाथ का काम है। आपने मुझे सावधान कर दिया, इसलिए आपका कृतज्ञ हू। मै देवकी को ही देवलोक भेज दूगा तब किसका पुत्र मुझे मारने के लिए जन्मेगा ? चोर की माँ को मार दिया जायेगा तो चोर कहाँ से आयेगा ?'

इस प्रकार कह कर वह नारद के सामने ही क्रोध का मारा भडक उठा। नारद ने उसे फिर समझाया-शात होओ। इस प्रकार क्रुद्ध होने से कोई नतीजा नही निकलेगा। तुम जो सोचते हो वह सफल नही हो सकता। महापुरुष धर्मात्मा होते है। धर्म जिसकी रक्षा करता है उसका कोई कुछ नही बिगाड सकता। 'धर्मो रक्षति रक्षित ।'

कस को सबने समझाया, पर वह न माना, न माना। वह न समझा। पर आप तो समझो और मानो कि पाप की जाहोजलाली न कभी रही है, न रहेगी। दो दिन के लिए कोई भले ही मौज मान ले, पर अन्त मे पाप के प्रभाव से पतन अवश्य होता है।

नारद के समझाने पर भी कस न समझा। उसने कहा—महाराज ! अब आप पधारिये। अब आपकी यहाँ आवश्यकता नही रही है। मुझे पहले खबर लग गई है तो

और धर्म के प्रशस्त पथ की ओर उन्मुख होना चाहिए था। पर कहा है– 'विनाशकाले विपरीत बुद्धिः।' कस के सबध में यह उक्ति पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है। अन्त मे कस ने ज्योतिषी से कहा–तुम्हारी धूर्तता की यहाँ दाल न गलेगी। मैं तुम्हे कैद करता हू। मेरा काल जन्मेगा और मुझे मार डालेगा, तब वही तुम्हे कारागार से मुक्त कर देगा। अन्यथा मैं तो तुम्हारा काल होता ही हू।

राजा लोग कारागार को अपनी रक्षा का सफल साधन समझते हैं। उन्हे न्याय-अन्याय की परवाह नहीं होती। जिस पर उनका कोप हुआ उसी को जेल के सीखचो में बद कर देते हैं और अपने-आपको सुरक्षित मान बैठते है। मगर सत्ता का यह दुरुपयोग कब तक उनकी रक्षा कर सकता है?

कस का कथन सुनकर ज्योतिषी ने कहा–'आपके निर्णय मे मीन-मेख हो ही कैसे सकती है? मुझे अपनी विद्या पर पूर्ण श्रद्धा है। अगर मेरी विद्या सच्ची ठहरे तो ही मुझे जीवित रहना चाहिए; नहीं तो जेल मे सड़कर मर जाना ही अच्छा है।'

कंस ने उस ज्योतिषि को जेल के हवाले कर दिया।

भागवत के अनुसार नारद ने कस को समझाया था और देवकी के पुत्र द्वारा उसकी मृत्यु बतलाई थी। नारद ने कहा था– 'तुम जल्दी सँभल जाओ, अन्याय को त्यागो और नीति तथा धर्म के अनुसार अपने कर्त्तव्य का पालन करो। ऐसा करते हुए अगर मृत्यु भी आ जाएगी, तो शान्ति से मर सकोगे।'

कस ने नारद से कहा– 'महाराज! यह मेरा सद्-

भाग्य है कि मेरी मृत्यु की सूचना मुझे अभी से मिल गई है। भावी अनिष्ट की सूचना पहले ही मिल जाना निस्सदेह सौभाग्य ही समझना चाहिए। ऐसा होने से, पहले ही उसके निवारण की व्यवस्था की जा सकती है। इस बात से जरा भी भयभीत नही हूं कि देवकी का पुत्र मुझे मारेगा। मैं शूरवीर क्षत्रिय हू। मौत मेरे लिए खेल है। दूसरे के प्राण ले लेना मेरे बाएँ हाथ का काम है। आपने मुझे सावधान कर दिया, इसलिए आपका कृतज्ञ हू। मैं देवकी को ही देवलोक भेज दूगा तब किसका पुत्र मुझे मारने के लिए जन्मेगा ? चोर की माँ को मार दिया जायेगा तो चोर कहाँ से आयेगा ?'

इस प्रकार कह कर वह नारद के सामने ही क्रोध का मारा भडक उठा। नारद ने उसे फिर समझाया-शात होओ। इस प्रकार क्रुद्ध होने से कोई नतीजा नही निकलेगा। तुम जो सोचते हो वह सफल नही हो सकता। महापुरुष धर्मात्मा होते है। धर्म जिसकी रक्षा करता है उसका कोई कुछ नही बिगाड सकता। 'धर्मो रक्षति रक्षित।'

कस को सबने समझाया, पर वह न माना, न माना। वह न समझा। पर आप तो समझो और मानो कि पाप की जाहोजलाली न कभी रही है, न रहेगी। दो दिन के लिए कोई भले ही मौज मान ले, पर अन्त मे पाप के प्रभाव से पतन अवश्य होता है।

नारद के समझाने पर भी कस न समझा। उसने कहा—महाराज ! अब आप पधारिये। अब आपकी यहाँ आवश्यकता नही रही है। मुझे पहले खबर लग गई है तो

मैं सारा प्रबंध कर लूंगा। भावी आपत्ति की सूचना देने के लिए मैं आपका कृतज्ञ हूं। यह मेरा सौभाग्य है कि मुझे पहले ही सब सूचना प्राप्त हो गई।

नारदजी चले गये। कंस ने देवकी को मार डालने का निश्चय किया। पर किसी ने उसे समझाया कुमारी कन्या को मार डालना अत्यन्त भीषण कृत्य है। ऐसा करने से घोर पाप लगता है, पुण्य क्षीण होता है और जगत् में अपकीर्ति होती है। यद्यपि कंस पाप-पुण्य को नहीं मानता था, पर जगत् मे अपकीर्ति फैल जाने पर उसे भय था। इसके अतिरिक्त उसने यह भी सोचा कि ऐसा करने से लोग मुझे डरपोक समझेंगे। अतएव उसने देवकी को मार डालने का विचार त्याग दिया। इसके बदले उसने दूसरा उपाय सोचा—देवकी का विवाह कर दिया जाये और उसके गर्भ से जब जो संतान उत्पन्न हो, उसे उसी समय तलवार के घाट उतार दिया जाये। ऐसा करने से मैं अपने काल का भी नाश कर सकूंगा, मेरा अपयश भी न होगा और डरपोक भी नहीं कहलाऊंगा।

ऐसा निश्चय करके उसने वसुदेव के साथ देवकी का विवाह कर दिया। यद्यपि कंस के हृदय में दूसरी बात थी, उसका हृदय कुटिलता से भरा हुआ था, लेकिन ऊपर से उसने वसुदेव के साथ खूब कपट-स्नेह प्रकट किया और वसुदेव की खूब सेवा की। वसुदेव ने इससे प्रसन्न होकर कह दिया—आप जो चाहे वही मैं आपको दूंगा। कंस जानता था—वसुदेव क्षत्रिय है और जो बात मुंह से निकालेंगे उसका अवश्य पालन करेंगे। अतएव कंस ने कहा—'यदि आप मुझ पर कृपा रखते है तो मैं आपसे यह चाहता हूं कि मेरी बहन

देवकी के गर्भ से जो बालक उत्पन्न हों, वे सब मुझे सौप दिये जाये और मैं अपनी इच्छा के अनुसार उनका उपयोग कर सकू ।' वसुदेव के हृदय मे लेशमात्र भी यह आशका नही थी कि कस अपनी बहन के बालको को मार डालेगा। अतएव उन्होने सहज भाव से स्वीकृति दे दी । कस यह स्वीकृति पाकर मानो निहाल हो गया। उसमें नई जान-सी आ गई।

वसुदेव जैसे सत्यवादी के छः बालक मारे जाये, यह नही हो सकता । इस सबध में शास्त्र में कहा है– सुलसा के मृत-पुत्र होते थे । उसने देव की उपासना की । देव ने कहा– 'मृत बालक को जीवित कर देना मेरे सामर्थ्य से बाहर है । मगर तुम्हारे मरे हुए बालको के बदले मे मैं ऐसे बालक ला दूगा, जिसकी समानता कोई बालक न कर सकेगा ।' इस प्रकार जब देवकी के बालक होता, तभी सुलसा के भी होता और देव सुलसा का मरा हुआ बालक देवकी के यहाँ रख कर देवकी का जीवित बालक सुलसा के पास पहुँचा देता था। इस तरह देवकी के छः बालक सुलसा के यहाँ पहुँच गये। सुलसा के जो मरे हुए बालक आते थे, वे कस के सामनें ले जाये जाते थे । कस उन्हे मरा हुआ देखकर और यह सोचकर कि यह मेरे डर के मारे मर गये है, अभिमान से फूल उठता था । फिर भी उसे सतोष न होता और वह उन मरे बालको को ही पछाड डालता था ।

सातवी बार वह महापुरुष आया जिसका आज जन्म-दिन है । ऐसा बालक देवकी के गर्भ मे आने के कारण उसे शुभसूचक स्वप्न आये । देवकी का शरीर इस प्रकार चमकने लगा जैसे काच की हडी में दीपक रखने से वह चम-

कने लगती है । देवकी और वसुदेव चकित थे । उन्हे लक्षणों से यह मालूम हो गया था कि कोई महापुरुष गर्भ मे आया है । देवकी को इस प्रकार तेजपूर्ण देखकर कंस भी समझ गया कि अब मेरा काल बताया जाने वाला बालक गर्भ मे आया है । कई ग्रन्थकारो ने लिखा है कि कंस ने देवकी और वसुदेव को बेडी और हथकडी से जकड दिया था और कारागृह मे डाल दिया था । दोनो पर सख्त पहरे का प्रबंध किया गया था । उस मुसीबत में पडे हुए वसुदेव, देवकी से कहने लगे—यह सब मेरे वचन-बद्ध होने का परिणाम है । ससार मे पतिव्रता महिलाएँ तो और भी होगी, लेकिन देवकी, तुम जैसी पतिव्रता का होना दुलभ है । तुमने अपने पति के वचन की रक्षा के लिए अपने लाडले लाल भी मरने के लिए कंस के हाथ मे सौप दिये। तुमने अपना सर्वस्व निछावर कर मेरे धर्म की रक्षा की है। सचमुच तुम इस ससार की सारभूत विभूति हो । आर्य-ललनाएँ तुम्हारा अनुकरण कर ससार मे पतिव्रत धर्म की रक्षा करेंगी ।

देवकी ने नम्रतापूर्वक मधुर स्वर में कहा—नाथ, इसमे मेरा क्या है ? यह शरीर भी आपका है । बालक तो जैसे आपके वैसे ही मेरे है । मैं बालको को जितना प्यार करती हूं, उतने ही आपको भी वे प्यारे हैं। बल्कि माता की अपेक्षा पिता को पुत्र से अधिक स्नेह होता है। दुर्योधन की माता गांधारी ने दुर्योधन का मोह त्याग दिया था, लेकिन धृतराष्ट्र पुत्र-मोह न छोड सके थे । इस प्रकार पिता को पुत्र से अधिक प्रेम होता है । जब अधिक प्रेम-परायण आपने ही उन बालको को दे दिया, तब मुझे क्या आपत्ति हो सकती है ? इसके अतिरिक्त आपके कार्य मे किसी प्रकार का विस-

बाद खडा करना मेरे लिए उचित भी नही है।

जिस सत्य की रक्षा के लिए वसुदेव ने अपने सुकुमार और प्यारे बच्चे काल के हाथ में सौंप दिये, उस महान् सत्य को आप भी अपनाइए और 'त सच्च भगवओ' इस शास्त्र-वाक्य पर पूर्ण श्रद्धा रखिए। स्मरण रखिए, बुद्धि एक प्रकार की वचना है। उसकी दौड़ बहुत थोडी है। सत्य इतना महान् और उच्च है कि वह बुद्धि की परिधि में नही समा सकता। पत्थर तोलने की तराजू पर कदाचित् सुई तुल सकती है, पर बुद्धि की तराजू पर सत्य नही तुल सकता। बुद्धि से तर्क-वितर्क उत्पन्न होता है और तर्क-वितर्क सत्य की परछाई भी नही पा सकता। प्रगाढ श्रद्धा के कटकाकीर्ण पथ पर चलते चलते से सत्य के सन्निकट पहुँचना पडता है। अतएव श्रद्धा को बुद्धि के वस्त्र न पहनाओ। विचार करो -सत्य की आराधना के लिए वसुदेव और देवकी ने, अपने प्यारे पुत्र भी अर्पण कर दिये, तो सत्य का अनुसरण करने के लिए हम क्या नही त्याग सकते? अगर ससार मे सर्वत्र सत्य की प्रतिष्ठा हो जाये और प्रत्येक के प्रत्येक व्यवहार मे सत्य भगवान् के दर्शन होने लगे, तो ससार का यह नारकीय रूप नष्ट हो सकता है। वकीलों को घर बैठकर और कोई उच्चतर आजीविका खोजनी पडे और कचहरी कच-हरी (सिर के बाल तक हरने वाली) न रह जाये। वकीलो और अदालतो के आधिपत्य से ससार मे शान्ति के बदले अशाति का ही प्रसार हुआ है। यह सब सत्य से विमुख होने का परिणाम है। जब हृदय-रूपी कुसुम मे सत्य के सौरभ का सचार होगा तभी हृदय मे कृष्ण का जन्म हो सकेगा।

देवकी ने वसुदेव से कहा पुत्र जैसे मेरे वे, वैसे ही आपके भी थे। जैसा दु.ख मुझे हुआ है वैसा ही दु ख आपने भी अनुभव किया है। किन्तु आप पुरुष हैं, आप में सहन-शक्ति अधिक है। मैं स्त्री हू, मुझमे इतनी सहन-शीलता और कष्ट-सहिष्णुता नही है। मैंने अब तक छ बालको का मरण-दु ख झेला है, पर अब कोई ऐसा उपाय कीजिए, जिससे इस बार का बालक जीवित बचा रहे।

पुत्र के लिए दु.ख होना स्वाभाविक है। मनुष्य की तो बात ही क्या, उन पक्षियो को भी सतान के वियोग की वेदना असह्य हो जाती है, जिनमें सतान का नाता अत्यन्त अल्पकालीन होता है। यहाँ एक मैना का बच्चा आया करता था। एक दिन वह उडकर ऊपर बैठा। उसके माँ-बाप भी वहाँ मौजूद थे। इतने मे ही एक चील ने झपट्टा मारा और बच्चे को उडा ले गई। उस समय उस बच्चे के माता-पिता को इतना दु.ख हुआ और वे ऐसे चिल्लाये कि कुछ कहा नही जा सकता।

देवकी के कथन के उत्तर में वसुदेव ने कहा—तुम्हारी बात है तो ठीक, पर अब क्या सत्य का परित्याग करना पडेगा? जिस सत्यधर्म का पालन करने के लिए छह बालक त्याग दिये, अब क्या उसी सत्य को त्यागना उचित होगा?

देवकी ने कहा—छह बालक हम लोगो ने सत्य भगवान् की सेवा मे समर्पित किये हैं। तब सत्य से विमुख होने की प्रेरणा मैं नही करती। मैं ऐसा कोई यत्न करने के लिए कह रही हूं जिससे धर्म की भी रक्षा हो और पुत्र की भी रक्षा हो। पुत्र की रक्षा की चिन्ता भी इसी कारण

है कि वह महापुरुष होगा और महापुरुष की रक्षा करना ससार की रक्षा करना है। पुत्रप्रेम से प्रेरित होकर नही, वरन् ससार के कल्याण की कामना से हमें इस पुत्र की रक्षा करनी चाहिए। ससार मे उत्सर्ग और अपवाद—यह दो विधियाँ है। ऐसा जान पडता है कि यह गर्भस्थ महा-पुरुष ससार के अपवाद सुनकर भी जगत् का कल्याण करेगा। इसलिए इसकी रक्षा करने के लिए हमें भी अपवाद-मार्ग का अवलंबन करना पडे तो अनुचित नही है।

तुम्हारी बात मेरी समझ में आ रही है। पर यह अत्यन्त कठोर साधना है। महापुरुष की रक्षा करते समय अगर हमारे हृदय में लेशमात्र भी पुत्र-मोह उत्पन्न हो गया तो हम अपनी साधना से भ्रष्ट हो जाएँगे। यह निष्काम कर्म कठिनतम व्यवहार है। बडे-बडे योगी भी इसमे अकृत-कार्य हो जाते हैं। हमें अपना हृदय विश्व-हित की कामना से लबालब भर लेना होगा, जिससे व्यक्तिगत हित या सुख की अभिलाषा को उसमे तिल भर भी स्थान न मिल सके। हमे आत्मोत्सर्ग की पराकाष्ठा पर पहुँचना चाहिए। ऐसा किये बिना हम सत्य की सेवा से विमुख हो जाएँगे। पर यह तो समझ मे नही आ रहा है कि क्या यत्न किया जाये?

देवकी ने कहा— गर्भस्थ महापुरुष का महत्व मैंने मुनि महाराज से जान लिया है। यह महापुरुष जगत में सुख एव शान्ति की सृष्टि करेगा। इसकी रक्षा करने के उद्देश्य से मैंने गोकुल में रहने वाले राजा नन्द की रानी यशोदा को अपनी सखी बनाया है। वह मेरी ऐसी सखी है कि मेरी खातिर वह अपनी संतान का त्याग कर सकती है। वह पूर्ण विश्वास-पात्र है। साथ ही मुझे यह भी विश्वस्त-

सूत्र से ज्ञात हो गया है कि जिस दिन मेरे गर्भ से बालक का जन्म होगा उसी दिन वह भी संतान प्रसव करेगी। अतएव इस महापुरुष को यशोदा के यहाँ ले जाना चाहिए और यशोदा की संतान यहां ले आना चाहिए।

वसुदेव ने कहा– उपाय तो अच्छा है, पर देखना तो यह है कि हम इस समय किस हालत में हैं! हथकडी-बेड़ी पडी हुई है। द्वार जडा है। पहरा लग रहा है। ऐसी दशा में कैसे बाहर निकलना होगा?

देवकी– यह सब तो आँखो दिखाई दे रहा है। इतना होते हुए भी अगर हमारी भावना मे सत्य है और इस महापुरुष की रक्षा होती है, तो यह सब कठिनाइयाँ दूर हो जाएँगी। आप बाहर निकल भी सकेंगे और मार्ग भी मिल जायेगा। बस, आप तो तैयार हो जाइये।

कई लोग प्रश्न करते हैं कि पुरुषार्थ बडा है या दैव बडा है? इस प्रश्न का उत्तर कृष्ण के चरित्र से यह फलित होता है कि दोनो ही समान है और सिद्धि-लाभ के लिए दोनों की समान आवश्यकता है। जैसे दोनो चक्रो से रथ चलता है उसी प्रकार दोनो के सद्भाव से कार्य सिद्ध होता है। किन्तु इन दोनो मे से उद्योग करना मनुष्य के हाथ में है। अतएव मनुष्य को सतत उद्योगशील रहना चाहिए। भाग्य अनुकूल होगा तो सफलता अवश्य मिलेगी। हाँ, भाग्य की अनुकूलता की प्रतीक्षा करते हुए निठल्ले बैठ रहना उचित नहीं है। कौन कह सकता है कि किसका भाग्य किस समय अनुकूल होगा? आज के लोग अपने काम के लिए तो भाग्य के भरोसे नही बैठे रहते—उद्योगशील रहते हैं, लेकिन

धर्म के काम में भाग्य का भरोसा ताकने लगते है। इसी कारण हानि उठानी पड़ती है।

वसुदेव ने देवकी का कथन स्वीकार किया। जैसे पूर्व दिशा सूर्य को जन्म देती है, उसी प्रकार भाद्रपद कृष्णा अष्टमी की रात को अर्द्ध-रात्रि के समय, देवकी ने सुन्दर, स्वस्थ और सर्वांगसम्पन्न बालक को जन्म दिया। बालक का जन्म होते ही देवकी और वसुदेव की हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ तड़ाक से टूट कर गिर पड़ी। देवकी ने वसुदेव से कहा नाथ! आइए अब यह महापुरुष आपके उद्योग की परीक्षा करता है।

वसुदेव सोचने लगे– महापुरुष के प्रताप से हथकडी-बेडी टूट गई है, मगर द्वार पर अब भी पहरा मौजूद है। पहरेदारो के सामने बाहर कैसे निकल सकेगे ?

वसुदेव सत्य के लिए इस प्रकार के कष्ट उठा रहे थे, लेकिन आज के लोगो को सत्य बोलने या सत्य पालने में किस प्रकार की रुकावट है ? फिर क्यो नही उनके जीवन मे सत्य की आभा चमकती ? सत्य की आराधना करने के कारण अगर आपके पैरो में बेडी भी पड जायेगी, तो वह उसी प्रकार टूट जायेगी जैसे वसुदेव की टूट गई थी। कहावत है– मुर्दे के साथ श्मशान तक जाया जाता है, उसके साथ जला नही जाता। इसी प्रकार हम लोग भी उपदेश दे सकते हैं, इससे अधिक क्या कर सकते है ? आपके साथ-साथ घूमने से रहे।

वसुदेव देवकी से कहने लगे 'द्वार पर पहरा लग रहा है। निकलने का क्या उपाय है ?' देवकी ने कहा– 'उद्योग

करना आपका काम है, फिर सफलता मिले या न मिले। प्रयत्न कर देखिये ।'

वसुदेव जाने को तैयार हुए। वे ग्रन्थानुसार सूप मे और जैन-कथा के अनुसार अपने हाथ मे बालक कृष्ण को लेकर रवाना हुए। द्वार पर पहुँचे तो देखते क्या है कि द्वार खुला पडा है और पहरेदार पडे-पडे खुर्राटे ले रहे हैं। वसुदेव ने यह भी महापुरुष का प्रताप समझा। दरवाजे से बाहर निकल कर आगे बढे। उस समय मूसलाधार पानी बरस रहा था। बादल गडगडा रहे थे। बिजली चमक रही थी, मानो महापुरुष का जन्मोत्सव मनाने के लिए प्रकृति चपलतापूर्वक नृत्य कर रही थी। झींगुर और मेढक खुशी-खुशी बोल रहे थे, जैसे कृष्ण-जन्म की खुशी में सगीत गा रहे हो। ग्रन्थो मे लिखा है— उस समय शेषनाग ने कृष्ण पर छाया की थी और एक देव वसुदेव के आगे-आगे प्रकाश करता जाता था।

वसुदेव चलते-चलते नगर के द्वार पर आये। देवकी के पुत्र-प्रसव का समय सन्निकट आया जानकर कस ने नगर-द्वारो पर भारी-भारी ताले डलवा दिये थे। वसुदेव ने नगर के बद द्वार देखे, पर वे एक क्षण भर के लिये भी रुके नही। उन्होने सोचा—जहा तक जाना सभव है, वहाँ तक तो मुझे जाना ही चाहिए।

दीधा छे दरवाजा, ये आरत मोटी राजा।
हरि अँगूठो अड़िया, ताला तो सब झड़िया ॥

वसुदेव जाकर नगर के द्वार से टकराये। जैसे वे द्वार से टकराये और कृष्ण का अँगूठा अड़ा, वैसे ही ताले

राख के ढेर की तरह नीचे गिर पडे। फाटक खुल गये। उस समय और तो सब लोग सो रहे थे, द्वार के ऊपर बने हुए पीजरे मे केवल उग्रसेन जाग रहे थे। ऐसे समय पर शत्रु को नीद आना और मित्रो का जागना स्वाभाविक है। उग्रसेन ने फाटक खुलने की आवाज सुनी।

उग्रसेन कहे कोई, तुम बंधन काटे सोई।
ये वचन सुने सुखदायो, कहे वेग सिधावो भाई॥

उस समय उग्रसेन ने पूछा—कौन ? वसुदेव ने कहा—वही जो तुम्हे बधन से छुडायेगा। यह उत्तर सुनकर उग्रसेन अतीव प्रसन्न हुए और कहा— अच्छा भाई, जल्दी पधारो।

वसुदेव आगे चले। उस घोर अंधकारमयी काली निशा में, आधी रात्रि के समय, वर्षा और बिजली की विपदा के होने हुए, कौन घर से निकल सकता था ? लेकिन वसुदेव कृष्ण को लिये हुए जा रहे थे। जब और आगे बढे, तो यमुना सामने आई। वर्षा के कारण उसमे पूर आ रहा था। वसुदेव ने निश्चय किया—भले ही आज मुझे यमुना में वह जाना पडे, परन्तु जहाँ तक सभव है, मैं अवश्य जाऊँगा। इस प्रकार दृढ सकल्प करके वे यमुना मे उतर पड़े। ग्रन्थों में लिखा है कि यमुना पहले तो पूर थी, पर कृष्ण के पैर का अँगूठा लगते ही यमुना ने मार्ग कर दिया, अर्थात् वह छिछली हो गई।

इतनी सब विघ्न-बाधाओ को पार कर वसुदेव नन्द के घर पहुँचे। उसी समय यशोदा के गर्भ से पुत्री उत्पन्न हुई थी। वसुदेव ने पुत्री की जगह कृष्ण को रख दिया और पुत्री को लेकर लौट पडे। उनके लौट आने पर द्वार आदि

फिर पहले की ही तरह बद हो गये । उनके हाथ-पैरो मे पूर्ववत् हथकडी-बेडी भी पड गई। यह कैसा दैविक चमत्कार था, सो कहा नही जा सकता ।

उधर 'जय कन्हैयालाल की' होने लगी और इधर पहरेदार जागकर लड़की को लेकर कस के पास गये। कस लड़की जन्मी देख कहने लगा– देखो, यह बाबा-जोगी और ज्योतिषी लोग कैसे झूठे होते है और तो और, नारद भी अब झूठ बोलने लगे हैं। लडके के बदले यह लडकी उत्पन्न हुई है !' कस जब अभिमान-भरी यह बातें कह रहा था, तभी वह सद्य.प्रसूता बालिका बोली– 'मुझे लडकी कह कर तू क्षणिक सान्त्वना भले ही प्राप्त कर ले और ऋषियो-मुनियो को झूठा बता दे, पर तेरा सहार करने वाला अवतीर्ण हो ही चुका है ।'

एक ओर वसुदेव ने उद्योग किया था और दूसरी ओर कस ने । किन्तु वसुदेव का उद्योग प्रशस्त था, वह न्याय और धर्म की प्रतिष्ठा के लिए था, जबकि कस नीति-धर्म का ध्वस करने की चेष्टा कर रहा था । वसुदेव का हेतु शुभ था, अतएव उन्हे देवो की सहायता प्राप्त हो सकी थी। अगर आप भी इसी प्रकार शुभ हेतु से प्रशस्त प्रयास करेंगे तो आपको ज्ञात हो जायगा कि दैविक सहायता कहाँ से और कैसे मिलती है । कदाचित् कोई कह सकता है कि परमार्थ के लिए हमने अमुक उद्योग किया था, पर वह असफल रहा । उन्हे अपने हृदय की बारीकी से परीक्षा करनी चाहिए । उन्हे मालूम करना चाहिए कि बाह्य और आभ्यन्तर दोनो एक रूप थे, या बाहर परमार्थ था और भीतर स्वार्थ था ? स्वार्थ से मलीन हृदय लेकर दिव्य सहायता की कामना

करना ऐसी ही बात है, जैसा कि कहा है—

चाहत मुनि मन अगम सुकृत फल मनसा अघ न अघाती

इसके अनुसार बुरी भावना रख कर भी अच्छे फल की आशा रखना दुराशा मात्र है।

कृष्ण धीरे-धीरे नन्द के घर बड़े होने लगे। पालने में पौढे हुए भी उन्होंने अनेक महत्वपूर्ण और असाधारण काम किये। नन्द के यहाँ रहते हुए उन्होने जो कुछ किया उसमे एक महत्वपूर्ण बात यह भी थी कि कुछ बड़े होते ही वे कम्बल और लकड़ी लेकर गायें चराने के लिए जाया करते थे। जन्माष्टमी मनाने के लिए आज आप बढिया-वढिया वस्त्र पहनते हैं, पर जिसकी जन्माष्टमी मनाते हैं वह कैसा सादा था, यह भूल कर भी नही सोचते। भक्त उसके उसी रूप पर मुग्ध हैं और कहते हैं—

मोर मुकुट कटि काछनी, उर गुंजन की माल।
सो बानक मम उर बसो, सदा बिहारीलाल॥

इससे स्पष्ट है कि कृष्ण ने मोर पखो का मुकुट पहना था, चिरमी (घुंगची) की माला पहनी थी और कमर में लंगोटी लगा रखी थी। कृष्ण इस सीधे-सादे भेष मे रहते थे। कवि कृष्ण ने इसी भेष को अपने हृदय में वसने की भावना व्यक्त करता है।

कृष्ण में इस तरह की सादगी थी, परन्तु आजकल तो सादगी घृणा की वस्तु बन गई है। जिनका उत्पन्न किया हुआ अन्न खाकर लोग जीवन-निर्वाह करते है, उन किसानो को इस सादगी के कारण भोजन में पास तक नही वैठने दिया जाता। गाय को मुसीवत माना जा रहा है। मोटरें

रखने का स्थान है, पर गाय बाँधने को स्थान नही मिलता। तब पीने के समय क्या पीते हो ? गाय का दूध या मोटर का धुआ ? प्राचीन ग्रन्थो मे गाय की महत्ता का खूब बखान किया गया है। गाय "गो" कहलाती है। "गो" पृथ्वी का भी नाम है और गाय का भी नाम है। इसका तात्पर्य यह है कि जैसे पृथ्वी हमारा आधार है, उसी प्रकार गाय भी हमारे जीवन का आधार है। इसीलिये कृष्ण ने गो-रक्षा की थी। कृष्ण ने अपने व्यवहार के द्वारा गाय का जैसा महत्व प्रदर्शित किया है, वैसा विश्व के इतिहास मे किसी ने प्रदर्शित नही किया। आज गाय का आदर नही हो रहा है पर प्राचीनकाल के राजा और सेठ अपने-अपने घर मे गायो के झुड के झुड रखते थे। उस समय शायद ही कोई ऐसा घर रहा होगा जहाँ गाय न पाली जाती हो। उसी युग मे गाय 'गो माता' कहलाती थी और 'जय गोपाल' की ध्वनि सर्वत्र सुनाई देती थी—अर्थात् गाय पालने वाले की जय बोली जाती थी। मगर आज परम्परा का पालन करने के लिए गाय को कोई माता भले ही कह दे, पर उसका पालना विपत्ति से कम नही समझा जाता। लोग गोवश के ह्रास का कलक मुसलमानो के मत्थे मँढते हैं पर मेरी समझ मे हिन्दू लोग अगर गाय को माँ समझ कर घर मे आदर के साथ स्थान देते तो गोवश का ह्रास न होता और न कोई उसे मार ही सकता। हिन्दुओ ने गाय की रक्षा नही की, इसी से गोवश नष्ट होता जाता है। यही नही, मैं तो यहाँ तक कहूगा कि हिन्दू लोग भी किसी न किसी रूप मे गोवश के विनाश मे सहायक हो रहे हैं। उदाहरण के लिये वस्त्रो को लीजिए। गाय की चर्बी वाले वस्त्र बडे शौक मे पहने जाते हैं। क्या गायो की हत्या किये बिना चर्बी निकाली

जाती है ? चर्बी के लिये बडी क्रूरता से गायो को कत्ल किया जाता है और उस चर्बी वाले वस्त्रो को पहन कर लाग कहते हैं—हम गो-भक्त हैं—गाय हमारी माता है ! धन्य है ऐसे मातृ-भक्त सपूतो को !

पर यह न समझ बैठना कि इससे गायो की ही हानि हुई है। उस पद्धति से यहाँ गोवश को हानि पहुँचती है वहाँ मानव-वश को भी काफी हानि उठानी पडी है और पड रही है । दूध मत्यलोक का अमृत कहलाता है। उसकी आजकल वेहद कमी हो गई है । परिणाम यह है कि लोगों मे निर्बलता और निर्बलताजन्य हजारो रोग आ घुसे है। इसके अतिरिक्त तामसिक भोजन पेट मे जाता है, जिससे सतोगुण का नाश होता जा रहा है ।

सुना है यहाँ—जामनगर में—शराब की ज्यादा खपत है। प्रजा किस प्रकार की बन रही है, इस बात का विचार तो राज्य के अधिपति और अधिकारियो को करना चाहिए। उन्हें यह ध्यान रखना चाहिए और ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि उनकी प्रजा सतोगुणी बने । इसके लिए शराब जैसी भ्रष्ट वस्तुओ के स्थान पर सात्विक पदार्थों की सुविधा करनी चाहिए । सुना है, अमेरिका मे प्रजा की वृद्धि के साथ गायो की भी वृद्धि हो रही है । वहाँ के लोग यह समझते हैं कि तामसिक प्रकृति की प्रजा ही उपद्रव करती है और उस उपद्रव को दबाने के लिए बहुमूल्य शक्तियाँ व्यय करनी पडती हैं।

कृष्ण के चरित्र से गोरक्षा-विषयक बहुमूल्य और उपयोगी शिक्षाये मिलती हैं । गाये चराने के बहाने जगल मे रहने से वहाँ जो शिक्षा प्रकृति से मिलती है, वह आजकल

के बडे-बड़े कॉलेजो और विश्वविद्यालयो मे भी नही मिलती।

कृष्ण अपनी मुरली की ध्वनि द्वारा जगत् में नवीन स्फूर्ति, नवीन चेतना फूकते रहते थे। उनकी मुरली की ध्वनि अलौकिक सगीत की सृष्टि करती थी। वह ध्वनि कानो को अमृत-सी मधुर लगती थी और उसे सुनकर लोग मुग्ध हो जाते थे।

कई लोग कृष्ण के चरित्र पर यह अपवाद लगाते हैं कि उन्होने गोपियो के साथ मर्यादा-विरुद्ध दुराचार किया था। वास्तव मे यदि कृष्ण ने ऐसा किया हो, तो उनका जीवन पतित हो जाता है, उसमे पवित्रता नही रह जाती। साथ ही ऐसे व्यक्ति का स्मरण करना भी त्याज्य हो जाता है। इस अवस्था मे वह महापुरुष नही रह जाते। भक्ति-सूत्र में लिखा है—

सा न कामयमाना निरोधरूपत्वात्, निरोधस्तु लोक वेदव्यापारन्यासः।

इसका मतलब यह है कि विषय-वासना होने पर भक्ति नही रह सकती। परमात्मा की भक्ति और विषय-वासना एक साथ कैसे निभ सकती है? ऐसी अवस्था मे कृष्ण के सम्बन्ध मे यह किस प्रकार कहा जा सकता है कि उन्होंने गोपियों के साथ कोई नीच कृत्य किया था? जिन लोगो के मस्तिष्क में मलीन भावना भरी हुई है, वे सर्वत्र ही मलीनता की कल्पना कर डालते है। उन्हें पवित्र भावना से किये जाने वाले कार्य में भी अपवित्रता की गध आती है। कृष्ण मर्यादा-पुरुषोत्तम थे। किन्तु विषय-वासना से विदूषित व्यक्तियो ने अपनी अपावन भावना के अनुसार कृष्ण

की कल्पना कर डाली है। इस कल्पना में अपना मार्ग प्रशस्त बना लेने की भावना भरी हुई है। इधर कुछ शृङ्गार-रस के प्रेमी कवियो ने भी काव्य की मर्यादा का उल्लघन करके कृष्ण का चित्रण किया है और इससे कृष्ण के चरित पर आक्षेप करने का अवसर मिल गया है।

परमात्मा का सच्चा भक्त वही है जिसने विषय-वासना का निरोध कर दिया है। परमात्मा की भक्ति की अभिलाषा रखने वाले के लिए ऐसे व्यक्ति का ससर्ग भी त्याज्य है, जो विषयवासना को प्रधानता देता हो। भक्तिसूत्र में कहा है—

दुःसंग सर्वथा त्याज्यः ।

अर्थात् कुसगति से सदा बचना चाहिए। यदि कृष्ण दुराचारी रहे हो तो उनका नाम भी न लेना चाहिए। क्योकि—

कामक्रोधमोहस्मृतिभ्रंश बुद्धिनाशकारणत्वात् तरंगा इता अपि इमे संगात् समुद्रायन्ति ।

तात्पर्य यह है कि दुःसग से सर्वनाश तक हो जाता है। ऐसी स्थिति में कृष्ण स्मरणीय कैसे ठहरते है? पर वास्तव मे कृष्ण ऐसे नही थे। उनके विषय मे ऐसी कुत्सित कल्पनाओ को हृदय मे स्थान नही देना चाहिए। यदि आप कृष्ण के बहाने भी काम-वासनाओ को हृदय में स्थान देगे, तो तरग जितनी वासना भी समुद्र जैसी विशाल बन जायेगी। अतएव मन में से पाप निकाल दो और कृष्ण पर अपनी अभव्य भावना का रग न चढाओ।

नन्द के घर पलते हुए कृष्ण तरुणावस्था में प्रविष्ट

हुए । अब उन्होने सोचा—सादगी और गो-पालन का आदर्श मैंने मानव-समाज के सामने उपस्थित कर दिया है । अब संसार में बढे हुए पाप का विनाश करना चाहिए । ऐसा सोचकर, कस का आमत्रण पाकर या कोई अवसर हाथ लगने पर वे कस के यहाँ गये । कस के पास जाने के लिए लोगों ने उन्हे हटका और कस द्वारा मारे जाने का भय बताया, पर कृष्ण असाधारण सत्वशाली पुरुष थे । वे कब भय खाने वाले थे ! वे निडर होकर कस के यहाँ गये। कस ने उन्हे मार डालने के अनेक प्रयत्न किये, पर उसके सब प्रयत्न निष्फल हुए । हाथी और मल्ल आदि को मार कर कृष्ण कस के पास पहुँचे । कृष्ण को सामने देख कस प्रसन्न हुआ । उसने सोचा—मेरा शत्रु सामने आ पहुँचा है, अतएव इसे अभी-अभी समाप्त कर देता हू । वह तलवार हाथ मे लेकर कृष्ण को मारने दौडा । पर कृष्ण ने कस की चोटी पकडी और उसे घुमा दिया । सिर पर वशी का प्रहार कर उसकी जीवन-लीला का अन्त कर दिया ।

उस समय कृष्ण भिन्न-भिन्न लोगो को भिन्न-भिन्न रूपो मे दिखाई दिये । कृष्ण ने कस को मार डालने क पश्चात् वसुदेव और उग्रसेन आदि को कारागार से मुक्त किया । भला राजमुकुट किसे अप्रिय लगता है ? सभी राजमुकुट से अपने सिर की शोभा बढाना चाहते हैं । मगर कृष्ण ने सोचा—'मेरा विरोध किसी व्यक्ति से नही है—पाप से है । अगर कोई पापी पुरुष अपने पुराने पापो के लिए पश्चात्ताप करता है और भविष्य मे पापाचरण न करने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध होता है तो उसे मैं क्षमा कर सकता हूं । कस ने ऐसा नहीं किया, अतएव उसका प्राणान्त करना पडा । इसके प्राणान्त

से राजसिंहासन सूना हो गया है। न्याय के अनुसार राज्य उग्रसेन का है और उन्ही को यह मिलना चाहिए।' ऐसा विचार कर कृष्ण ने राज्य पर स्वय अधिकार न करके उग्रसेन के सिर पर राजमुकुट स्थापित कर दिया। यह है कृष्ण की महानुभावता!

कस की रानी जीवयशा रोती-पीटती अपने बाप जरासंघ के पास गई। जरासघ मे यदि विवेक की तनिक भी मात्रा होती, तो वह कस के सहज ही मारे जाने से समझ लेता कि कृष्ण से लडाई मोल लेना हँसी-ठट्ठा नही है। मगर उसे ऐसे सलाहकार मिले कि उन्होने उसे शान्त करने के बदले और अधिक भडकाया। उसका जो परिणाम हो सकता था, वही हुआ—जरासघ भी मारा गया। इस प्रकार तत्कालीन सब बडे-बडे अपराधी जिन्होंने अपना अपराध नही त्यागा था—नष्ट हो गए।

इस सम्बन्ध में हमें एक महत्त्वपूर्ण बात ध्यान मे रखनी चाहिए। कृष्ण कहते हैं कि न किसी से मैं वैर रखता हूं और न किसी को अपना शत्रु समझता हूं। कृष्ण के चरित्र पर अर्जुन के सारथी बनने के कारण अनेक अपराध लगाये जाते है। परन्तु महाभारत के अनुसार अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से जब उत्तरा के गर्भ का घात हो गया, तब कृष्ण ने कहा था—मृत्यु असत्य पर आती है। सत्य के सामने मृत्यु थर्राती है। अतएव किसी सत्यपरायण सत्पुरुष के कहने से यह गर्भ जीवित हो सकता है। लोग कहने लगे—कौन है ऐसा सत्पुरुष? किसके द्वारा मृतक गर्भ पुनर्जीवित हो सकता है? कृष्ण ने कहा—'आप सब सज्जन अपना-अपना सत्य आजमाइए और उसकी शक्ति प्रदर्शित कीजिए। अगर आप सफल न हो सकेंगे, तो अन्त मे मैं अपनी सत्य-शक्ति उपस्थित करूँगा।'

कृष्ण की इस बात से लोग मन ही मन मुस्कराने लगे—कृष्ण और सत्य-परायण ! कृष्ण ने समझ लिया कि यह लोग मुझ पर अविश्वास कर रहे है। उन्होने कहा—मैंनें अपनी जिंदगी मे सत्य की आराधना की है। मेरे सभी कार्य सत्य के लिए हैं। अगर आप मुझे सत्यनिष्ठ न मानते हुए अपने को ही सत्याचारी समझते हैं, तो आप कहिए—'अगर मुझमे सत्य है, तो यह बालक जीवित हो जावे।'

कृष्ण की यह चुनौती सुन कर सब लोग कुण्ठित हो गये। कौन ऐसा था जो अपने को सत्यवादी समझता था और अपने भीतर इस प्रकार की दिव्य-शक्ति के अस्तित्व पर भरोसा करता था ? सब को चुप्पी साधे देख कृष्ण नें कहा—अच्छा आप इस बालक को जीवित नही कर सकते तो मैं जीवित करता हू। यह कहकर वे तैयार हो गये। भक्त लोग तो कृष्ण का यह कथन सुनकर प्रसन्न हुए, लेकिन विरोधियो ने कहा—अच्छा, देखे आप इस अभिमन्यु के बालक को कैसे जीवित कर सकते हैं। कृष्ण ने कहा—

अब्रवीच्च विशुद्धात्मा सर्वं विश्रावयत् जगत् ।
नोक्तपूर्वं मया मिथ्यास्वैरेष्वपि कदाचन ॥

कृष्ण कहने लगे— 'अगर हँसी-मजाक में भी मैंने कभी असत्य का प्रयोग न किया हो, अगर मैं सदा सत्य में निष्ठ रहा होऊँ, मैंने क्षात्रधर्म का पालन किया हो, पराजित के प्रति किसी प्रकार का द्वेष न रखा हो, अपना जीवन धर्म के लिए उत्सर्ग कर दिया हो, सदा धर्म का ही आचरण किया हो, किसी भी समय क्षण भर के लिए भी धर्म न त्यागा हो और धर्मोपासको पर मेरी निश्चल निष्ठा रही हो, तो उत्तरा का यह मृत बालक पुनर्जीवित हो जाये।'

कृष्ण के मुख से इन शब्दो के निकलते ही बालक

जीवित हो गया। यह कौतुक देखते ही सज्जन जयजयकार करने लगे और दुर्जनो के चेहरे मुरझा गये।

कृष्ण के जीवन में अगर असत्य और अधर्म को प्रश्रय मिला होता, तो उनकी वाणी में यह लोकोत्तर सामर्थ्य कहाँ से ग्राता ? कोई पापी किसी मृतक बालक को जीवित नहीं कर सकता। अतएव कृष्ण के उज्ज्वल चरित्र मे कलक को कालिमा देखने वाले लोगो को अपनी दृष्टि निर्मल बनानी चाहिए। उन्हें अपने हृदय की मलीनता की परछाई कृष्ण जैसे महापुरुष के जीवन मे नही देखनी चाहिए। सतों का समागम करके कृष्ण-जीवन का मर्म समझना चाहिए। किसी पुराणा मे तो यहाँ तक लिखा है कि एक वार रास-क्रीडा करते समय गोपियो के मन मे दुर्भावना उत्पन्न हुई। कृष्ण को जैसे ही यह मालूम हुआ, वे अन्तर्धान हो गये। क्या यह किसी दुराचारी का काम हो सकता है ?

द्वारिका मे प्रजा की सुख-सुविधा और शान्ति के लिए मदिरापान न करने, द्यूत न रमने और व्यभिचार न करने के लिए खास तौर पर व्यवस्था की गई थी। यद्यपि इन तीन बातो पर पूरा लक्ष्य दिया जाता था, पर स्वय यादव लोग ही इनका आचरण करने लगे। तब कृष्ण ने वसुदेव से कहा—अब अपने घर के सर्वनाश का समय आगया है। अब घर मे ही फूट पड गई है और यादव तीनो निषिध वस्तुओ का सेवन करने लगे हैं। जैन-शास्त्र कहते हैं कि इन तीन बातो के कारण द्वारिका नगरी भस्म होगई। लेकिन ग्रन्थ कहते हैं कि सब यादव-कुमार प्रभास-पाटन गये थे। वहाँ उन्होंने मदिरा-पान किया। मदिरा के मद मे मत्त होकर दो कुमार आपस मे लड़ने लगे। शेष कुमार भी दोनो में शामिल हो गये और इस प्रकार उनके दो दल बन गये।

कृष्ण की इस बात से लोग मन ही मन मुस्कराने लगे—कृष्ण और सत्य-परायण ! कृष्ण ने समझ लिया कि यह लोग मुझ पर अविश्वास कर रहे हैं। उन्होंने कहा—मैंने अपनी जिंदगी मे सत्य की आराधना की है। मेरे सभी कार्य सत्य के लिए हैं। अगर आप मुझे सत्यनिष्ठ न मानते हुए अपने को ही सत्याचारी समझते है, तो आप कहिए—'अगर मुझमे सत्य है, तो यह बालक जीवित हो जावे।'

कृष्ण की यह चुनौती सुन कर सब लोग कुण्ठित हो गये। कौन ऐसा था जो अपने को सत्यवादी समझता था और अपने भीतर इस प्रकार की दिव्य-शक्ति के अस्तित्व पर भरोसा करता था ? सब को चुप्पी साधे देख कृष्ण ने कहा—अच्छा आप इस बालक को जीवित नही कर सकते तो मैं जीवित करता हू। यह कहकर वे तैयार हो गये। भक्त लोग तो कृष्ण का यह कथन सुनकर प्रसन्न हुए, लेकिन विरोधियो ने कहा—अच्छा, देखे आप इस अभिमन्यु के बालक को कैसे जीवित कर सकते हैं। कृष्ण ने कहा—

अब्रवीच्च विशुद्धात्मा सर्वं विश्रावयत् जगत् ।
नोक्तपूर्वं मया मिथ्यास्वैरेष्वपि कदाचन ॥

कृष्ण कहने लगे— 'अगर हँसी-मजाक मे भी मैंने कभी असत्य का प्रयोग न किया हो, अगर मैं सदा सत्य मे निष्ठ रहा होऊँ, मैंने क्षात्रधर्म का पालन किया हो, पराजित के प्रति किसी प्रकार का द्वेष न रखा हो, अपना जीवन धर्म के लिए उत्सर्ग कर दिया हो, सदा धर्म का ही आचरण किया हो, किसी भी समय क्षण भर के लिए भी धर्म न त्यागा हो और धर्मोपासको पर मेरी निश्चल निष्ठा रही हो, तो उत्तरा का यह मृत बालक पुनर्जीवित हो जाये।'

कृष्ण के मुख से इन शब्दो के निकलते ही बालक